उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-114
भारतीय विदेश नीति

खण्ड 01 प्रस्तावना

इकाई–01 भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व 3–10

इकाई–02 भारत की विदेश नीति के उद्देश्य और सिद्धांत 11–16

इकाई–03 स्वतन्त्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति 17–28

खण्ड 02 स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की विदेश नीति

इकाई–04 नेहरू युग में भारतीय विदेश नीति 29–42

इकाई–05 शास्त्री युग में भारतीय विदेश नीति 43–46

इकाई–06 जनता सरकार में भारतीय विदेश नीति 47–68

खण्ड 03 भारत के पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध

इकाई–07 भारत और भूटान संबंध 69–76

इकाई–08 भारत और पाकिस्तान संबंध 77–85

खण्ड 04 भारतीय विदेश नीति की चुनौतियाँ

इकाई–09 भारतीय विदेश नीति के बदलते आयाम 86–90

इकाई–10 गुटनिरपेक्षता : उपलब्धियाँ एवं प्रासंगिकता 91–99

इकाई–11 भारतीय परमाणु नीति 100–106

खण्ड 05 शीत युद्ध के पश्चात् भारतीय विदेश नीति

इकाई–12 दक्षेस राष्ट्रों में भारत की भूमिका 107–110

इकाई–13 हिम तक्षेस संगठन का उद्‌भव, भूमिका 111–114

इकाई–14 परमाणु अप्रसार संधि, परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी) 115–119

खण्ड 06 महत्वपूर्ण मुद्दे और प्रवृत्तियाँ

इकाई–15 क्षेत्रीय संगठन (आसियान) 120–125

इकाई–16 तीसरी दुनिया का उद्‌भव 126–131

इकाई–17 टेक्नोलॉजी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति 132–138

इकाई–18 नई विश्व अर्थव्यवस्था की खोज 139–144

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAPS-114 भारतीय विदेश नीति

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रोफेसर सत्यकाम	कुलपति उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 अनुराधा अग्रवाल	आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 राजपाल बुदानिया	आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. आनन्दा नन्द त्रिपाठी	सह आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. त्रिविक्रम तिवारी	सहायक निदेशक/सह आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव	सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ० अमरनाथ राम पासवान	सहायक प्रोफेसर, समाज विज्ञान, बी.एच.यू, वाराणसी (इकाई–1, 15, 16, 17, 18)
डॉ० रेनू श्रीवास्तव	बसंत कन्या महाविद्यालय, वाराणसी (इकाई–3, 4, 5, 6)
डॉ० दीपशिखा श्रीवास्तव	असि० प्रो० राजनीति विज्ञान, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई–2)
प्रो० आर.एस. यादव	प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र (इकाई–7, 8)
डॉ० शिवहर्ष सिंह	असि० प्रो० राजनीति विज्ञान, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (इकाई–9, 10, 11)
श्री राकेश सिंह	असि० प्रो० प्रताप बहादुर पी०जी० कॉलेज, प्रतापगढ़ (इकाई–12, 13, 14)

सम्पादक

डॉ० आनन्दा नन्द त्रिपाठी	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० त्रिविक्रम तिवारी	सहायक निदेशक/सह आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव	सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2023 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

ISBN- 978-93-48270-04-7

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2024

मुद्रकः सिग्नस ईन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा0 लि0, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई–1 भारतोय विदेश नीति क निर्धारक तत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विदेश नीति का अर्थ एवं परिभाषाएं

1.3 भारतीय विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.4 भारतीय विदेश नीति के निर्धारक

a) भौगोलिक कारक

b) जनसंख्या

c) शासन प्रणाली

d) क्षेत्रीय वातावरण

e) इतिहास एवं परंपरा

f) आर्थिक दशा

1.5 हिंद महासागर में भारतीय विदेश नीति

1.6 वैश्विक वातावरण

1.7 सैन्य शक्ति

1.8 सारांश

1.9 उपयोगी पुस्तकें

1.10 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

भारतीय विदेश नीति का मुख्यतः लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता एवं बाह्य सुरक्षा को प्रोत्साहित करने के संदर्भ में राष्ट्रीय हित की रक्षा एवं उसे बढ़ावा देना है। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को समस्त विश्व की सुरक्षा के संयुक्त रूप से कार्य करने की इच्छा के विस्तृत एवं विवेकशील पृष्ठपट पर रखा गया है। दूसरे शब्दों में, भारत कभी भी यह नहीं चाहता कि उसकी सुरक्षा से दूसरे राष्ट्र स्वयं को असुरक्षित महसूस करें। भारत ने सदैव से ही सभी राष्ट्रों के साथ मित्रतापूर्वक संबंध रखने चाहता है।

संक्षेप में, भारतीय विदेश नीति विश्व शांति को प्रोत्साहित करती है, बीसवीं सदी के शुरू के दो विश्व युद्ध जैसे भयावह युद्धों से बचने के लिए कार्य करती है। भारत उन सभी बड़े राष्ट्रों में शांति और सहयोग को प्रोत्साहित करना चाहता है, जिनके बीच राजनीतिक, विचारधारा और अन्य मतभेद हैं। भारत जोकि स्वयं औपनिवेशक शासन से पीड़ित रहा है और लंबे संघर्ष के पश्चात आजाद हुआ, की विदेश नीति उपनिवेशवाद को खत्म करने के लिए वचनबद्ध है। तदनुसार, भारत ने अफ्रीका और एशिया की जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का समर्थन किया है। इस लक्ष्य के विस्तार के क्रम में भारत की यह इच्छा रही है कि उसकी विदेश नीति बिना किसी भेदभाव के, सभी लोगों और राष्ट्रों के समान अधिकार की प्राप्ति के लिए वचनबद्ध रहे। इसलिए भारत, दक्षिण अफ्रीका में रंग–भेद जैसी घृणित नीति का विरोध करता रहा है। भारतीय नीति का लक्ष्य सिर्फ स्वयं के विकास की जरूरतों को पूरा करना ही नहीं है, बल्कि तृतीय विश्व के नव–स्वाधीन उन गरीब राष्ट्रों के लिए भी है जिन्होंने हाल ही में स्वाधीनता पाई हो। भारतीय विदेश नीति का एक प्रमुख लक्ष्य यह है कि एक न्यायसंगत आर्थिक एवं सामाजिक विश्व–व्यवस्था की स्थापना हो जोकि विश्व से बीमारी और वंचन को समाप्त करने में सहायक हो। वास्तव में भारत, राष्ट्रों के बीच तनाव को कम करने

और मतभेदों को कम करने के लिए बातचीत, वार्ता, समझौता एवं कूटनीति जैसे शांतिपूर्ण तरीकों को बढ़ावा देता है। विश्व की विभिन्न समस्याओं से ग्रसित पक्ष के नियंत्रण के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकास में भारत का सक्रिय सहयोग रहा है। संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य विश्व संगठन और क्षेत्रीय संगठनों की मजबूती में भारत का दृढ़ विश्वास रहा है, जोकि अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सहयोग के मुख्य उपकरण हैं। परमाणु एवं अन्य प्रकार के व्यापक क्षति वाले हथियारों के ह्रास और समापन के कार्य में भारत विश्वास रखता है। भारत की विदेश नीति के सिद्धांत जोकि पंचशील (1954) में स्थापित हैं अनाक्रमण, अहस्तक्षेप (तटस्थता) एवं शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की आवश्यकता पर बल देते हैं।

उद्देश्य

i- उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद का विरोध,

ii- सभी राष्ट्रों में मैत्रीपूर्ण संबंध,

iii- भारतीय मूल एवं प्रवासी भारतीयों की रक्षा।

iv- अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सहयोग

v- अहस्तक्षेप (तटस्थता)

vi- गुटनिरपेक्षता की नीति

1.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में, किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति उस परिप्रेक्ष्य का प्रतिनिधित्व करती है जिससे वे दुनिया को देखते हैं और वे सामान्य रूप से दुनिया और विशेष रूप से देश के साथ किस तरह की बातचीत और संबंध विकसित करना चाहते हैं। विदेश नीति किसी देश के राष्ट्रीय हित को महसूस करने का एक साधन है। किसी भी देश की विदेश नीति दो कारकों द्वारा निर्धारित होती है घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय। भारत दक्षिण एशिया में एक क्षेत्रीय महाशक्ति है और एशिया का एक महत्वपूर्ण प्रमुख होने के साथ–साथ विश्व व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण विकासशील देशों में से एक है। हमें इस बात की स्पष्ट समझ होनी चाहिए कि भारत यहां तक कैसे पहुंचता है और कैसे अपनी स्थिति को बनाए रखता है और इसके लिए भारतीय विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट रूप से विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति शून्य में उत्पन्न नहीं होती है। उस राष्ट्र का इतिहास और संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था एवं अन्य तत्व उसे दिशा और स्वरूप प्रदान करते हैं। उनमें से कुछ तत्व (जैसे भूगोल एवं प्राकृतिक सीमाएँ) तो यथावत रहते हैं, जबकि अन्य (जैसे आंतरिक और बाह्य पर्यावरण) कई बार तो बिना जाने ही परिवर्तित हो जाते हैं। किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति की निरंतरता और परिवर्तन के तत्वों की इन्हीं कारकों एवं शक्तियों के संदर्भ में व्याख्या की जा सकती है। यह जरूरी नहीं है कि राष्ट्र की विदेश नीति के निर्धारक तत्वों के प्रभाव संपूर्ण समय और काल के विस्तार में एकरूप ही हों। यह स्थान और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता है। इस इकाई का उद्देश्य भारतीय विदेश नीति के मुख्य निर्धारकों को उसके उद्देश्य और सिद्धांतों के संदर्भ में खोजना तथा मूल्यांकन करना है।

1.2 विदेश नीति का अर्थ एवं परिभाषाएं

एक राज्य अन्य राज्यों से किस प्रकार के संबंध रखकर अपना राष्ट्रीय हित प्राप्त कर सकता है यही विदेश नीति का मुख्य प्रयोजन होता है। दूसरे राज्यों से अपने संबंधों के स्वरूप को स्थिर करने के निणयों का कार्यान्वयन ही विदेश नीति है। जे0 आर0 चाइल्ड्यात्रा ने इसे वैदेशिक संबंधों का सारभूत तत्व माना है और राजनय को विदेश नीति को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया कहा है।

प्रो0 हिल के अनुसार, "विदेश नीति अन्य देशों के साथ अपने हितों को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले किसी राष्ट्र के प्रयासों का समुच्चय है।"

रोडी तथा क्रिस्टल के अनुसार, विदेशी नीति के अंतर्गत ऐसे सामान्य सिद्धांतों का निर्धारण और कार्यान्वयन सम्मिलित है जो किसी राज्य के व्यवहार को उस समय प्रभावित करते है जब वह अपने महत्वपूर्ण हितों की रक्षा

अथवा संवर्द्धन के लिए दूसरे राज्यों से बातचीत चलाता है।

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि विदेश नीति राज्यों की गतिविधियों का एक व्यवस्थित रूप है जिनका विकास दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर राज्य द्वारा किया जाता है।

1.3 भारतीय विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

किसी भी देश की विदेश नीति एक विशिष्ट आंतरिक व बाहय वातावरण के स्वरूप द्वारा काफी हद तक निर्धारित की जाती है इसके अतिरिक्त उसकी ऐतिहासिक विरासत, व्यक्तित्व, विचारधाराएँ, विभिन्न संरचनाओं आदि का प्रभाव भी उस पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारतीय विदेश नीति के प्रमुख लक्ष्यों के निर्धारण एवं सिद्धांतों के प्रतिपादन में भी बहुमुखी तत्वों का योगदान रहा है। लेकिन भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यों एवं सिद्धांतों को सही दिशा में समझाने हेतु इसके ऐतिहासिक संदर्भ का अध्ययन करना अनिवार्य है, क्योंकि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विदेश नीति निर्माण पर गहरा प्रभाव होता है। इस संदर्भ पर टिप्पणी करते हुए नेहरू जी ने उचित ही कहा था कि यह नहीं समझना चाहिए कि भारत ने एकदम नए राज्य के रूप में कार्य प्रारंभ किया है। इसकी नीतियां हमारे भूत व वर्तमान इतिहास तथा राष्ट्रीय आंदोलन के विकास तथा इसके द्वारा अभिव्यक्त विभिन्न आदर्शों पर आधारित हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हुए कई विशेषज्ञ उसकी उत्पत्ति भारतीय संस्कृति में प्रचलित दो विचारधाराओं से मानते हैं। ये दो महत्त्वपूर्ण परंपराएँ है, एक विचारधारा है– मित्रता, सहयोग, शांति, विश्वबंधुत्व व अहिंसा का जिसका विकास अशोक, महात्मा बुद्ध व गांधी के विचारों के रूप में हुआ है जहाँ साध्य के साथ–साथ साधनों की पवित्रता पर बल दिया गया है। दूसरी विचारधारा पाश्चात्य विचार को विशेषकर मैकियावली की विचारधारा से मेल खाती हुई, कौटिल्य की परम्परा रही है जहाँ यथार्थवाद व शक्ति के महत्व पर बल देते हुए केवल अंतिम साहस की प्राप्ति हेतु किसी भी साधन के औचित्य को स्थापित किया गया है।

1.4 भारतीय विदेश नीति के निर्धारक

भारतीय विदेश नीति के निर्धारण में कई कारकों का प्रभाव रहा है और वे वर्तमान में भी प्रभावित कर रहे हैं। इनमें से कुछ कारकों की प्रकृति स्थायी है, जबकि कुछ समय के साथ बदलते रहे हैं। इकाई के इस भाग में हम भूगोल, इतिहास एवं सांस्कृतिक, आंतरिक स्थिति, बाह्य वातावरण आदि जैसे मुख्य भारतीय विदेश नीति–निर्धारकों का विश्लेषण करेंगे।

a) भौगोलिक कारक

भू–भाग या भौगोलिक कारकों के द्वारा विदेश नीति अत्यधिक प्रभावित होती है, जिसे परंपरागत रूप में भू–राजनीति की संज्ञा दी गई है। भू–भागीय कारकों में देश की अवस्थिति, आकार, स्थलाकृति इत्यादि कारक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत विश्व का 7वां सबसे बड़ा देश है, भारत का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी. है। भारत का हिंद महासागर क्षेत्र में स्थित होना विदेश नीति को प्रभावित करता है। भौगोलिक रूप में भारत का विशाल क्षेत्र हिमालय से घिरा हुआ है। भारतीय विदेश नीति के निर्माण में एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए हिमालय जैसे प्राकृतिक प्रहरी की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्ष 1962 के युद्ध के बाद चीन ने लद्दाख और तिब्बत के मध्य स्थित महत्त्वपूर्ण दर्रों पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया है और अक्साई चिन से होकर सिक्यांग–तिब्बत राजमार्ग का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त चीन ने नेपाल को जोड़ने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण दर्रों, जिसमें कोदारी दर्रा भी शामिल है, पर भी के एक बड़े भाग पर अपना दावा कर रहा है, जिससे अपना प्रभाव स्थापित किया है।, चीन, अरूणाचल प्रदेश भारतीय विदेश नीति स्पष्टतः प्रभावित होती है। इसलिए विदेश नीति में हिमालयी राज्यों विशेषकर नेपाल, भूटान, म्यामार के साथ संबंध बनाने पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि चीन जैसी महाशक्ति का सीमा पर स्थित होना और उत्तरी–पूर्वी राज्यों में व्याप्त आतरिक सुरक्षा की समस्या से विदेश नीति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

एक विशाल आकार का देश होने के कारण सुरक्षा व्यवस्था बनाए रखना बड़ी चुनौती होती है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की अवस्थिति के बारे में कहा है कि भारत की स्थिति एशिया में केंद्रीय है तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं मध्य एशिया में होने वाली किसी भी घटना का प्रभाव भारतीय विदेश नीति पर पड़ता है। यद्यपि

विशाल आकार राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए लाभदायक भी होता है, क्योंकि कोई भी बाहरी सेना देश को आसानी से नियंत्रित नहीं कर सकती। पाकिस्तान के द्वारा अभी भी मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के लिए भारत को पारगमन मार्ग उपलब्ध नहीं कराया जाता। हिंद महासागर भारत के व्यापार के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। परिणामस्वरूप भारत ने एक विशाल जल सेना का निर्माण किया है। वर्तमान युग में हिंद महासागर एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक, समुद्री एवं संचार मार्ग है। इसलिए भारत हिंद महासागर को अपने प्रभाव क्षेत्र में बनाए रखना चाहता है और अमेरिका, जापान व सिंगापुर जैसे देशों के साथ मिलकर भारत ने हिंद महासागर में शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने का निरंतर प्रयत्न किया है।

b) जनसंख्या

वर्तमान में भारत विश्व का दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है। भारत की जनसंख्या 1 अरब 30 करोड़ के लगभग है। वर्ष 2024 तक भारत विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश बन गया है। भारत में विश्व की कुल 17 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है तथा क्षेत्रफल विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत है। भारत की विशाल जनसंख्या भी विदेश नीति को प्रभावित करती है, क्योंकि विशाल जनसंख्या के लिए खास सुरक्षा बनाए रखना और मानवीय विकास की मूलभूत सुविधाएं प्रदान करना एक बड़ी चुनौती है। अभी भी भारत की एक बड़ी आबादी भुखमरी और गरीबी का शिकार है, जिसका स्पष्ट प्रभाव विदेश नीति पर पड़ता है। भारत दुनिया की दूसरी सबसे तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था है। भारत को दुनिया के विशाल बाजार के रूप में जाना जा रहा है। एक ओर, बेहतर मानवीय संसाधन के कारण देश का विकास हो रहा है, तो दूसरी ओर, भारत को एक महाशक्ति के रूप में बनाए रखने के लिए गरीबी, अशिक्षा एवं कुपोषण जैसी समस्याओं को दूर करना महत्त्वपूर्ण चुनौती है।

जनसंख्या का प्रभाव विदेश नीति पर केवल आंतरिक ही नहीं होता, अपितु अनेक देशों में प्रवासी भारतीयों और भारतीय मूल के लोगों के कारण भी विदेश नीति प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका में जारी नृजातीय संघर्ष से भारत अत्यधिक प्रभावित हुआ, क्योंकि तमिल मूल के लोगों का संबंध भारत से था। दूसरी ओर, भारत–अमेरिका संबंधों के प्रगाढ़ होने में अमेरिका में रह रहे भारतीय मूल के लोगों की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा इनकी बढ़ती भूमिका के कारण विदेश मंत्रालय में एक प्रभाग भारतीय मूल के लोगों का बनाया गया, जो अब एक मंत्रालय के रूप में विकसित हो चुका है।

c) शासन प्रणाली

विदेश नीति के निर्धारण में राजनीतिक व्यवस्था की अहम् भूमिका होती है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के कारण भारत ने सदैव शांतिपूर्ण सहअस्तित्त्व पर बल दिया तथा विश्व में लोकतंत्र के प्रसार का समर्थन किया। वर्तमान समय में अनेक विकसित लोकतांत्रिक देशों ने भारत के लोकतंत्र को स्थायी लोकतंत्र का दर्जा दिया। अमेरिका, यूरोपीय यूनियन एवं जापान जैसे लोकतांत्रिक देशों के साथ निरंतर मजबूत होते संबंध लोकतांत्रिक व्यवस्था के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में अनेक दलों का अस्तित्त्व होता है। वर्ष 1990 के बाद बनने वाली गठबंधन सरकारों के दौर में गठबंधन सहयोगियों के मध्य विदेश नीति से संबंधित मुद्दों पर मतभेद उत्पन्न हुए, जिसमें सबसे उल्लेखनीय मतभेद वर्ष 2005 में किए गए भारत–अमेरिका सिविल परमाणु समझौते के मुद्दे पर देखा गया, जहां वामपंथी दल एवं कांग्रेस के मध्य स्पष्ट मतभेद उभरे।

भारतीय लोकतंत्र में संसदीय शासन प्रणाली के साथ संघात्मक व्यवस्था को भी अपनाया गया है। इसलिए विदेश नीति के निर्माण में राज्य सरकारों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका में जारी तमिल संघर्ष मुद्दे पर तमिलनाडु सरकार द्वारा संघ सरकार पर दबाव बनाने का प्रयत्न किया गया। शीत युद्धोत्तर विश्व में भी भारत ने लोकतंत्र के प्रसार का समर्थन किया है, लेकिन भारत की स्पष्ट मान्यता है कि वह किसी देश पर लोकतंत्र को बाहर से आरोपित नहीं करेगा। इसलिए भारत एवं म्यांमार के मध्य संबंधों को मधुर बनाया गया। वर्तमान समय में भारत में विद्यमान सांप्रदायिकता, नृजातीय संघर्ष और नक्सलवाद जैसी समस्या से विदेश नीति स्पष्ट रूप में प्रभावित होती है। इसलिए इन समस्याओं को हल करना विदेश नीति की मूल चुनौती है।

d) क्षेत्रीय वातावरण

विदेश नीति के निर्माण में घरेलू कारकों के अलावा क्षेत्रीय एवं वैश्विक कारकों का भी अत्यधिक प्रभाव होता है। आरंभ में प्रधानमंत्री नेहरू ने एशियाई अफ्रीकी सुदृढ़ता की नीति पर बल दिया, परंतु पाकिस्तान की भारत विरोधी नीति और चीन की विस्तारवादी आकांक्षाओं के कारण नेहरू का सपना साकार नहीं हो सका। भारत द्वारा पड़ोसी

देशों के प्रति सद्भावपूर्ण नीति अपनाई गई, परंतु पड़ोसी देशों ने भारत के प्रति संदेह और अविश्वास व्यक्त किया। सत्तर के दशक में अमेरिका, चीन एवं पाकिस्तान सामरिक गठजोड़ के कारण भारत की सुरक्षा पर गहरा खतरा उत्पन्न हुआ। इसी कारण भारत और सोवियत संघ के मध्य शांति और मित्रता की संधि (1971) संपन्न हुई। विश्व में व्याप्त शीत युद्ध और हथियारों की दौड़ के कारण भारत चाहकर भी सभी देशों के साथ सबध बेहतर नहीं कर सका। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को अमेरिका जैसे देशों ने सीधे नकार दिया। शीत युद्धोत्तर विश्व में क्षेत्रीय और वैश्विक कारकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन स्पष्ट रूप में दिखते हैं। भारत में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों को अपनाया गया। विदेश नीति में भू–अर्थ को प्राथमिकता दी गई तथा एक ध्रुवीय विश्व में अमेरिका के साथ बेहतर संबंध बनाने पर बल दिया गया। विदेश नीति में व्यापार एवं निवेश जैसे मुद्दे प्राथमिक हुए, परंतु दक्षिण एशिया में उभरते चीन के परिणामस्वरूप और चीन–पाकिस्तान गठजोड़ अभी भी भारतीय विदेश नीति एवं सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बना हुआ है।

वर्ष 1990 के बाद विश्व राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुए। अमेरिका–रूस के मध्य मित्रतापूर्ण संबंधों का विकास हुआ। अब रूस और चीन भी सामरिक मित्र बन गए तथा विश्व से पूंजीवाद बनाम् साम्यवाद का विभाजन समाप्त हो गया। अतः भारत ने लुक ईस्ट पॉलिसी (वर्ष 1992) अपनाई, जिससे दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के साथ आर्थिक संबंधों को सुदृढ़ किया जा सके।

e) इतिहास एवं परंपरा

भारत की विदेश नीति उसकी ऐतिहासिक परंपरा को प्रतिबिंबित करती है। भारत ने अपने क्षेत्रीय विस्तार के लिए देश के बाहर कभी भी कोई आक्रामक अभियान नहीं किया है। असल में वह स्वयं कई आक्रमणों एवं विदेशी शासन का शिकार रहा है। उल्लेखनीय है कि कई आक्रामकों ने इस देश को अपना घर मान लिया और यहाँ की प्रथा एवं परंपरा के अनुसार अपने को ढाल लिया। ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य ने सुनियोजित तरीके से एक देशी रियासत को दूसरे के साथ लड़वा कर अपनी स्थिति सुदृढ़ की जिसमें विजेता और हारने वाले दोनों को ही बराबर का नुकसान हुआ। भारत के युद्धों से पीड़ित अनुभव ने उसकी विदेश नीति की प्रकृति को युद्ध–विरोधी बना दिया। इसके अतिरिक्त, महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों के नेतृत्व में लड़े गए अहिंसक स्वाधीनता संग्राम की प्रकृति भी भारत की विदेश नीति में सुस्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय विदेश नीति की संरचना में विशेष तौर पर सहायक हुए मूल्य हैं सहिष्णुता, अहिंसा और विश्व–बंधुत्व। ए.अप्पादुरै के अनुसार भारतीय विदेश नीति में अहिंसा की परंपरा, विदेश नीति की समस्या के एक अभिगम की पद्धति की सुविचारित स्वीकृति है जोकि सामंजस्य और शांति की प्रकृति पर बल देती है और प्रतिशोध तथा घृणा की प्रकृति के विपरीत है।

स्वतंत्रता आंदोलन के ज्यादातर नेता इंगलैंड में शिक्षित थे या फिर उदार शिक्षा से परिचित थे। वे स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र को महत्व देते थे। ये आदर्श भारतीय विदेश नीति में सन्निहित हैं। यद्यपि भारत उदार लोकतांत्रिक देशों के साथ सहयोग करता है, लेकिन समाजवादी देशों का भी विरोध नहीं करता है। गुटनिरपेक्षता की नीति भारत को गुट की राजनीति से दूर रहने का परिणाम ही नहीं है बल्कि यह राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्शों और उद्देश्यों के अनुसार है जिसे हमारी जनता ने संजोया था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव और राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव भारत की विदेश नीति के निर्माण में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। ए. अप्पादुरै के अनुसार, भारत की विदेश नीति में ब्रिटिश राज्य का दोहरा प्रभाव पड़ा। प्रथम, इसने राष्ट्रीय आंदोलन को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया जिससे विश्व की पराधीन जनता को स्वतंत्रता के लिए भारत का सहयोग मिला द्वितीय, ब्रिटिश शासन के दौरान प्रचलित नस्लीय असमानता ने भारत को रंग–भेद का उन्मूलन करने के लिए प्रतिबद्ध किया।

हालांकि, इस आदर्शवादी धारणा के अलावा शासन कला के प्राचीनकाल के विद्वान कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित यथार्थवाद का भी महत्व नकारा नहीं जा सकता अर्थात आवश्यकतानुसार बल प्रयोग के द्वारा देश के अनिवार्य हितों की रक्षा करना भी जरूरी है। भारतीय नेता जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी संकट की स्थिति में राजनीति के निर्देशन में आदर्शवाद की सीमाबद्धता को स्वीकार करते हैं।

f) आर्थिक दशा

आर्थिक परिस्थितियों ने भारतीय विदेश नीति को प्रर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। लम्बी ब्रिटिश दासता एवं शोषण के कारण भारत की अर्थव्यवस्था आजादी के समय जर्जर अवस्था में थी। ब्रिटिश सरकार ने हमें विरासत में गरीबी, असमानता से ग्रस्त समाज प्रदान किया था। इस दुरावस्था से मुक्ति पाने हेतु भारत ने नियोजित अर्थव्यवस्था

की पद्धति को अपनाया परन्तु योजनाओं को चलाने के लिए जहाँ हमें प्राविधिक ज्ञान की आवश्यकता है, वहाँ धन की आवश्यकता भी पड़ती है। फलतः अनिवार्य रूप से हमें विदेशी आर्थिक सहायता एवं अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है। वैश्विक स्तर पर कच्चे माल और प्राकृतिक संपदा का स्वामित्व तथा आर्थिक विकास की अनिवार्यता, देश की विदेश नीति के निर्धारण में दिशा प्रदान करते हैं।

भारत विशाल प्राकृतिक संपदा का भंडार है जिसके पास विकास में आर्थिक ऊँचाइयों को पहुँच प्रदान करने की क्षमता है। इसकी नदियाँ विद्युत शक्ति के उत्पादन की क्षमता रखती हैं तथा पीने और सिंचाई के लिए पर्याप्त जल का प्रबंध करती हैं। बॉक्साइट, कोयला, तांबा, मैगनीज एवं अन्य खनिजों का विशाल भंडार भारत की संपत्ति है। साथ ही, कुशल और शिक्षित श्रमिक वर्ग इसका आधार है। हालांकि कृषि, साक्षरता, विज्ञान और प्रौद्योगिकीय प्रगति के बावजूद इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारत विकास में काफी पिछड़ा हुआ है। बढ़ती हुई जनसंख्या का अधिकांश भाग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का प्रबंध करने में भी सक्षम नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे नेता यह जानते थे कि देश को धन का हस्तांतरण, मशीनों एवं तैयार माल का आयात, भारतीय सामान का निर्यात, तकनीकी कार्मिकों के प्रशिक्षण आदि कई बातों के लिए विदेशी सरकारों से सहायता लेनी पड़ेगी। विचारधारा से द्विध्रुवीय विश्व में भारत को दोनों, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था वाले पश्चिम और पूर्व सोवियत संघ के नेतृत्व वाले समाजवादी देशों के साथ मैत्री एवं सद्भाव की आवश्यकता थी। ऐसे में गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाकर भारत ने दोनों गुटों से मदद की अपेक्षा की। भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया, जिसमें सार्वजनिक और निजी क्षेत्र का मिश्रण है। सार्वजनिक क्षेत्र में भारतीय राजकीय निवेश किया गया और साथ ही आधारभूत सेवाओं आदि जैसे कई क्षेत्रों में निजी क्षेत्र का योगदान रहा।

भारत के पूर्व–औपनिवेशिक शासक इंगलैंड के साथ आर्थिक संबंध से नेहरू को उस देश के साथ द्वि–पक्षीय एवं राष्ट्रमंडल के अंतर्गत मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने में सहायता मिली। भारत के व्यापार के बृहत् भाग के अंतर्गत कच्चे माल जैसे कपास, चाय का निर्यात तथा भारी मशीनें एवं प्रौद्योगिकी का आयात मुख्यतः अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों के साथ होता है। ये देश कई परियोजनाओं के लिए उदार अनुदान एवं ऋण की व्यवस्था करते आए हैं। इसके साथ ही विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से बहु–पक्षीय ऋण की भी सुविधा प्रदान करते रहे हैं। पूर्व सोवियत संघ भी आसान शर्तों पर रक्षा और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्य क्षेत्रों में भारत का महत्वपूर्ण साझेदार बना है।

यह भी उल्लेखनीय है कि औद्योगिक और आर्थिक आवश्यकताओं के लिए तेल पर निर्भरता ने मध्य–पूर्व में तेल समृद्ध अरब देशों से संबंध के विशेष महत्व के अलावा विश्व–बाजार में स्थिर मूल्य एवं आपूर्ति के लिए भारत कार्यरत है। एक अलग स्तर पर, देश की आर्थिक दशा भारतीय विदेश नीति को एक दिशा प्रदान करते हुए विकसित एवं विकासशील देशों के बीच असमानता को कम करने का तर्क देती है और विकासशील देशों के बीच अधिक आर्थिक सहयोग चाहती है।

1.5 हिंद महासागर में भारतीय विदेश नीति

हिंद महासागर भारत के दक्षिण में अवस्थित है और यह विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है। यह तीन तरफ से महाद्वीपों से घिरा हुआ है। इस महासागर का क्षेत्रफल 7.2 करोड़ वर्ग किमी. है। हिंद महासागर में भारत की केंद्रीय एवं प्रभुत्वपूर्ण स्थिति इसे वैश्विक महत्त्व की भूमिका निभाने में सहायता प्रदान करती है। हिंद महासागर विशेषकर स्वेज नहर से मलक्का जल संधि के बीच अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए भारत द्वारा वर्ष 1999 में सुदूर पूर्वी नौसैनिक कमांड की स्थापना अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में की गई। यह उल्लेखनीय है कि म्यांमार का कोकोद्वीप, जहां चीन ने एक नौसैनिक अड्डे का विकास किया है। इस सैनिक कमांड से यह मात्र 40 किमी. दूर है। वर्ष 1997 में इंडियन ओशियन रिम एसोसिएशन फॉर रीजनल को ऑपरेशन (हिमतक्षय) को स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त बिम्सटेक (ठप्डे) की स्थापना भी वर्ष 1997 में हुई। वर्ष 2000 में गंगा मेकांग परियोजना को आगे बढ़ाया गया। डियागो गार्थिया में पहले ही अमेरिका का सैनिक अड्डा बना हुआ है। उभरते चीन ने हिंद महासागर में अपने प्रभाव को बनाएं रखने के लिए स्टिंग ऑफ पर्ल्स की नीति को बढ़ावा दिया जिसका अभिप्राय है, हांगकांग से लेकर सूडान के पत्तन तक समुद्री संचार पर चीन का नियंत्रण बना रहे। जिसमें मलक्का जलसंधि से हार्मुज जलसंधि तक चीन अपना प्रभाव बनाए रखना चाहता है। इसके अंतर्गत चीन द्वारा पाकिस्तान (ग्वादर पत्तन) बाग्लादेश (चटगाव), मालदीव, हम्बनटोटा द्वीप (श्रीलंका), कोकांद्वीप (म्यांमार) और सोमालिया तक अपने–अपने नौसैनिक हितों को बनाए रखना है। स्टिंग ऑफ पर्ल्स के सिद्धात के बारे में अमेरिका के रक्षा विभाग द्वारा निर्मित रिपोर्ट एशिया में 0र्जा का भविष्य में उल्लेख किया गया। क्रिस्टोफर प्रियर्सन ने इसको व्याख्यायित करते हुए कहा कि श्स्टिंग ऑफ पर्ल्स चीन

के उभरते भू–राजनीतिक प्रभाव का परिणाम है. जिसके द्वारा चीन पत्तन और वायु सेना अड्डों पर अपनी पहुंच बेहतर करना चाहता है। विभिन्न राज्यों के साथ बेहतर कूटनीतिक संबंध बनाना, चीनी सेना का आधुनिकीकरण करके दक्षिणी चीन सागर मलक्का को संधि, हिंद महासागर और पर्शिया की खाड़ी तक अपने प्रभाव का विस्तार करना है। ऐसा माना जा रहा है कि 21 वीं शताब्दी में अमेरिका के अतिरिक्त चीन और भारत, हिंद महासागर में प्रतिस्पर्धा बनाए रखने वाले मूल देश होंगे।

1.6 वैश्विक वातावरण

वर्तमान युग उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण का युग है। क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों एवं विश्व व्यापार संगठन के युग में विविधताकारी विदेश नीति अपनाते हुए अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, लुक वेस्ट पॉलिसी, मध्य एशिया के साथ भी व्यापारिक आर्थिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। शीत युद्ध की समाप्ति और बढ़ते भारतीय–अमेरिकी संबंधों के परिणामस्वरूप भारत के जापान, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया के साथ भी मधुर और मित्रतापूर्ण संबंध विकसित हो रहे हैं, जिसका परिणाम है कि ऑस्ट्रेलिया और भारत के बीच भी असैन्य परमाणु समझौता (वर्ष 2014 में) संपन्न हुआ।

शीत युद्धोत्तर विश्व में रूस के साथ सदाबहार मित्रतापूर्ण संबंध कायम हैं। यद्यपि अब भारत और रूस के संबंध यथार्थवादी आधार पर निर्मित हैं। भारत अपनी सैन्य सुरक्षा सामग्री की आपूर्ति के लिए रूस के अतिरिक्त अमेरिका, इजरायल, फ्रांस व ब्रिटेन सभी देशों के साथ समझौता कर रहा है, क्योंकि हथियारों की आपूर्ति के लिए किसी एक देश पर निर्भर रहना राष्ट्रीय सुरक्षा के अनुकूल नहीं है। चीन का शांतिपूर्ण उभार भारतीय विदेश नीति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। भारत के द्वारा एक ओर सामरिक सुरक्षा सुदृढ़ करने के लिए न्यूनतम परमाणु प्रतिरोधक क्षमता का विकास किया गया और सैन्य आधुनिकीकरण पर बल दिया जा रहा है, तो दूसरी ओर, चीन के साथ द्विपक्षीय व्यापारिक संबंधों को बढ़ाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है, क्योंकि चीन, वर्तमान विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है व उससे भी बढ़कर भारत का पड़ोसी है। अतः चीन के साथ सहयोग एवं प्रतिरोध दोनों की नीति समानांतर रूप में बनाए रखनी होगी।

वर्तमान विश्व में व्याप्त वैश्विक आतंकवाद से भारतीय विदेश नीति पर इसके स्पष्ट प्रभाव देखे जा सकते हैं। इसलिए भारत ने अफगानिस्तान में एक लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन किया तथा सीमापार आतंकवाद के मुद्दे पर पाकिस्तान पर अंतर्राष्ट्रीय दबाव बनाने का प्रयत्न किया गया। भारत की अभी भी यह मान्यता है कि आतंकवाद के विरुद्ध दोहरे मानदंडों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। आतंकवाद को किसी भी आधार पर औचित्यपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। भारत ने सदैव सतत् विकास का समर्थन किया, परंतु विकासशील देशों के हितों को संरक्षित करने की मांग भी उठाई। भारत के अनुसार, पर्यावरणीय समस्या के समाधान के लिए साझे परंतु अलग–अलग उत्तरदायित्व के सिद्धांत का प्रयोग होना चाहिए। विश्व में व्याप्त सुरक्षा की नई चुनौतियों या सुरक्षा के गैर–परंपरागत खतरों को सुलझाने के लिए एक शक्तिशाली संयुक्त राष्ट्र की आवश्यकता है। इसलिए भारत ने संयुक्त राष्ट्र के सुधार पर बल दिया तथा स्थायी सदस्यता का दावा भी प्रस्तुत किया।

भारत को मानना होगा कि आतंकवाद से जुड़े मुद्दों पर पाकिस्तान की रक्षा और आतंकवाद के प्रति कुछ देशों का चयनात्मक दृष्टिकोण एक चुनौती है। भारत राजनीतिक रूप से स्थिर देश है और उसकी अर्थव्यवस्था स्थिर है। भारत अपनी सैन्य शक्तियों में धीरे–धीरे लेकिन लगातार वृद्धि कर रहा है। एक बड़े बाजार के रूप में भारत विदेशी निवेश, संयुक्त उद्यम, कमोडिटी निर्यात के लिए एक आकर्षक गंतव्य है।

1.7 सैन्य शक्ति

विदेश नीति के निर्धारण में सैनिक शक्ति को किसी भी राष्ट्र की शासन प्रणाली का आधार माना जाता है। यदि किसी राज्य के पास शक्तिशाली सेना हो तो वह अपने प्रतिद्वंद्वियों से सफलतापूर्वक समझौता कर सकता है। भारत की विश्व में तीसरी सबसे बड़ी सैनिक व्यवस्था है। भारत एक परमाणु संपन्न देश है। यह अपनी परमाणु शक्ति का प्रयोग बाहरी खतरों के विरुद्ध भय निवारण के रूप में करता है। भारत के दोनों पड़ोसी पाकिस्तान और चीन भारत के साथ संघर्ष की स्थिति में देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में सशक्त सैन्य शक्ति और उसका और अधिक विकास विदेश नीति का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्धारक बन गया है।

1.8 सारांश

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारक तत्वों में देश की भौगोलिक स्थिति, इतिहास, परम्पराएँ, संस्कृति, आर्थिक विकास का स्तर, सैनिक बल तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ आदि तत्त्व गिने जाते है। भारत की विदेश नीति के निर्माताओं के समक्ष प्राचीन विद्वान कौटिल्य का दर्शन उपलब्ध था। कौटिल्य एक यथार्थवादी राजनेता था जो कि बुद्ध को शक्ति एवं विदेश नीति का प्रमुख समाधान मानता था। सम्राट अशोक ने शांति, स्वतंत्रता तथा समानता के मूल्यों पर बल दिया था। नेहरू ने सम्राट अशोक के आदर्शों पर चलने का निश्चय किया और अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा विवादों के शांतिपूर्ण समाधान जैसे मूल्यों को संविधान के भाग चार में उल्लिखित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में भी शामिल करवाया। भारत की विदेश नीति मूल रूप से गांधीजी के दर्शन, हमारे स्वतंत्रता संग्राम के आदर्शों तया भारतीय परम्परा के मौलिक सिद्धान्त वसुधैव कुटुम्बकम पर आधारित है।

अतः इसप्रकार, विदेश नीति के निर्धारण में अनेक अवयव विद्यमान होते हैं। सभी तत्वों के मिले–जुले प्रभाव विदेश नीति की दिशा एवं दशा सुनिश्चित करते हैं। परंतु ये अवयव निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं, इसलिए विदेश नीति में बदलाव देखने को मिलता है।

1.9 बोध प्रश्न

1. भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य और सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. भारतीय विदेश नीति के निर्धारकों में भूगोल, इतिहास एवं परंपरा का वर्णन कीजिए।
3. यह व्याख्या कीजिए कि भारत के आर्थिक पिछड़ेपन ने किस प्रकार से भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किया।
4. भारत की विदेश नीति के निर्धारण में घरेलू वातावरण ने कहाँ तक प्रभावित किया है। टिप्पणी कीजिए।
5. बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों ने भारत की भू–राजनीति विदेश नीति को कहाँ तक प्रभावित किया है?

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1. दत्त, वी0 पी0: इंडिया एंड द बल्ड, नई दिल्ली, 1990
2. अग्रवाल, मीनाः राजीव गाँधी, डायमण्ड पॉकेट बुक, नई दिल्ली, 2004
3. अस्थाना, वन्दनाः इंडियाज फारैन पॉलिसी एण्ड सबकन्टीनेन्टल पॉलिटिक्स, कनिष्क पाब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
4. अप्पादोराई, ए0: एसेज इन इंडियन पॉलिटिक्स एण्ड फारेन पॉलिसीज, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली
5. अप्पादोराई, ए0 (सम्पादित): सेलेक्ट डाक्यूमेन्ट्स आन इंडियाज फारेन पालिसी एण्ड रिलेशंस (1947– 1972), आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1985
6. कुमार, सतीश (सम्पादित): ईयर बुक आन इंडियाज फारेन पालिसी, (1990–1991), नई दिल्ली
7. खन्ना, वी0 एन0 एवं अरोड़ा, लिपाक्षीः भारत की विदेशनीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2007
8. ग्रोवर, बी0 एल0: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, एस0 चन्द्र कं0, नई दिल्ली
9. गुप्ता, एम0 जी0: राजीव गाँधी फारेन पॉलिसी, ए स्टडी इन कन्टीन्यूटी एंड चेंज, एम0 जी0 पब्लिशर्स, आगरा, 1987.

इकाई–2 भारत की विदेश नीति के उद्देश्य और सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारतीय विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.3 विदेश नीति का अर्थ

2.4 भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य

2.5 भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्त

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्न

2.8 संदर्भ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आप–

- भारतीय विदेश नीति का अर्थ एवं उद्देश्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय विदेश नीति से जुड़े सिद्धान्तों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत भारतीय विदेश नीति से जुड़े तथ्यों एवं उद्देश्यों तथा सिद्धान्त के विषय में चर्चा की गयी है। प्राचीन काल से लेकर भारतीय विदेश नीति में राज्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों तथा राजनयिक सम्बन्धों की एक पृष्ठभूमि रही है। भारत ने अपने विगत अनुभवों से सीखकर एक स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया। भारतीय पृष्ठभूमि सदैव से शांतिपूर्ण, सद्भावना जैसे–उद्देश्यों पर टिकी हुई है। भारत ने अपने वैदेशिक सिद्धान्तों में विश्व शान्ति, सहयोग गुटनिरपेक्षता, निशस्त्रीकरण, साम्राज्यवाद का विरोध, उपनिवेश वाद का विरोध, संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था जैसे सिद्धान्तों को सम्मिलित किया। भारतीय विदेश नीति लम्बे समय से राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर ही नीतियों का निर्धारण करती आयी है।

2.2 भारतीय विदेश नीति–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत वर्ष की ऐतिहासिक परम्परा की जड़े हजारों वर्ष पुरानी है। प्राचीन ग्रन्थों, पुराणों में भी भारतीय संदर्भ में विदेश नीति का वर्णन मिलता है। महाभारत के शांति पर्व में भी कई सन्दर्भ ऐसे मिलते है। भारतीय प्रशासकों ने विदेश नीति और राजनय को कितना महत्वपूर्ण माना है इसका वर्णन हमें प्राचीन ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है।

महाभारत के अतिरिक्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी विदेश नीति के यथार्थवादी निर्देशों को स्पष्ट किया है। कौटिल्य ने मण्डल सिद्धान्त में यह सलाह भी दी कि किस प्रकार से पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित किये जाने चाहिए और शत्रु के शत्रु के साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विदेश नीति के नियोजन और राजनयिक सम्बन्धों की परम्परा भी उतनी ही पुरानी है, जितनी कि यूरोप और चीन जैसे देशों की।

भारतीय विदेश नीति की ऐतिहासिक परम्परा केवल हजारों वर्ष पुरानी ही नही है। बल्कि यह परम्परा मुगल काल, मराठों, तथा ब्रिटिश शासन काल के दौरान भी देखने को मिलती है।

भारतीय विदेश नीति के निर्धारण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, नेहरू जी ने एक सफल भूमिका का निर्वाह किया। स्वतंत्र विदेश नीति के निर्माण में ब्रिटिश परम्परा का भी गहरा प्रभाव दिखायी पड़ता है क्योंकि भारत एक लंबे समय तक औपनिवेशिक शासन के अधीन रहा है अतः इस कारण से इसका प्रभाव देखने को मिलता है।

स्वतंत्र विदेश नीति के निर्माण में नेहरू जी ने भी प्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। उन्होंने वैदेशिक मामलों में रूचि दिखायी और विदेश विभाग का गठन किया।

भारत की विदेश नीति के निर्माण में आंतरिक वातावरण, परिस्थितियां, सम्बन्ध आदि महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की आजादी के बाद स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण हुआ जिसमें नेहरूकालीन भारतीय विदेश नीति प्रभावशाली ढंग से लागू हुई।

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों का योगदान होता हैं। भारत सदैव यह प्रयास करता आया है कि पड़ोसी देशों के साथ उसके सम्बन्ध सौहार्द पूर्ण रहें। भारत के पड़ोसी देश नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका सम्प्रभु राष्ट्र है जिनके अपने–अपने अलग हित है। प्रत्येक राष्ट्र के राष्ट्रीय हित स्पष्ट है जिस कारण कोई भी देश भारतीय विदेश नीति के हितो की अपेक्षा नहीं कर सकता है।

भारत की भौगोलिक स्थिति उत्तर में चीन और दक्षिण में हिन्द महासागर भारत को अधिक महत्वपूर्ण देश बना देता है। भारत आबादी की दृष्टि से दूसरे नंबर का देश है। प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता में विदेश नीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार भारतीय राजनयिक तथा विदेश नीति की परम्परा भी उतनी ही पुरानी है।

2.3 विदेश नीति का अर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन में विदेश नीति एक बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। आज प्रत्येक देश एक–दूसरे पर आर्थिक रूप से निर्भर है और देशों की परस्पर निर्भरता ही उसे आपसी सम्बन्धों को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रत्येक राज्य के आपसी हितों को ही राष्ट्रीय हित कहा जाता है।

प्रत्येक राज्य का अन्य देशों के साथ व्यवहार इन्ही राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए लिया जाता है। इन्हीं के आधार पर ही विदेश नीति का निर्धारण होता है। ह्यूज गिब्सन (Hugh Gibson) के अनुसार विदेश नीति, ज्ञान और अनुभव पर आधारित एक ऐसी सुनिश्चित और वृहद् योजना है जिसके द्वारा किसी सरकार के शेष संसार के साथ संबंधों का संचालन किया जाता है। इसका उद्देश्य राष्ट्र के हितों को प्रोत्साहित और सुरक्षित करना होता है।

हार्टमेन के अनुसार 'यह जानबूझकर चयन किए गए राष्ट्रीय हितों का एक क्रमबद्ध वक्तव्य है।'

मॉडेल्स्की के अनुसार अन्य राज्यों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करना ही विदेश नीति का उद्देश्य है।

विदेश नीति का उद्देश्य राज्यों के व्यवहार को नियंत्रित करना होता है न केवल उनमें परिवर्तन करना। प्रत्येक राष्ट्र कुछ ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण करता है जिनके मार्गदर्शन में वह अन्य राज्यों के साथ अपने सम्बन्धों को सुनिश्चित करता है। ये सिद्धान्त राष्ट्रीय हित और शक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित होते है।

विदेश नीति के निर्धारण में नीति निर्धारकों की भूमिका भी अहम् होती है। विदेश नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में विदेश मंत्री सिद्धान्तों के विषय में अवश्य सोचते है।

आधुनिक समय में संचार और जन साधारण की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। महेन्द्र कुमार जी के अनुसार विदेश नीति में कुछ तत्वों को शामिल किया जाता है जो कि महत्वपूर्ण है जैसे नीति निर्धारक, राष्ट्रीय हित उद्देश्य, विदेश–नीति के सिद्धान्त, विदेश नीति के साधन। इस प्रकार उन्होंने विदेश नीति को परिभाषित करते हुए कहा है कि सोच समझकर निश्चित किए गए, ऐसे उपाय और कार्य हैं जो कि विदेश संबंधों के उद्देश्यों को, राष्ट्रहित की विचार धारा के अनुसार प्राप्त करने का प्रयास करते है।

2.4 भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य **(Objectives of India's Foreign Policy)**

भारतीय विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों का योगदान रहा है और कई तत्वों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका

का निर्वाह किया है। किसी भी देश की विदेश नीति को प्रभावित करने में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

विदेश नीति के निर्धारण में सरकार के अध्यक्ष और विदेश मंत्री की बहुत प्रभावपूर्ण भूमिका रहती है। स्वतंत्रता के पश्चात् जवाहरलाल नेहरू ने प्रधानमंत्री का पद संभाला और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण विदेश नीति में अपनी भूमिका निभाई। नेहरू जी लोकतांत्रिक समाजवाद से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने गाँधी जी से प्रेरित होकर अहिंसा के सिद्धान्त का भी पालन किया।

नेहरू जी के समक्ष मार्क्सवादी विचारधारा और फासीवादी विचारधाराएं थी जो कि हिंसा पर आधारित थी। परन्तु उन्होंने गाँधी जी के शांति मार्ग का अनुसरण करते हुए साम्राज्यवादी विचारधाराओं की आलोचना की।

नेहरू जी के 0पर गाँधी के आदर्शवाद, भारतीय दर्शन का गहरा प्रभाव था। अतः विदेश नीति के निर्माण में उन्होंने आदर्शवादी विचारों को समाहित किया। क्योंकि उनके अनुसार 'सिद्धान्त निश्चित करना आसान है परन्तु कठिनाई तब आती है जब इन सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करना होता है।' नेहरू जी ने भारतीय विदेश नीति के जो उद्देश्य निर्धारित किये वह आज भी देश में मान्य है।

विदेश नीति का निर्माण करते समय नीति निर्माताओं द्वारा कुछ उद्देश्य निश्चित किये जाते है जिनके आधार पर देश अपनी विदेश नीति का संचालन करते है और राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए ही विदेश नीति के उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है।

भारत सदैव से ही शांति उपासक देश रहा है और इसकी विदेश नीति का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना रहा है। इन आदर्शों को संविधान में भी उल्लेखित किया गया है। भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य इतने मौलिक है कि इसे हमेशा राजनीतिक दलो और जनसाधारण का समर्थन प्राप्त रहा है। यह उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय नीति का आधार रहे हैं। कोई भी सरकार इन उद्देश्यों से समझौता नहीं कर सकती है और न ही इसकी अवहेलना कर सकती है क्योंकि यह संविधान में उल्लिखित है।

भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य को निर्धारित करने में उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की भी भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि एक लम्बे समय तक भारत ब्रिटिश शासन के अधीन रहा है और उसके अनुभवों से भी परिचित था, स्वतंत्रता के पश्चात् भारत–पाक विभाजन ने भी कई समस्याओं को जन्म दिया साथ ही आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा जिस कारण से हालात और परिस्थितियों ने भी भारतीय विदेश नीति को एक सबल आधार प्रदान किया।

भारत ने विश्व युद्ध के परिणामों को भी देखते हुए विश्व शांति को अपनी विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य बनाया। भारत ने एक ऐसी विश्व व्यवस्था का समर्थन किया जो शान्ति और सहयोग के उद्देश्यों पर आधारित हो इसलिए उसने संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया। विदेश नीति का एक और मुख्य उद्देश्य परमाणु अस्त्रों का विनाश था।

नेहरू जी ने गाँधी जी के आदर्शवाद को भारतीय विदेश नीति का आधार माना और एक ऐसी विदेश नीति का समर्थन किया जो कि किसी भी देश के शक्तिशाली प्रभाव से मुक्त हो। इसके लिए भारत ने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया।

भारत ने यह निश्चित किया कि वह अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ सहयोग करेगा जिससे विकासशील देशों की भुखमरी, गरीबी, निरक्षरता, आकाल जैसी बुराइयों से निपटा जा सके। इसके लिए भारत को विश्व स्वास्थ संगठन, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, कृषि संगठन से सहायता मिली और इसके साथ सहयोग से वह अन्य समुदायों की भी मदद कर सकता है।

भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहने के पश्चात भी राष्ट्रमंडल का सदस्य बने रहना स्वीकार किया क्योंकि उसका मानना था कि इससे उसके राष्ट्रीय हित को कोई नुकसान नही पहुँचेगा और इससे उसको लाभ ही पहुँचेगा। इससे शामिल देश ब्रिटिश शासन के अधीन उपनिवेश भी रह चुके है।

इसके अतिरिक्त भारतीय विदेश नीति का उद्देश्य पड़ोसी देशों के साथ आपसी संबंधों को मैत्रीपूर्ण बनाना था। भारत ने सदैव यह प्रयास भी किया कि देशों के बीच आपसी विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया जाये। गुट निरपेक्ष रहते हुए अन्य राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों को मधुर बनाया जाये तथा विश्व शांति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा जाये।

2.5 भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्त (Principles of India's Foreign Policy)

भारतीय विदेश नीति के अन्तर्गत, गुटनिरपेक्षता, विश्व शान्ति, निशस्त्रीकरण, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद का विरोध संयुक्त राष्ट्र के प्रति विश्वास इसके मुख्य सिद्धान्त माने जाते रहे है। नेहरू जी का मानना था कि आज का आदर्शवाद भविष्य में यथार्थवाद होगा।

भारतीय विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्त निम्नखित है :–

1. गुटनिरपेक्षता–

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति विश्व समुदाय के लिए सबसे महत्वपूर्ण रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तनावपूर्ण माहौल कायम था और चारो ओर अशान्ति व्याप्त हो गयी थी जिसे शीतयुद्ध का नाम दिया गया। जिसमें विश्व दो गुटों में विभाजित हो गया था, स्थिति तनाव पूर्ण थी। फलस्वरूप भारत ने यह निश्चय किया कि वह दोनों गुटों में से किसी भी गुट में शामिल न होकर एक स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण करेगा जिससे वह सभी राष्ट्रों से मित्रता कायम रख सके तथा अपने आर्थिक हितों की भी पूर्ति कर सके। क्योंकि ऐसा न करने पर वह अपनी स्वतन्त्रता को खो देगा। भारत ने यह निश्चय किया कि वह उपनिवेश विरोधी भावनाओं के विरूद्ध काम करेगा और किसी पश्चिमी ताकत का सहयोग न करके स्वतन्त्र रहकर वह अपनी विदेश नीति का निर्धारण करेगा।

गुटनिरपेक्षता का पालन करते हुए वह विश्व शांति में सहयोग करेगा।

2. विश्व शान्ति का प्रयास –

प्रारम्भ से ही नेहरू जी का विश्वास विश्व शान्ति की ओर था क्योंकि वह गाँधी जी के आदर्शवादी विचारों के पक्षधर थे। उन्होंने चूँकि अपने जीवन काल में विश्व युद्ध के परिणामों और भारी नरसंहार, युद्ध की विभीषिका में झुलसते हुए देशों को देखा था जिससे उनका विश्व शान्ति की ओर झुकाव था। उनका मानना था कि नवोदित विकासशील राष्ट्रों के लिए तब तक राष्ट्रीय संसाधन नहीं उपलब्ध हो पायेंगे। जब तक कि वह इन साम्राज्यवादी देशों से दूर नहीं रहेगें। परमाणु अस्त्रों ने भी उनके विचार को अधिक मजबूती प्रदान की और इसलिए नेहरू जी ने विश्व शान्ति को सर्वाधिक प्राथमिकता प्रदान की।

3. निःशस्त्रीकरण का समर्थन–

भारत का यह मानना रहा है कि जब तक विश्व में शस्त्रीकरण की होड़ लगी रहेगी तब तक विश्व शान्ति की स्थापना करना मुश्किल है। परमाणु शस्त्रों के अविष्कार ने नित्र;शस्त्रीकरण की प्रक्रिया को बाधा पहुँचायी है। नेहरू जी ने नि;शस्त्रीकरण का समर्थन किया और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर टकराव को रोकने का प्रयास किया। नेहरू जी का मानना था कि यह किसी दुर्बलता का सूचक नही है बल्कि विश्व शान्ति की ओर एक प्रयास है। गुटनिरपेक्ष देशों ने भी संयुक्त राष्ट्र में आस्था व्यक्त की और नि;शस्त्रीकरण के लिए प्रयास किया।

4. साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध–

भारतीय विदेश नीति के निर्माताओं ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद के विरोध में अपने विचार प्रकट किये। भारत चूँकि एक लम्बे समय तक ब्रिटिश उपनिवेशवाद का शिकार रहा इसलिए उसने सदैव इसका विरोध किया। उसने अफ्रो– एशियाई देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया।

इस प्रकार आत्म निर्णय के अधिकार को भारतीय विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त माना। भारत का यह भी मानना था कि पराधीन देशों को स्वतंत्रता से वंचित रखना मानव अधिकारों का उल्लंघन करना है। इस प्रकार उसने साम्राज्यवाद का विरोध किया।

नेहरू जी का विश्वास था कि विश्वशान्ति को सबसे बड़ा खतरा साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नस्लवाद जैसे विरोधी ताकतों से है। नेहरू जी अपने अनुभव के आधार पर सदैव शान्तिपूर्ण समाधान चाहते थे। उनका मानना था कि साम्राज्यवाद को शीघ्र समाप्त न करने पर साम्यवादी विचारधारा का प्रारम्भ हो सकता है। पश्चिमी देश अनेक उपायो से शोषण करके नव उपनिवेशवाद को बढ़ावा देते है। धीरे–धीरे यह आर्थिक शोषण राजनीतिक नियंत्रण में बदल जायेगा। इसलिए भारतीय विदेश नीति का यह सिद्धान्त था कि पराधीन देशों को स्वतंत्र कर उन्हें दासता से मुक्त किया जाये।

5. जातिभेद और रंगभेद का विरोध–

भारत सदैव ही मानव जाति की समानता में विश्वास रखता रहा है। उसने अपनी विदेश नीति के सिद्धान्त में जातिभेद, रंगभेद का विरोध किया है। दक्षिण अफ्रीका 1990 के दशक में जातिभेद, रंगभेद का सबसे बड़ा उदाहरण रहा है। दक्षिण अफ्रीका की सरकार का भारत ने विरोध किया और राजनयिक संबंध को समाप्त कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भी भारत ने इसका विरोध किया। भारतीय क्रिकेटरों और अन्य खिलाड़ियों के प्रति असमानता के व्यवहार का विरोध किया। भारत ने सदैव एक ऐसे समाज की कल्पना की जो रंग, जाति, वर्ग पर आधारित न होकर समानता पर आधारित हो। भारत ने इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया।

6. संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास–

भारत ने संयुक्त राष्ट्र की संस्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत सदा से ही विश्व शान्ति के लिए प्रयासरत रहा है। उसने इसके लिए नि:शस्त्रीकरण का भी समर्थन किया है। भारत का मानना रहा है कि संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बना कर ही विश्व शान्ति के उद्देश्यों को पाया जा सकता है। भारत संयुक्त राष्ट्र में गुटनिरपेक्ष देशों का प्रमुख सदस्य रहा है। भारत यह अच्छी तरह से जानता रहा है कि साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नि:शस्त्रीकरण के प्रसार के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ एक बहुत बड़ा मंच है। भारत ने हमेशा आवश्यकता पड़ने पर संयुक्त राष्ट्र संघ का पूर्ण सहयोग किया हैं।

भारत का आज यह दावा है कि उसे संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य नियुक्त किया जाए जो कि उचित भी है। भारत की नीति मूल्यों पर आधारित है और भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को एक विश्वव्यापी संगठन बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

7. अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान–

जब भी दो राष्ट्रों के बीच विवाद उत्पन्न होता है तो उसे शांतिपूर्ण समाधान के द्वारा सुलझाने का प्रयास किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण भी इसी उद्देश्य के लिये किया जाता है। शांतिपूर्ण समाधान आपसी बातचीत, न्यायिक निर्णय, मध्यस्थता के माध्यम से किये जाते है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 में यह निर्देश दिया गया है कि सरकार अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने का प्रयास करेगी। भारत का मानना है कि विवादों का समाधान तो करना ही है परन्तु वह शांतिपूर्ण समाधान होना चाहिए।

8. गुजराल सिद्धान्त–

गुजराल सिद्धान्त का निर्माण स्वयं प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने किया था। गुजराल ने देशों के बीच पारस्परिक संबंधों को बढ़ावा देने तथा सुधारने पर बल दिया था। जिससे आपसी मतभेदों को सुलझाया जा सके।

गुजराल ने विभिन्न देशों के बीच तथा पड़ोसी देशों से संबंध सुधारने के लिए बल दिया। यह उनके सिद्धान्त का केन्द्रीय आधार था।

गुजराल ने विदेश नीति में पांच सूत्रीय सिद्धान्तों की रूपरेखा बनायी जो कि देशों में न्याय और समानता के आधार पर आर्थिक सामाजिक विकास के उद्देश्य पर आधारित था और उनका मानना था कि पड़ोसी देशों में विकास की दर बढ़ी हुई दर पर होनी चाहिए।

वर्तमान भारतीय विदेश नीति में भाजपा सरकार में मई–2014 में श्री नरेन्द्र मोदी ने प्रधान मंत्री पद का उत्तरदायित्व संभाला। उसके पश्चात् भारतीय विदेश नीति में काफी परिर्वतन देखने को मिलता है। 9 वर्षो में इतना परिर्वतन किसी अन्य प्रधानमंत्री के कार्यकाल में कभी नही हुआ। इसका कारण शायद बदलती वैश्विक व्यवस्था, चुनौतियॉ है जो कि वैश्विक परिपेक्ष्य में परिलक्षित होती है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, ने अपने कार्यकाल में पडोसी देशों को प्राथिमिकता देने का शिलशिला शुरू किया। उन्होने 2014 में, सार्क देशों के सभी सदस्यों को आमंत्रित किया। मोदी की इस नीति को "पडोसी प्रथम की नीति" कहा जाता है। प्रथम विदेशी दौरे के लिए उन्होने भूटान को चुना जो कि भारत का पडोसी देश है। प्रधान मंत्री की अपने पडोसी देशों प्राथमिकता देने की रण नीति से भारत के विदेश नीति में सकारात्मक परिवर्तन हुए है।

भारत के राष्ट्रीय सामरिक हितो पर पर फरवरी 2019 में, कश्मीर (पी.ओ.के) तथा राजस्थान एवं म्यांमार में एयर स्ट्राइक की थी।

विदेश नीति के जानकारो का मानना है कि सरकार की विदेश नीति अलग होने का कारण आज का भारत और आज का विश्व अलग है। आज वैश्विक चुनौतियाँ भी बहुत अधिक है। चीन एशिया में आर्थिक एवं सैनिक शक्ति के रूप में उभरा है। उसका नजरिया भारत के प्रति आक्रामक है। अमेरिका भी पहले की तरह शक्तिशाली नही रह गयाहै। भारतीय विदेश नीति में आज दूरदर्शिता के साथ–साथ लचीलापन भी दिखाई देता है। रूस यूक्रेन युद्ध में पूरा विश्व दो खेमो में बटा हुआ नजर आ रहा है। परन्तु वर्तमान सरकार ने चुनौतिपूर्ण स्थिति में भी दोनो गुटो से अपने सम्बन्धों को प्रगाढ करने का संदेश दिया और तटस्थता की नीति अपनाते हुए शान्ति का संदेश दिया।

सामरिक हितो को प्रमुखता देते हुए भारत ने रूस से एस–400 डिफेंस मिसाईल खरीद कर साबित किया कि राष्ट्रीय हित एवं सुरक्षा के लिए भारत किसी के दबाव में नही आयेगा। कोरोना काल में सद्भावना मैत्री को प्रदर्शित करते हुए, भारत की वैक्सीन कूटनीति भी कॉफी सफल रही कहने का तात्पर्य है। आज भी भारतीय विदेश नीति आपने मूल्यों, सिद्धान्तों को लेकर ही चल रही है।

2.6 सारांश

भारतीय विदेश नीति का निर्माण हमेशा से शांति, सुरक्षा, राष्ट्रीय हित, समानता, साम्राज्यवाद के विरोध में, जैसे उद्देश्यों पर आधारित रहा है। भारतीय विदेश नीति प्रारम्भ से ही दर्शन, परम्परा तथा गाँधीजी को इन्हीं उद्देश्यों की आदर्शवादी विचारों पर आधारित रही है। प्राप्ति करने के लिए नेहरू जी ने सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार की। गुटों की राजनीति से दूर रहकर गुटनिरपेक्षता की नीति का समर्थन किया। पंचशील के सिद्धान्तों का अनुसरण किया। भारतीय विदेश नीति में उपनिवेशवाद का विरोध किया तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का समर्थन किया।

भारत ने सदैव ऐसी परम्परा को स्वीकार किया जिसमें विदेश नीति के सिद्धान्तों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नही किया।

भारतीय विदेश नीति की यह धारणा रही है कि एक स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया जाये। भारतीय विदेश नीति सामान्य रूप से इन 75 वर्षों में कुछ अवसरों को छोड़कर सफल रही है।

2.7 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय विदेश नीति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय विदेश नीति के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय विदेश नीति के मूलभूत सिद्धान्त कौन से है।
2. नेहरूकालीन भारतीय विदेश नीति की उपलब्धियों एवं सफलताओं की समीक्षा कीजिए।

<u>सन्दर्भ सूची</u>

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : पी0डी0 कौशिक
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : डा पुष्पेश पंत तथा श्रीपाल जैन
3. भारतीय विदेश नीति : पंत, गुप्ता, जैन
4. भारतीय विदेश नीति : बी0एन0 खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा
5. इन्टरनेशनल रिलेशन्स : पामर एण्ड पारकिन्सन
6. इन्डिपेंन्डेंस एण्ड ऑफ्टर : जवाहरलाल नेहरू
7. दी कांग्रेस आइडियोलोजी एण्ड प्रोगाम : पी0डी0 कौशिक

इकाई–3 स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति

3.3 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात भारत की वैश्विक दृष्टि

3.4 द्वितीय विश्व युद्ध काल में भारतीय नीति के वैचारिक संघर्ष

3.5 विश्व शांति गुट निरपेक्षता एवं पंचशील

3.6 आदर्शवाद से व्यावहारिक पक्ष की ओर अग्रसर

3.7 सारांश

3.8 बोध प्रश्न

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तक

3.0 उद्देश्य

- स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति को समझना
- द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात भारत की वैश्विक दृष्टि
- द्वितीय विश्व युद्ध काल में भारतीय विदेश नीति के वैचारिक संघर्ष
- विश्व शांति गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील
- आदर्शवाद से व्यावहारिक पक्ष की ओर अग्रसर आदि मुद्दो को समक्षना।

3.1 प्रस्तावना

हजारों वर्षो की गुलामी के कारण अरब मुगलों यूरोपियन तथा ब्रिटिश हुकूमतो के अनुभव से भारत को विदेश नीति की रूपरेखा विरासत में ही मिल चुकी थी। सर्वधर्म समभाव तथा वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा सबके प्रति खुली हुयी एवं स्वभाव से उदारवादी है। जिसकी स्थापना हजारो वर्ष पूर्व वेदों के द्वारा ही कर दी गई थी। प्राचीन भारत के प्रामाणिक ग्रंथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विदेश नीति की विस्तृत चर्चा से पता चलता है कि वर्तमान युग के युद्ध एवं शांति की नीति की तुलना में कौटिल्य का मण्डल एवं 'ाड्गुप्त सिद्धान्त विदेश नीति के क्षेत्र में अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुनियोजित दृष्टी रखता था। भारत की प्राचीन संस्कृति एवं परिवेश को बदलने में जितना मुगलकाल का हाथ था उतना ही ब्रिटिश काल का था। लेकिन यह भी स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजो की सामरिक–रणनीति, कूटनीतिक कौशल श्रेष्ठ थी। इसीलिये उन्होने भारतीयो के 0पर अपना उपनिवेशवादी प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अंग्रेजो ने भारतीयो का सामाजिक–आर्थिक रूप से शोषण किया। इन्ही सब मुद्दो को कांग्रेस ने स्वतत्रंता आन्दोलन का आधार बनाया। स्वतंत्रता एवं पंचशील सिद्धान्त को भारतीय विदेश नीति में प्रमुख स्थान दिया गया।

3.2 स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति

पृष्ठभूमि

हजारों वर्षों की गुलामी के कारण अरब मुग़लों, यूरोपियन तथा ब्रिटिश हुकूमतों के अनुभव से भारत को विदेश नीति की रूपरेखा विरासत में ही मिल चुकी थी। "सर्वधर्म समभाव" तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा सबके प्रति खुली हुई एवं स्वभाव से उदारवादी है, जिसकी स्थापना हजारों वर्ष पूर्व वेदों के द्वारा ही कर दी गई थी। प्राचीन भारत के प्रामाणिक ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विदेश नीति की विस्तृत चर्चा से यह पता लगता है कि वर्तमान युग के युद्ध और शान्ति की नीति की तुलना में, कौटिल्य का मण्डल एवं 'ाडगुण्य सिद्धान्त, विदेश नीति के क्षेत्र में अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुनियोजित दृष्टि रखता था, जिसका अनुकरण कर, विजयी राज्य निरन्तर अपने पराक्रम को बनाए रखने के साथ–साथ, अपने राष्ट्रहित, प्रजाहित और सैनिकों की सुख सम्पन्नता के प्रति सचेत रहते थे। साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने के लिए चन्द्रगुप्त का विवाह उन्होंने यवन राजकुमारी हेलेना से कराया था। लेकिन भारत पर आक्रमणकारियों की दृष्टि से भारत की मौलिक सोच–सिद्धान्तों में मिश्रण एवं परिवर्तन होता चला गया जिसके फलस्वरूप भारत में एक बहुलवादी संस्कृति का वर्चस्व स्थापित हो गया जिसकी परिणति "मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना" की संस्कृति में हुई। वैदिक एवं सनातन धर्म के साथ–साथ भारत में 2500 वर्षों तक जैन तथा बौद्ध धर्म का भी इतिहास रहा जिसके मूल में सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह जैसे आदर्श पल्लवित एवं पुष्पित हुए, जिसने दुनिया को शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व अर्थात् (Peaceful Co-existence) एवं अहिंसा का सिद्धान्त दिया जो अब संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) का प्रमुख सिद्धान्त है।

लेकिन अफसोस तो इस बात का है कि मुगलकाल में इस्लामिक धर्मांतरण तथा ब्रिटिश काल में ईसाई धर्मांतरण ने सनातन हिन्दू धर्म पर संकीर्ण एवं पिछड़े होने का आरोप लगाना शुरु कर दिया जबकि हकीकत यह है कि भारत की सोच हजारों सालों से अत्यन्त व्यापक एवं वैश्वीकृत रही है। इसके दो प्रमाण हैं – (क) भारत ने दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं किया तथा (ख) विदेशी आक्रमणकारी भी भारत की संस्कृति में घुल–मिलकर यहीं बस गए हैं। केरल, पॉण्डिचेरी, गोवा इसके जीते–जागते उदाहरण हैं।

बहरहाल भारत के प्राचीन संस्कृति एवं परिवेश को बदलने में जितना मुगलकाल का हाथ था उतना ही ब्रिटिश काल का। मुगल शासन ने लगान वसूली के लिए भारतीय रजवाड़ों को गुटों में तोड़ा और इस्लामिक धर्मांतरण के द्वारा अलगाववाद तथा पृथकवाद पैदा किया। दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत ने इन्हीं पृथक–पृथक रजवाड़ों को एकीकृत कर एक केन्द्रीयकृत शासन का ढाँचा खड़ा किया। कूटनीतिक स्तर पर हर रजवाड़े का अंग्रेज सरकार के साथ व्यक्तिगत संधि भी थी। इस प्रकार व्यापारिक एवं आर्थिक नीति पर कब्जा करने के पश्चात् भारत की राजनीति एवं सामरिक शक्ति पर आसानी से कब्जा कर अंग्रेजों ने इसे एक गुलाम उपनिवेश में तब्दील कर दिया।

लेकिन यह स्वीकार करना ही होगा कि अंग्रेजों की सामरिक–रणनीतिक– कूटनीतिक कौशल श्रेष्ठ थी एवं उन्होंने अपने संगठन तथा नए सामरिक हथियार के साथ–साथ कठोर अनुशासन के द्वारा आराम परस्त सहज बुद्धिजीवी भारतीयों के 0पर आसानी से अपना उपनिवेशवादी प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार भारत लगभग 0–350 साल तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का गुलाम बन कर रह गया। मुगल एवं अंग्रेजी शासन का सबसे बड़ा अन्तर यह था कि, मुगल 800 सालों के शासन के बाद यहीं बस गए, जबकि, अंग्रेज अथाह दोहन के बाद भी विदेशी ही बने रहे। भारतीय खनिज– सम्पदा तथा संसाधनों के दोहन से छोटे से ब्रिटिश हुकूमत ने अपने को एक विश्व शक्ति बनाया।

दूसरी ओर केन्द्रीकृत अंग्रेजी अर्थव्यवस्था के कारण भारतीय कृषि तथा गृह–उद्योग आधारित भारतीय ग्राम समुदाय पूरी तरह छिन्न–भिन्न हो गए। अंग्रेजी शोषणकारी नीतियों के फलस्वरूप भारत की पारम्परिक अर्थव्यवस्था चरमरा उठी, दरिद्रता एवं सामाजिक फूट का विस्तार होता गया। दादाभाई नौरोजी तथा बिपिन चन्द्र पाल जैसे इतिहासकारों के अनुसार ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद भारत गरीबी, बीमारी, बेकारी, अशिक्षा तथा पिछड़ेपन का शिकार बना। भारतीय कृषि ढाँचा पूरी तरह परिवर्तित होने लगा, आत्मनिर्भरता के स्थान पर विशेषीकरण एवं वाणिज्यीकरण की शुरुआत हुई और बाहरी दुनिया से आर्थिक सम्बन्धों का विस्तार हुआ।

लेकिन भेदभावपूर्ण आयात–निर्यात की नीतियों के फलस्वरूप भारतीय ग्रामीण उत्पादन– व्यवस्था नष्ट हो गई। स्थानीय ग्रामीण उत्पादों का स्थान ब्रिटिश कारखानों में मशीनों द्वारा निर्मित सस्ते सामानों ने ले लिया। अंग्रेजी कारखानों में बने सामानों के वितरण एवं विस्तार के उद्देश्य से ही सड़कों, रेलमार्गों आदि का विकास किया गया।

परिवहन व्यवस्था का विकास एशिया का सबसे महान सामाजिक क्रान्ति कहा गया, जिसे जन्म देने का श्रेय ब्रिटेन को दिया जाता है। परन्तु ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप पुराने औद्योगिक नगर नष्ट हो गए। उनकी आबादी गाँवों की ओर मुड़ गई जिससे गाँवों के आर्थिक जीवन का सन्तुलन भंग हो गया। कृषि पर भारी बोझ में वृद्धि हुई और यह स्थिति निरन्तर बनी रही। सन् 1800 के दुर्भिक्ष आयोग की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि भारतवासियों की निर्धनता के मूल में बड़े अंशों में कृषि पर अतिशय निर्भरता है।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन ने भारतीय सामाजिक–अर्थतन्त्र के आधार को ही बदल दिया। उनकी राजस्व सम्बन्धी नीतियों ने भारतवासियों को विवश कर उनमें भू–सम्पत्ति के स्वामित्व की मानसिकता उत्पन्न कर दी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में इन सभी मुद्दों के विरोध में स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास रचा और ये सभी मुद्दे भारतीय विदेश नीति के अंग बनते चले गए।

यह कहना समीचीन होगा कि Indian National Movement की नीति ही स्वतंत्रता पूर्व की India's Foreign Policy है। ये बिन्दु निम्नलिखित हैं :–

1. 1497 में वास्कोडिगामा के द्वारा भारत से व्यापार के लिए खोजा गया कालीकट बन्दरगाह का मार्ग भविष्य में आने वाले पुर्तगालियों, डच, फ्रांसीसियों, अरब, मुस्लिम व्यापारियों के लिए स्वर्ग का रास्ता साबित हुआ।
2. सन् 1500 से पुर्तगालियों के साथ भारत का घनिष्ठ व्यापार स्थापित हो गया।
3. सन् 1600 तक ईस्ट इन्डिया कम्पनी, 1602 में हॉलैण्ड की डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा 1664 में फ्रांस के द्वारा फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से भारत में व्यापार स्थापित हो चुका था।
4. यही व्यापारिक केन्द्र बाद में चलकर बड़े–बड़े बन्दरगाह और आगे चलकर राजनीतिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए।
5. तत्पश्चात् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना द्वारा भारत के गिरती, बिगड़ती सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन ही भारतीय विदेश नीति के पथ–प्रदर्शक बने।

प्रत्येक राष्ट्र की विदेश नीति होती है। इसका प्रमुख कारण है राष्ट्रों का अन्तरनिर्भर होना। "अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अकाट्य तथ्य है अंतर्निर्भरता"। दो विश्वयुद्धों ने दुनिया को दो सिद्धान्तों का उपहार दिया है – आत्मनिर्णय (Self-determination) तथा परस्पर–निर्भरता (Interdependence) का सिद्धान्त। ये वे सिद्धान्त हैं, जिनसे एशिया–अफ्रीका, लैटिन अमरीकी तथा भारत जैसे विशाल देश को आज़ादी की सुबह देखने को मिली। साम्राज्यवाद की समाप्ति और अफ्रो–एशियाई देशों के उदय का समुचित वातावरण विश्वयुद्धों के बाद तेजी से कैसे शुरु हुआ, यह जानने के लिए यहाँ के भौगोलिक– ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निरीक्षण करना आवश्यक है। एशिया में यह प्रक्रिया सबसे पहले जापान और बाद में चीन में शुरू हुई। यों तो चीन और जापान पश्चिमी ताकतों द्वारा कभी पूर्णतः गुलाम नहीं बनाए गए, परन्तु उनका शोषण–उत्पीड़न गुलाम देशों की तरह काफी असहनीय था। अमेरिकी अतिक्रमण के बाद जापानियों ने विदेशी अनुकरण के द्वारा ही देश को आगे बढ़ाया। पश्चिमी आधुनिकीकरण का लाभ उठाकर 1905 में जापान ने रूस को पराजित कर दिया। इस घटना से पराधीन एशियाई जनता का मनोबल काफी 0पर उठा। वाशिंगटन 1922 निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में जापान को यूरोपीय शक्तियों के समकक्ष मान लिया गया।

दक्षिण–पूर्व एशिया से फ्रांसीसी, ब्रिटिश तथा डच औपनिवेशकों को मार भगाने का काम कर, जापानियों ने एशियाई आत्म–सम्मान की पुर्नस्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जापानियों द्वारा आयोजित सह–समृद्धि का क्षेत्र (Co-operative Sphere) तथा नेताजी द्वारा आज़ाद हिन्द–फौज की जापान में स्थापना इसी के परिणाम हैं। 1839 का अफीम युद्ध तथा Boxer Revolt से चीन में भी परिवर्तन का बिगुल फूँका। (डॉ. पुष्पेश पन्त, श्रीपाल जैन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, मेरठ, 1993)

पश्चिमी शिक्षा प्राप्त सन यात सेन जैसे चीनी नेताओं ने चीनी जीवन को गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए 1911 में देशवासियों को संगठित कर एक सफल क्रान्ति का सूत्रपात किया। इस प्रकार 1949 की माओवादी चीनी क्रान्ति के पहले एशियाई राष्ट्रवाद को पुष्ट करने में कुआमिंग तान पार्टी वाले चीनी राष्ट्रवादियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। पण्डित नेहरू और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे प्रभावशाली राष्ट्रवादियों के सन यात सेन तथा चांग काई शेक से उस दौरान घनिष्ठ सम्बन्ध बने थे जिसके फलस्वरूप एशियाई मानस (Pan Asianism) के भविष्य की साझेदारी का चिंतन उत्पन्न हुआ। बाद के वर्षों में माओत्सेतुंग के नेतृत्व में साम्यवादी क्रान्ति का प्रभाव भी भारत तथा एशियाई देशों पर

काफी हद तक पड़ा। (डॉ. पुष्पेश पन्त, श्रीपाल जैन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, मेरठ, 1993)

भारत के लिए विदेशीकरण एवं यूरोपियन सम्पर्क नया नहीं था। भारत अपने हजारों वर्षों के गुलामी के काल में अरबों, मुगलों, यूरोपियन तथा ब्रिटिश हुकूमतों का अनुभव घर बैठे ही प्राप्त कर चुका था। विदेश नीति के दाँव–पेंच भारत को विरासत में मिल चुके थे। विदेशियों का व्यापार मार्ग से आर्थिक नीति पर कब्जा, तत्पश्चात् लगान के द्वारा शोषण करना फिर राजनीतिक नियंत्रण, एवं अंततः भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एक आर्थिक एवं सामरिक उपनिवेश में बदलने का लम्बा इतिहास भारत को प्राचीन काल से ही मिला था। दूसरी तरफ भारत का गौरवशाली अतीत उसे एक सनातन संस्कृति का समृद्ध क्षेत्र के रूप में सदियों से स्थापित कर चुका था। एक तरफ वैदिक, हिन्दू, शैव दर्शन का सशक्त धरोहर दूसरी तरफ जैन–बौद्ध धर्म से उपजे सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की संस्कृति, भारत को चीन, जापान की तुलना में एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक केन्द्र के रूप में स्थापित कर चुका था। (डॉ. पुष्पेश पन्त, श्रीपाल जैन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, मेरठ, 1993)

ऐसे में मध्य युग के काल में मुगल शासन के दौरान मुगलिया संस्कृति की एकीकरण एवं धर्मांतरण की नीति से पैदा लगान वसूली, भारतीय रजवाड़ों को गुटों में तोड़ने से धार्मिक–सामाजिक अलगाववाद एवं पृथकवाद की नीति पैदा हुई जिससे अंग्रेजों को केन्द्रीकृत राज्य सत्ता की स्थापना करने में काफी सफलता प्राप्त हुई। शासकीय–प्रशासकीय केन्द्रीकरण की नीति से पूरे भारतीय सामाजिक–आर्थिक ढाँचे को अंग्रेजी हुकूमत के उद्देश्यों के अनुकूल परिवर्तित करने में काफी सफलता मिली। 19वीं शताब्दी तक नाना प्रकार के विदेशी आक्रान्ताओं के यहीं बस जाने के पश्चात् भारत, प्रजातीय मिश्रण के कारण एक वृहत बहुलवादी संस्कृति वाला देश स्थापित हो चुका था। (शैलेन्द्र पांथरी, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, वाराणसी, 2002)

1857 विद्रोह

वैश्विक सम्पर्क की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए राजा राममोहन रॉय पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने व्यापक स्तर पर भारत को विश्व के साथ जोड़ने की आवश्यकता महसूस की। टैगोर परिवार तथा बंगाल के अन्य बुद्धिजीवी वर्ग से मिलकर, उन्होंने यह महसूस किया कि अब भारत को व्यक्तिगत, राजनीतिक तथा आर्थिक स्तरों पर विश्व से सम्पर्क काट कर रखना हानिकारक है। ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं की कुशलता, सैन्य तैयारी तथा पश्चिमी आर्थिक–प्रौद्योगिक विकास को देख इन बुद्धिजीवियों में भारत के आधुनिकीकरण की महत्त्वाकांक्षा जागृत हुई। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999) परिणामस्वरूप भारत में चले आ रहे अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों की बेड़ियाँ काटने के लिए ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज जैसे आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। यूरोप तथा ब्रिटेन के सम्पर्क में आ चुके राजनीतिक तथा सैनिक जनमानस के अन्दर भी असन्तोष एवं आक्रोश के बादल मँडराने लगे थे। यही अंतर्राष्ट्रीय चेतना 1857 के विद्रोह के रूप में फूटी। हालाँकि इस संग्राम को अंग्रेजों ने निर्ममता से कुचल दिया लेकिन उनके दृष्टिकोण में इसके बाद भारतीय सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण में काफी परिवर्तन आया। एक तरफ ईसाई धर्मांतरण का क्रियाकलाप तेज़ी से बढ़ा तो दूसरी तरफ, भारतीयों में धार्मिक–सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आग्रह बढ़ने लगा।

धार्मिक पुनर्जागरण

भारत में आधुनिक राष्ट्रवादी युग की शुरुआत 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से माना जाता है। हालांकि ब्रिटिश लेखकों ने इसे एक सैनिक विद्रोह का नाम दिया लेकिन इस क्रान्ति ने भारत में राष्ट्रवाद एवं पुनर्जागरण का बीज बो दिया। इसने भारतीय इतिहास एवं प्रशासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। यह देश और धर्म के रक्षा की पहली लड़ाई थी। 19वीं सदी के सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में उतना ही हाथ था जितना पश्चिमी शिक्षा–प्राप्त बौद्धिक तथा आर्थिक जगत/व्यापारी जो पश्चिमी संस्थाओं तथा पश्चिमी मूल्य व्यवस्था को अपनाने तथा अनुकरण करने के पक्ष में थे। यह वह समय था जब भारतीय समाज अंधविश्वास और रूढ़ियों से ग्रस्त था। धर्म के नाम पर मूर्ति–पूजा, कर्मकाण्ड और दिखावा फैल रहा था जिसको नीचा दिखाने के लिए ईसाई मिशनरियाँ हिन्दू धर्म सभ्यता तथा संस्कृति का उपहास कर रहे थे। इस अपमान से आहत भारतीय मनीषियों ने भारतीय ज्ञान, धर्म विद्या को पश्चिम के पटल पर रख कर उनकी धारणा को गलत साबित कर दिया। स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, मौलाना अल्ताफ हुसैन, न्यायमूर्ति अकबर इलाहाबादी ने इन प्रयासों को दुनिया के सामने रखा। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999) इस दिशा में मद्रास/काशी में डॉ. एनी बेसेण्ट द्वारा स्थापित थियोसॉफिकल सोसाइटी ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने स्वयं भारतीय धर्म, वेष–भूषा अपनाकर भारतीयों में अपने धर्म/संस्कृति के प्रति आई हीन भावना को दूर करने के प्रयास में सारा जीवन समर्पित कर दिया।

पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव

पाश्चात्य शिक्षा के दबाव में भारतीय अपनी संस्कृति से घृणा तो करने लगे थे लेकिन उसका दूसरा पहलू राष्ट्रवाद जगाने वाला था। चूँकि अंग्रेजी साहित्य राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता की भावना से परिपूर्ण था इसलिए भारतीयों को प्लेटो, अरस्तू, मिल्टन, बर्क, हाब्स, लॉक, रूसो, मान्टेस्क्यू, स्पेंसर आदि विचारकों के साहित्य के माध्यम से स्वतंत्रता, राष्ट्रवादिता, लोकतन्त्र आदि मूल्यों का ज्ञान प्राप्त हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के चोटी के नेता जैसे दादा भाई नौरोजी, ब्योमेश चन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोज शाह मेहता, गोखले, गाँधी, नेहरू, सुभाषचन्द्र सभी ने विदेश से शिक्षा प्राप्त की। वे सभी विदेशी राजनीतिज्ञों और विचारकों से प्रभावित हुए और वहाँ के स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व के लोकतांत्रिक सिद्धान्तों को पढ़ा और वहाँ के प्रजातांत्रिक संस्थाओं को कार्य करते हुए देखा। इससे उनके मन में भारत में भी इसी तरह की संस्थाओं की स्थापना एवं उपभोग की इच्छा जागी। (आर.के. सिंह, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक विकास और भारत का संविधान) लार्ड मैकाले को इस बात का इन्तज़ार था कि, "उस दिन को जब युरोपियन ज्ञान प्राप्त भारतीय यूरोपियन संस्थाओं की माँग करेंगे, मैं ब्रिटिश इतिहास का सर्वाधिक गौरवपूर्ण दिन मानूँगा।" (It would be the proudest day in English history when having become instructed in European knowledge the Indian shall demand European Institution, Macaulay in 1833)

विदेशी सम्पर्क का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि भारतीय साहित्य एवं वेदों का भाषा अनुवाद ब्रिटिश एवं जर्मन विद्वानों जैसे प्रो. विलियम हंटर, विलियम जोंस तथा मैक्समूलर द्वारा हुआ। साथ ही स्वामी विवेकानन्द का 1891 का शिकागो के धर्म संसद व्याख्यान ने भारतीय अंधविश्वास एवं पिछड़ेपन के गलत प्रचार का रुख बदलकर भारत को विश्व पटल पर एक अति उन्नत सभ्यता के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया।

यातायात एवं आर्थिक विकास

भारत की रेल, तार एवं सड़क व्यवस्था अंग्रेजों की देन है, जो ब्रिटिश प्रशासनिक तथा व्यापारिक हितों के विकास के लिए किया गया था लेकिन इसका फायदा भारतीयों की राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में भी हुआ। जिस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा नीति से सम्पूर्ण भारत के विविध भाषा–भाषियों को एकता के सूत्र में बाँधा गया, उसी प्रकार आवागमन के साधन का विकास कर दूर–दराज़ के क्षेत्रों के लोगों को आसानी से मिलने एवं सम्पर्क स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इससे जनता में राजनीतिक एकता का जन्म हुआ और भारत जैसे विविधतापूर्ण विशाल देश को भौगोलिक एकता में बाँधने में सफलता मिली।

राष्ट्रवाद के साथ–साथ विदेशी क्रान्तिकारी आन्दोलन जैसे इटली, जर्मनी, रूमानिया, सर्बिया के राजनीतिक एकीकरण के आन्दोलन भी भारतीय जनमानस को प्रभावित कर रहे थे। फलस्वरूप अंग्रेजों एवं भारतीयों के बीच कटुता बढ़ती गई। 1877 में ICS की परीक्षा की उम्र घटाकर 21 से 19 वर्ष करके भारतीयों को सेवा प्रवेश से रोकना तथा 1878 में Vernacular Press Act द्वारा भारतीय प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लगाना, विदेशी वस्त्रों पर आयात कर हटाना, भारतीय कपड़ा उद्योग को भारी क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किए गए ऐसे दमनकारी कदम थे जिसकी अन्तिम परिणति 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से हुई। हालाँकि कांग्रेस की स्थापना से पहले अनेक प्रगतिशील संस्थाएँ जैसे ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन, इण्डिया लीग, बंगाल, बाम्बे एसोसिएशन, बाम्बे प्रेज़ीडेन्सी एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, महाजन सभा मद्रास वगैरह स्थापित हुई थी लेकिन अखिल भारतीय स्तर पर समूचे राष्ट्र की प्रतिनिधित्व करने वाली कोई संस्था नहीं थी। (आर.के. सिंह, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन – संवैधानिक विकास और भारत का संविधान, 2006)

जैसा कि स्वयं कांग्रेस के संस्थापक सर एओ. ह्यूम ने माना कि ब्रिटिश शासन की क्रूर नीतियों से पहुँचे आघात को कम करने के लिए एक अभयदीप Safety Valve के रूप में उन्होंने कांग्रेस की स्थापना की जिससे कि "जनता के असंतोष तथा उत्तेजना को अन्दर ही अन्दर फैलने देने के बजाए उसे संवैधानिक ढंग से प्रकट करने का मार्ग ढूँढ़ा जाय।" (Wedder Burn W.: Biographical Sketch of A.O. Hume)

1921 के पूर्व विदेशी मुद्दों पर कांग्रेसी दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रयोजन 19वीं शती से द्वितीय विश्व युद्ध तक भारतीय सरोकारों को संवैधानिक रूप से राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने का रहा जो आगे चलकर भारत की विदेश नीति में परिणत हो गया। कुछ प्रमुख कांग्रेस माँगें जो बाद के विदेश नीति का हिस्सा बनी, वे थीं –

1. भारतीयों को स्वायत्त शासन में सहभागिता पर जोर देना।
2. भारत के बाहर ब्रिटिश उपनिवेशों में प्रवासी भारतीय मजदूरों की दुदर्शा पर रोक – सा0थ अफ्रीका तथा अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों जहाँ भारतीयों के साथ रंग तथा जाति के आधार पर भेद–भाव किया जाता था, वहाँ नस्ल विरोध तथा प्रजाति विरोध के सिद्धान्त को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाया गया। तब से रंग, नस्ल विरोध भारतीय विदेश नीति के अंग बन गए। 1919 अमृतसर कांग्रेस ने खिलाफत प्रश्न पर तुर्की का साथ दिया। 1920 में नागपुर कांग्रेस में आयरलैंड के स्वतंत्रता के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित किया गया।
3. विदेशी उपनिवेशों में भारतीय सैनिकों का युद्ध में दुरुपयोग रोकना।

गोपाल कृष्ण गोखले तथा गाँधीजी ने भारतीय मुद्दों पर समर्थन प्राप्त करने के लिए बाह्य विश्व से सम्पर्क स्थापित किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत को राष्ट्र–लीग (League of Nation) में संस्थापक सदस्य की भूमिका निभाने की अनुमति दी गई जिससे भारत की विदेशी क्षेत्र में जागरुकता बढ़ी।

1920 से 1946 तक की अवधि भारत के लिए निर्णायक काल माना जाता है। विदेशी शिक्षा प्राप्त कर लौटे स्वाधीनता सेनानी – नेहरु, पटेल, एम.एन. राय, ज़ाकिर हुसैन, मुहम्मद अली जिन्ना, लियाकत अली खान, अरब क्रान्ति (खिलाफ़त), बोल्शेविक क्रान्ति, जापान की रूस विजय जैसी अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर गम्भीरतापूर्वक अपना–अपना पक्ष रखने लगे। अमेरिका के वुडरो विल्सन के चौदह सूत्री सिद्धान्त का भारतीय राजनीतिकों पर काफी प्रभाव पड़ा। विशेषकर आत्म–निर्णय का सिद्धान्त तथा साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध का सिद्धान्त भारत की अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अनुकूल सिद्धान्त थे। प्रथम विश्वयुद्ध में सहयोग देने के बदले भारत को स्वायत्त शासन का वादा पूरा नहीं होने पर भारतीय नेता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सजग हो गए तथा 1929 तथा 1931 के बीच आयोजित गोलमेज कांफ्रेंस में भारत का पक्ष अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित किया।

कांग्रेस की विदेश नीति का आरम्भ 1921–27

1920 में जब आयरलैण्डवासी अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे तो कांग्रेस ने उन्हें एक सद्भावना सन्देश भेजा था। 1921 में दिल्ली अधिवेशन में AICC ने पहली बार विदेश नीति के सम्बन्ध में एक पूर्ण प्रस्ताव पास किया जिसमें स्पष्ट कहा गया कि भारत अपने पड़ोसियों तथा अन्य सभी राज्यों से अच्छे तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है। इसमें ब्रिटिश भारतीय सरकार की कड़ी आलोचना की गई थी कि मौजूदा सरकार भारतीय राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों की रक्षा कर रही है। (पी.डी. कौशिक, भारत की विदेश नीति, 2001)।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा विदेश विभाग की स्थापना

1927 में मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने चीन, मेसोपोटामिया तथा प्रशिया (ईरान) में भारतीय सैनिकों के प्रयोग का विरोध किया। पराधीन लोगों द्वारा विश्व में साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों को संगठित करने तथा सहायता देने के लिए कांग्रेस ने 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में AICC को एक विदेश विभाग स्थापित कने का निर्देश दिया। मिस्र, सीरिया, फिलीस्तीन तथा इराक के लोगों को जो पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे, उनको कांग्रेस ने शुभकामनाएँ भेजीं। नेहरु जी विदेश विभाग के अध्यक्ष बनाए गए। इस अनुभव ने उन्हें स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के निर्माता की भूमिका अदा करने में अत्यन्त सहायता दी। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 1999) 1930 में कांग्रेस ने नाज़ियों तथा फासीवादियों की आलोचना की। 1939 में त्रिपुरा कांग्रेस में भारत द्वारा अपनी विदेश नीति की माँग रखी गई तथा हर प्रकार के साम्राज्यवादी युद्ध से अलग रहने की बात दोहराई गई। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 1999)भारतीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की भारतीय खजाने से चीन, अफगानिस्तान, बर्मा, तिब्बत, ईरान में युद्ध पर बेतहाशा खर्च करना तथा भारतीय सैनिकों का दुरुपयोग करने पर आवाज़ उठाया। यही परम्परा आगे चलकर अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर आवाज़ उठाने की बनी। नेहरुजी ने 1927 में साम्राज्यवाद के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रुसेल्स में

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया। इस सम्मेलन में समाजवादी एवं साम्यवादी आन्दोलनों के 175 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें पहली बार अफ्रीकी तथा एशियाई देशों के नेता एक साथ सम्पर्क में आए। नेहरु जी ने रूसी क्रान्ति की दसवीं वर्षगाँठ में भाग लेने मास्को की यात्रा की। वे रूस के प्रशंसक तथा साम्राज्यवादी शक्तियों के आलोचक बन गए (पी.डी. कौशिक, वही)। तबसे वर्तमान तक गैर–उपनिवेशवाद तथा गैर–साम्राज्यवाद भारतीय विदेश नीति का अटूट हिस्सा बन गया जिसके आधार पर दुनिया में गुटनिरपेक्षता का मंच स्थापित हो सका।

स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश विचारों का प्रभाव

चार्ल्स हेमसथ (Charles Heimsath) के अनुसार, "स्वतंत्र भारत की राजनीतिक परम्परा पर ब्रिटिश विचारों तथा संस्थाओं का किसी अन्य तथ्य पर इतना अधिक प्रभावशाली प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि इसकी विदेश नीति पर। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 1999) यह कथन इस बात से प्रमाणित होती है कि भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के कुछ विदेश नीति सम्बन्धी निर्णय नेहरु जी द्वारा उसी प्रकार बरकरार रहे, जैसे अपने प्रशासनिक तथा कूटनीतिक ढाँचे में नेहरु जी ने ब्रिटिश भारत के उदाहरणों का अनुकरण किया। उन्होंने 1947 से पूर्व के बाहरी संरचना को बदलने का प्रयत्न नहीं किया। अन्तः युद्ध–काल (1919–1939) के काल में भारतीय अफसरों एवे उनके व्यक्तित्व द्वारा जो अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अनुभव थे वही स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् काफी सीमा तक उसी दिशा में स्वीकार कर लिए गए। हेमसाथ (Heimsath) के अनुसार, "स्वतंत्रता से पूर्व सरकारी नौकरी में भारतीयों के प्रशिक्षण तथा व्यक्तित्व ने 1947 के भारतीय विदेश नीति को शैली तथा दिशा प्रदान की।" (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 1999 में उद्धृत 'The training and personality of the Indians in government service before India set the style 3 and characterized Indian Foreign Policy after 1947. The British Legacy 3 providing a ready model from which a quick copy could be made.' - Heimsath)

पण्डित नेहरू ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी पटेल तथा अन्य राष्ट्रवादी गुटों के विरुद्ध जाकर भी राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) में सदस्य बने रहने का निर्णय लिया। स्टालिन ने इस विषय पर कटु प्रतिक्रिया देते हुए भारत को 'Barking dogs of Imperialism' की संज्ञा दी। सच तो यह है कि प्रथम विश्वयुद्ध में भारत को अर्द्ध–स्वतन्त्र सत्ता की मान्यता प्रदान करने के पीछे ब्रिटेन अपने साम्राज्यवादी आवाज़ को मजबूत करना चाहता था और इसी निशाने को साधने के लिए भारत को कुछ सीमित राष्ट्रवादी लक्ष्य हासिल करने दिया गया। फलस्वरूप 1917 में मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड घोषणा द्वारा भारत में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना स्वीकार की गई और इसके फलस्वरूप भारत 1917–1918 के युद्ध सम्मेलनों में भाग लेने लगा। एक भारतीय प्रतिनिधिमण्डल ने पेरिस शान्ति सम्मेलन में भाग लिया तथा राष्ट्र संघ (League of Nations) में भारत को मूल सदस्यता प्राप्त हुई।

विचारधाराओं का संघर्ष (1920–45)

ब्रिटेन की ओर झुकाव की वास्तविकता यह है कि 1919 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक भारतीय राजकोषीय आयोग (Indian Fiscal Commission) की स्थापना की गई। 1923 में एक शुल्क बोर्ड (Tariff Board) स्थापित किया गया तथा 1924 में भारत के इस्पात उद्योग को संरक्षण प्रदान किया। 1931 में भारत ने ओटावा (Ottawa) में भारत–ब्रिटिश व्यापार समझौते (Indo-British Trade Agreement) पर हस्ताक्षर किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत–ब्रिटिश व्यापारिक सम्बन्ध तथा राष्ट्रमण्डल देशों से व्यापारिक सम्बन्ध पूर्ववत बने रहे। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 1999)

2 सितम्बर, 1946 को भारत में एक अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। पंडित जवाहर लाल इसके उपाध्यक्ष तथा विदेश मंत्री बनाये गये। उनके वक्तव्यों में स्वतंत्र भारत की भावी विदेश नीति की रूपरेखा स्पष्ट होने लगी। 26 सितम्बर, 1946 को पंडित नेहरु ने भारत की विदेशनीति की व्याख्या करते हुए कहा –

"विदेश नीति के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुगमन करेगा तथा एक दूसरे के विरुद्ध संलग्न गुटों की शक्ति राजनीति से अपने को अलग रखेगा। वह अधीन लोगों की स्वतंत्रता के सिद्धान्त का समर्थन करेगा ताकि जहाँ कहीं भी जातीय भेदभाव होगा वहाँ इसका विरोध करेगा। वह अन्य शान्तिप्रिय देशों के साथ मिलकर एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण के बिना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के विकास का प्रयत्न करेगा।"

"हम नस्लवाद के नात्सी सिद्धान्त का खंडन करते हैं, फिर चाहे उस पर कहीं भी और किसी भी रूप में अमल क्यों न किया जाये।"

"अपनी प्रतिद्वंद्विताओं, घृणा तथा आन्तरिक संघर्षों के बावजूद विश्व अनिवार्य रूप से घनिष्ठतर सहयोग तथा एक विश्व राष्ट्रकुल की रचना की ओर बढ़ रहा है। स्वतंत्र भारत इस एक विश्व के लिये, एक ऐसा विश्व, जिसमें स्वतंत्र लोगों का स्वतंत्र सहयोग होगा तथा कोई वर्ग या गुट दूसरे का शोषण नहीं करेगा, के लिए कार्य करेगा।"

"संघर्ष के विगत इतिहास के बावजूद हमें आशा है कि एक स्वतंत्र भारत इंग्लैण्ड और ब्रिटिश राष्ट्रकुल के साथ मित्रतापूर्ण और सहयोगपूर्ण सम्बन्ध रखेगा।"

"हम एशिया के हैं तथा एशिया के लोग अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट और घनिष्ठतम हैं। ... स्वतंत्र देशों के घनिष्ठ सहयोग को बढ़ाने के लिए हम अपने को समर्पित करेंगे। ..."

शान्ति को बनाये रखना भारत की नीति का केन्द्रीय उद्देश्य है। इस नीति के पालन में हमने गुटनिरपेक्षता का पक्ष चुना है। यह हमारे सामने आनेवाली समस्याओं के प्रति एक सकारात्मक और गत्यात्मक उपागम है। हम विश्वास करते हैं कि प्रत्येक देश को न केवल स्वतंत्रता का अधिकार है, वरन् अपनी स्वयं की नीति और जीवन के स्वरूप का निर्णय करने का अधिकार है। ... अतः हम एक देश के द्वारा दूसरे देश के मामलों में अनाक्रमण और अहस्तक्षेप में तथा उनके मध्य सहिष्णुता का विकास होने और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की क्षमता में विश्वास करते हैं।" (नेहरु, जवाहर लाल, इंडियाज़ फॉरेन पॉलिसी)

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतंत्र भारत की नीति का विकास कांग्रेस के विदेशी समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण के रूप में निरन्तर होता रहा है। प्रथम विश्वयुद्ध ने उसका ध्यान आकर्षित किया। उसको वुडरो विल्सन के साम्राज्यवाद विरोधी संकल्पों ने आकर्षित किया और जब युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटेन ने उन संकल्पों को भारत के सम्बन्ध में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तब उसने एक साम्राज्यवाद विरोधी दर्शन को अपनाया।

3.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत की वैश्विक दृष्टि

अंततः ब्रिटिश भारत के अन्तिम वायसराय लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना के तहत भारत को दो भागों में विभाजित कर दिया गया तथा जिसे क्रियान्वित करने के लिए ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 पारित किया। कांग्रेस द्वारा 11 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के पहली बैठक में स्वतंत्र भारत के आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए एक "उद्देश्य प्रस्ताव" (Objective Resolution) प्रस्तुत किया गया जो कालांतर में नेहरु का "उद्देश्य प्रस्ताव" नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें संसार के सभी देशों के साथ तथा समस्त मानव जाति के कल्याण के कार्य को भारत का घोषित लक्ष्य बताया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से पं. नेहरु के मुख्य भाषणों में अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी गई। "हम न तो किसी अन्य राष्ट्र अथवा जाति पर आधिपत्य चाहते हैं न अन्य लोगों की तुलना में अपने लिए विशेष सुविधा की माँग करते हैं, परन्तु निश्चय ही हम हमारे राष्ट्र के नागरिकों के लिए चाहे वे जहाँ कहीं भी रहते हों समानता एवं सम्मानजनक व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं। उनके साथ किसी प्रकार के भेदभाव अथवा असम्मानपूर्ण व्यवहार को पसन्द नहीं करेंगे।" (जवाहरलाल नेहरु)

भारत के द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की वैश्विक दृष्टि के निर्माता प्रमुख रूप से भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरु रहे। 18–20 वर्षों तक जो आकार उन्होंने भारतीय विदेश नीति को दिया वही आगे चलकर भी उनके उत्तराधिकारियों लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गाँधी को निर्देशित करता रहा, कुछ मामूली परिवर्तनों को छोड़कर।

स्वतन्त्रता–पश्चात् विदेश–नीति निर्माण में सहायक तत्त्व

इसके अलावा भारत ने विविध अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों/सभाओं के संचालन तथा विचार–विमर्श में सक्रिय भाग लिया। वह अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Court of Justice), अंतर्राष्ट्रीय स्थाई न्यायिक न्यायालय (Permanent Court of International Justice) का सदस्य बना। राष्ट्र संघ के कई अधिवेशनों में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल ने सक्रिय सहभागिता शुरु कर दी। राष्ट्र संघ के अफीम सम्मेलन (Opium Convention) के प्रारुप को तैयार करने में अहम् भूमिका निभाई। महिलाओं तथा बच्चों के अनैतिक व्यापार तथा दासता विरोधी सम्मेलनों

में भारत का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इतना ही नहीं राष्ट्र संघ की असफलताओं की आलोचना करने में भी सामने रहे। 1928 में कांग्रेस ने कलकत्ता अधिवेशन में साम्राज्यवाद के विरोध के लिए एक विदेश विभाग स्थापित किया जिसके द्वारा मिस्र, सीरिया, इराक तथा फिलीस्तीन की गैर–साम्राज्यवादी आन्दोलनों का भारत द्वारा समर्थन किया गया।

3.4 द्वितीय विश्व युद्ध काल में भारतीय नीति के वैचारिक संघष

1939 के त्रिपुरा अधिवेशन में स्पष्ट रूप से भारत ने साम्राज्यवादी तथा फासीवादी शक्तियों की आलोचना की तथा अपनी विदेश नीति स्वयं संचालित करने का अधिकार माँगा। जब द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन ने भारत को एक युद्धों सहायक बना लिया तो कांग्रेस ने इसका कड़ा विरोध किया। बाद में अटलांटिक चार्टर के आधार पर भारत को पूर्ण राज्य घोषित करने की माँग किया। इसके पश्चात् 1945 में भारत ने सॉनफ्रान्सिस्को सम्मेलन में भाग लिया तथा मूल सदस्य के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर किए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का यथावत् सदस्य बना रहा जबकि पाकिस्तान को इसकी सदस्यता प्राप्त करने करने के लिए प्रयास करना पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध काल में कांग्रेस एवं राष्ट्रीय स्तर पर वैचारिक संघर्ष उभर कर आ गई थी तब विदेश नीति की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ रही थीं :–

1. नेहरु–गाँधी–राजगोपालाचारी के नेतृत्व में हिटलर, मुसालिनी तथा जापान की सैनिक/साम्राज्यवादी ताकत का विरोध।

2. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में मित्र शक्तियों (Allied Powers) तथा ध्रुव शक्ति (Axis Powers) का बारीकी से अध्ययन कर, खुद को बचाना लेकिन राजनीतिक और आर्थिक बातचीत के माध्यम से हल निकालना।

3. गाँधी जी द्वारा अपनाई गई तथा अहिंसक पद्धति के माध्यम से पाई गई स्वतंत्रता को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी तकनीकी के रूप में इस्तेमाल करना।

– संवाद, सहयोग, मेल–जोल शान्तिपूर्ण तरीकों से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में स्थिरता, कल्याण तथा शान्ति लाने का प्रयास।

– प्रत्येक समाजों एवं समस्त मानव जाति की गरिमा की वकालत करना तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे पर विचार प्रकट करना।

– विस्तारवादी सैनिक कार्यवाहियों में हिस्सा न लेना।

उदाहरण के लिए, जापान से मित्रवत होते हुए भी, जापानी आक्रमण के विरुद्ध घायल चीनी जनता की सहायता के लिए डॉ. कोटनीस के नेतृत्व में डॉक्टरों का एक मिशन चीन भेजा गया तथा जापानी माल वस्तुओं का बहिष्कार भी किया गया। पं. नेहरु 1939 में चीन भी गए थे। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999) भारती की गहरी अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि/धारा की शुरुआत उसी समय मिलती है जब कांग्रेस ने इज़रायल की स्थापना से बहुत पहले ही फिलस्तीनियों को समर्थन दे दिया था। 1939 में त्रिपुरा अधिवेशन में ही 'फासिस्ट ताकतों के विनाश' की नीति पर मुहर लग चुकी थी।

भारतीय जनमानस के बहुलवादी प्रकृति के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले से ही वह विदेश–नीति आकार ले रही थी जो आने वाले 20 वर्षों को निर्धारित करने वाली थी।

भारतीय राजनीतिक पृष्ठभूमि की जटिलता इस वातारण को और भी जटिल बनाती थी। इस दिशा में भारत की साम्यवादी पार्टी ने पश्चिम यूरोप तथा इंग्लैण्ड सहित समूचे विश्व के प्रति भारतीय जनमानस में व्यक्ति एवं समाज के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने का काम किया, हालाँकि उसका अपना दृष्टिकोण साम्यवादी एवं एक–आयामी था। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

इसी काल में जब हमारी राजनीतिक संस्थाएँ यूरोपीय रंग में ढल चुकी थीं तब स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी

दयानन्द जैसे महान व्यक्तियों ने बार–बार भारतीयों को अपनी पूर्व सभ्यता एवं संस्कृति पर गर्व करना सिखाया। सबसे विलक्षण बात तो यह रही कि डॉ. एनी बेसेन्ट ने स्वयं यूरोपीय होते हुए भी इन धार्मिक मनीषियों से मिल कर बड़ी जटिल, दीन–हीन परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति को काशी से पुर्नस्थापित करने का अथक प्रयास किया। जिस समय इंग्लैण्ड एवं अमरीका की स्त्रियाँ दोयम दर्जे का दर्द झेल रही थीं उस समय डॉ. बेसेन्ट के द्वारा भारत में स्त्री–शिक्षा का इतिहास रचा जा रहा था।

इन सब राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने नेहरु जी की शान्तिवादी चिन्तन को और पुष्ट किया तथा उन्होंने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को प्राथमिकता देते हुए किसी भी एक गुट का पक्षधर बनने से इन्कार कर दिया। भारत के गुटनिरपेक्ष मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध सबसे खुले रहे। निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि विश्व शान्ति, गुट–निरपेक्षता, निःशस्त्रीकरण का समर्थन, साम्राज्यवाद/उपनिवेशवाद तथा नस्लवाद का विरोध अफ्रो– एशियाई एकता और संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन, भारतीय विदेश नीति के बुनियादी तत्व हैं। (A. Appadorai and M.S. Rajan (ed) India's Foreign Policy and Relations, New Delhi, 1985)

1.5 विश्व शंन्ति, गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील

नेहरु जी ने अपने विदेश नीति निर्माण में विश्व शान्ति को प्राथमिकता दी। उनका यह अटूट विश्वास था कि महान शक्तियों के साथ युद्ध में भागीदारी कर छोटी शक्तियाँ चींटियों की तरह रौंदी जाएँगी। भारत में राष्ट्र निर्माण की गति को तेज करने के लिए तथा विकास का लाभ औपनिवेशिक समाजों को पहुँचाने के लिए विश्व शान्ति अनिवार्य शर्त थी। दो विश्व युद्धों की भारी तबाही से उपजी अशान्ति का दुष्प्रभाव अफ्रो–एशियाई देशों को भुगतनी पड़ी जिसका उनसे कोई लेना–देना नहीं था। वे बड़ी शक्तियों की महत्वाकांक्षाओं की बेदी पर बलि की तरह काटे जाते रहे। अफ्रो–एशिया के मज़दूर तथा संसाधन ही वह खजाना थे जिससे साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का चूल्हा हमेशा गर्म रखा जा सकता था।

नेहरु जी ने स्वामी विवेकानन्द तथा गाँधी जी के चिन्तन को और पुष्ट करते हुए विदेशों में अपने दिए गए वक्तव्यों में यह स्पष्ट रूप से घोषणा किया कि, "आज हमें शान्ति और सभ्य व्यवहार की आवश्यकता है, हम युद्ध नहीं चाहते।" – 12 जनवरी, 1951 को लंदन से रेडियो प्रसारण। अपने इसी दृष्टिकोण से रूस को अवगत कराते हुए 22 जून, 1955 को मास्को में उन्होंने कहा, "शान्ति के मायने युद्ध से भागना नहीं है बल्कि शान्ति अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा सम्बन्धों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है" जिसमें (क) बातचीत के माध्यम से तनाव कम करना, (ख) विभिन्न राष्ट्रों के बीच सहयोग बढ़ाना, (ग) सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक सम्पर्कों से व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि करना तथा (घ) परस्पर विचारों, अनुभवों तथा सूचना का आदान–प्रदान करना शामिल है। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

1. नेहरु जी के सतत् प्रयास से पूरे विश्व में यह संदेश गया कि वैश्विक स्तर पर विकास का मार्ग शान्ति एवं सहयोग हो सकता है।
2. साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का व्यावहारिक रूप से विरोध प्रदर्शित करने के लिए इंडोनेशिया तथा दक्षिण–पूर्व–एशिया तथा अन्य अफ्रीकी देशों के स्वतंत्रता संग्राम को हर प्रकार की सहायता देना वे अपना कर्तव्य समझते थे।
3. उनका यह कूटनीतिक तथा व्यावहारिक आंकलन था कि समवर्ती दुनिया के लोग यदि साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक बंधनों में जकड़े रहे तो भारत की स्वतंत्रता कायम नहीं रह सकती।

इस दिशा में 23 मार्च, 1947 का एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन (Asian Relations Conference) एक मील का पत्थर साबित होता है जिसमें भाषण देते हुए पं. नेहरु ने कहा, "शान्ति तभी आ सकती है जब सभी देश आजाद होंगे तथा सभी मनुष्य स्वतंत्र तथा सुरक्षित रहेंगे और उन्हें आगे बढ़ने का मौका मिलेगा, इसलिए शान्ति और स्वतंत्रता पर राजनीतिक तथा आर्थिक – दोनों पहलुओं को सोचना होगा।" और दूर तक सोचते हुए उन्होंने अफ्रो–एशियाई देशों को लोकतांत्रिक विकास को मजबूत करने के लिए धार्मिक अतिवाद तथा जातिगत एवं भाषाई टकराव से दूर रहने का आवाहन किया। इसी चरण में उन्होंने शीतयुद्ध के पड़ने वाले बाह्य दबावों को दरकिनार करते हुए कान्फ्रेन्स में वह विश्वस्तरीय वक्तव्य दिया था जो आने वाले समय में गुटनिरपेक्षता का मूल मंत्र बन गया–

'For too long we of Asia have been petitioners in western courts and chancellories. That story

must now belong to the past. We propose to stand on our legs and co-operate with all others who are prepared to co-operate with us. We do not intend to be the plaything of others3 The countries of Asia could no longer be used as pawns by others, they are bound to have their own politics in world affairs.' (जवाहरलाल नेहरु, इण्डियाज़ फॉरेन पॉलिसी, नई दिल्ली, 1961)

यही दृष्टिकोण 'गुटनिरपेक्ष' सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ, जो भारत की विदेश नीति का मार्गदर्शी सिद्धान्त बना तथा अंततः गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999) चूँकि भारत का रीयल पॉलिटिक या रणनीति सम्बन्धी स्थिति का अपना कोई अनुभव नहीं था जिसका स्वतंत्र देश सामना कर रहे थे, इसलिए सुरक्षा और शक्ति–समीकरण के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण आदर्शवादी था।

भारत के आदर्शवादी दृष्टिकोण के तीन कारण थे –

1. चूँकि भारत किसी देश के प्रति साम्राज्यवादी या आक्रामक नहीं रहा इसलिए भौगोलिक –राजनीतिक अखण्डता का खतरा भारत के सामने नहीं था।
2. चूँकि भारत शीतयुद्ध में किसी का पक्ष नहीं ले रहा था इसलिए यह मानना कि शीतयुद्ध का नकारात्मक प्रभाव भारत पर नहीं पड़ेगा, गलत साबित हुआ।
3. चूँकि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना पर शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के नैतिक सिद्धान्त पर मुहर लगी थी इसलिए विदेश नीति में नैतिकता को महत्त्व दिया गया।

इसलिए अंतराष्ट्रीय सम्बन्धों में नैतिक आचरण से सुरक्षा होगी की नीति का अनुकरण किया गया। लेकिन जल्द ही जब हैदराबाद, जूनागढ़, कश्मीर जैसी रियासतें बाहरी दबाव में आकर भारत में विलय से आनाकानी करने लगीं तथा 1947–48 में जम्मू कश्मीर में पाकिस्तानी आक्रमण हो गया, तब भारत ने यह सबक सीख लिया कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में आदर्शवाद अव्यवहारिक है। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999) इसके बाद भारत में यह भावना उठी कि अपने सांस्कृतिक–राजनीतिक–क्षेत्रीय स्थिति के आधार पर एशिया तथा विशेष रूप से दक्षिण एशिया में भारत एक ताकत के रूप में उभर सकता है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कह सकते हैं कि गाँधी–नेहरू धारणा कि लोकतंत्र, मैत्रीपूर्ण सहयोग तथा शान्ति सद्भावना से ही राष्ट्रीय–सामरिक कठिनाइयाँ सुलझाई जा सकती हैं, एक भ्रामक धारणा थी। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

नेहरु जी ने संयुक्त राष्ट्र संघ को मानवता की आशा का प्रतीक माना तथा इसके सिद्धान्तों और उद्देश्यों के प्रति अपनी पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए इसे हर सम्भव सहयोग देने का पूर्ण आश्वासन दिया। परन्तु इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि संयुक्त राष्ट्र में उनका विश्वास झूठा था। इसी विश्वास के आधार पर वह कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र में ले गए जो उनकी भयंकर भूल थी।

कश्मीर के प्रश्न पर UNO से निराशा के बाद भारत की विश्वदृष्टि (World View) में एक दृढ़ दृष्टिकोण पैदा हुआ। अपनी अंतर्राष्ट्रीयतावाद में आस्था के बावजूद नेहरु जी को यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत को UNO से न्याय नहीं मिल सकता। 1962 के चीनी आक्रमण तथा 1965 के पाकिस्तान आक्रमण के बाद ताशकंद समझौता में सोवियत संघ की भूमिका से भारत को यह पता चल गया कि सभी शक्तियाँ तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी शक्ति राजनीति (Power Politics) की यथार्थताओं और आवश्यकताओं के आधार पर ही अपनी नीतियों का निर्धारण करती हैं। नैतिकता और न्याय के आधार पर नहीं। तब से भारत द्विपक्षीय विवादों (bilateral dispute) के सम्बन्ध में किसी भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर औपचारिक वाद–विवाद का विरोधी रहा है।

3.6 आदर्षवाद से व्यावहारिक पक्ष की ओर

होने में नेहरु विदेश नीति के तीन आयाम प्रतीत होते हैं, जो निम्न हैं :–

पहला, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर सोवियत रूस तथा अमरीका में टकराव की स्थिति आ चुकी थी जिससे असहयोग एवं शीतयुद्ध की शुरुआत हुई। इन परिस्थितियों में भारत ने नेहरु के नेतृत्व में महाशक्तियों के प्रति गुटनिरपेक्षता की जो नीति अपनाई, उसकी शुरुआत 1925 में हो चुकी थी। अंतर्राष्ट्रीय महकमों में इसके उद्देश्य एवं

अस्तित्व को लेकर प्रश्न उठे कि यह कहीं प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान की अमरीका की पृथकवाद (Isolationism) की नीति तो नहीं है। इसे नेहरु जी ने स्पष्ट किया कि यह पूर्व अमरीकी नीति से भिन्न थी क्योंकि उन्होंने दोनों गुटों के बीच एक ईमानदार मध्यस्थ या सेतुबन्ध की भूमिका निभाने का प्रयत्न जबकि अमरीका प्रथम विश्वयुद्ध में तटस्थ रहा था। नेहरु जी के गुटनिरपेक्षता का दूसरा पहलू भारतीय महाद्वीप में तथा अफ्रो–एशियाई देशों में नेतृत्व स्थापित करना था। चूँकि साम्राज्यवाद से स्वतंत्र होने वाला पहला और सबसे बड़ा देश भारत था इसलिए वह एक स्वाभाविक वृत्ति थी और अन्तिम रूप से नेहरु जी भारत को क्षेत्रीय रूप से पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध में देखना चाहते थे विशेषकर चीन, जिसके साथ 1954 में उन्होंने दोनों देशों के बीच शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व की नींव डालने के लिए "पंचशील की आचारसंहिता" का सृजन किया। इस दृष्टि के पीछे यह विश्वास था कि समूचे एशिया में फैले हुए आध्यात्मिक/सांस्कृतिक आन्दोलनों के पीछे भारत का महत्वपूर्ण योगदान था।

3.7 सारांश

सर्व धर्म समभाव तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा

सबके प्रति खुली हुयी एवं स्वभाव से उदारवादी है। जिसकी स्थापना हजारों वर्ष पूर्व वेदों के द्वारा ही कर दी गई थी। प्राचीन भारत के प्रामाणिक ग्रंथ कैटिल्य के अर्थशास्त्र में विदेश नीति की विस्तृत चर्चा से पता चलता है, कि वर्तमान युग के युद्ध और शांति की नीति की तुलना में कौटिल्य का मण्डल एवं 'ाड्गुप्त सिद्धान्त विदेश नीति के क्षेत्र में अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुनियोजित दृष्टि रखता था जिसका अनुकरण कर विजयी राज्य निरंतर अपने पराक्रम को बनाये रखने के साथ–साथ अपने राष्ट्रहित प्रजाहित और सैनिको के, सुखसम्पन्नता के प्रति सचेत रहते थे। भारत की प्राचीन संस्कृति को बदलने में मुगलों एवं अंग्रेजों का हाथ था भारत में एक बहुलवादी संस्कृति का वर्चस्व स्थापित हो गया था ब्रिटिश शासन ने भारतीय सामाजिक–अर्थतंत्र के आधार को बदल दिया राष्ट्र्य कांग्रेस ने स्वतंत्रता आन्दोलन में इन सभी मुद्दो को मुखर होकर उठाया तथा ये सभी मुद्दे भारतीय विदेश नीति का अंग बन गये। पश्चिमी शिक्षा प्राप्त नेताओं ने गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिये सफल क्रांति का सूत्रपात किया था। समूचे ऐशिया में फैले हुये आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनो के पीछे भारत का महत्वपूर्ण योगदान था।

इकाई–4 स्वतंत्रता के पश्चात भारत की विदेश नीति

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 स्वतंत्रता के पश्चात भारत की विदेश नीति

(क) नेहरूकाल (अगस्त 1947– मई 1994)

(ख) विदेशनीति की नेहरू– गाँधी

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय का दृष्टिकोण

4.3 राष्ट्रीय एकीकरण एवं सुरक्षा काल 1946–1965

(क) जम्मू कश्मीर का विलेय

(ख) चीन तथा पंचशील 1949

(ग) बांडुगं सम्मेलन 1955

4.4 राष्ट्रनिर्माण तथा आर्थिक सुरक्षा का युग 1955–64

(कांगो संकट 1956, बेलग्रेड सम्मेलन 1961, चीनी का आक्रमण 1955, पाकिस्तान सम्बन्ध कश्मीर की समस्या, नेहरू जी की कश्मीर नीति, कश्मीर समस्या पच्छिमी शक्तियाँ)

4.5 सारांश

4.6 बोध प्रश्न

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

- नेहरूकाल की विदेश नीति को समझना
- राष्ट्रीय एकीकरण एवं सुरक्षा के काल को समझना
- राष्ट्र निर्माण तथा आर्थिक सुरक्षा के युग को समझना
- नेहरू जी की कश्मीर नीति को जानना तथा कश्मीर (समस्या को समझना)

4.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत एक संप्रभु राष्ट्र के रूप में राष्ट्रीय समुदाय में शामिल हुआ तो दोनो महाशक्तियाँ इस उम्मीद में थी कि भारत प्रजातांत्रिक कारणों से अमेरिका तथा समाजवादी कारणो से सोवियत संघ का पक्ष घट हो सकता है। लेकिन भारत का गुटनिरपेक्ष रवैया अपनाना उन्हें अहंकारी तथा चुनौतीपूर्ण हुआ। नेहरू जी की दूर दृष्टि ने इस सत्य को देख लिया था कि जब तक युद्ध को खतरा बना रहेगा। छोटे और उदीययान राज्य राष्ट्र निर्माण का सपना नहीं देख सकते हैं। नेहरू जी के दिशा–निर्देश में गठित स्वतंत्रता पूर्व से ही काँग्रेस विदेशनीति सेल भारतीय जनता तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के बीच सेतु का काम कर रहे थे। नेहरू जी गाँधी जी एवं विवेकानंद जी के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुये शांति के दूत, न्याय एवं नैतिक आधार पर विश्व व्यवस्था के अग्रदूत की भूमिका निभाने पर जोर दिया।

4.2 स्वतंत्रता पश्चात् भारत की विदेश नीति

क. नेहरु काल – (अगस्त, 1947–मई, 1964) –

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत एक सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में शामिल हुआ तो दोनों महाशक्तियाँ इस उम्मीद में थीं कि भारत प्रजातांत्रिक कारणों से अमरीका तथा समाजवादी कारणों से सोवियत संघ का पक्षधर हो सकता है। लेकिन भारत का गुटनिरपेक्ष रवैया अपनाना उन्हें अहंकारपूर्ण तथा चुनौतीपूर्ण प्रतीत हुआ।

विदेश नीति का स्वतंत्र विकल्प, शक्ति–समीकरण में शामिल न होना तथा अंतर्राष्ट्रीय दबाव के आगे बिना झुके UNO की सदस्यता पाना तथा शीतयुद्ध की राजनीति से भी दूर रहना। ये कुछ ऐसी आकांक्षाएँ थीं जो एक नव स्वतंत्र राष्ट्र को तीसरी दुनिया के देशों के सामने एक महत्वाकांक्षी नेतृत्व के रूप में अंतर्राष्ट्रीय पहचान दे रहा था।

महाशक्तियाँ शीतयुद्ध के सम्बन्ध में भारत के उपदेशात्मक रवैया के प्रति अत्यन्त खिन्न थीं। अमरीका ने स्वतंत्रता आन्दोलन में भारत की सहायता की थी इसलिए उसकी भारत से समर्थन की अपेक्षा थी। परन्तु जब भारत ने शीत युद्ध में स्वयं तटस्थ रहते हुए नए स्वतंत्र देशों को भी ऐसी ही सलाह दी तो पश्चिमी देशों ने भारत को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया तथा राजनीतिक दूरी बढ़ा ली। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

नेहरु जी की दूरदृष्टि ने इस सत्य को देख लिया था कि जब तक युद्ध का खतरा बना रहेगा। छोटे और उदीयमान राज्य राष्ट्रनिर्माण का सपना नहीं देख सकते। नेहरु जी यूरोप में महायुद्ध तथा अफ्रो–एशियाई देशों में गृह–युद्ध के निजी अनुभवों से यह बात भली–भाँति समझते थे कि युद्ध का दबाव अन्य सभी सामाजिक प्राथमिकताओं को पीछे धकेल देता है," फासीवादी–नाज़ीवादी ताकतों का उदय प्रथम विश्वयुद्ध के मलबे के बगैर सम्भव नहीं था।" (पुष्पेश पंत तथा श्रीपाल जैन, वही)

ख. विदेश नीति की नेहरु–गाँधी दिशा

1. व्यक्तिगत रूप से स्वयं नेहरु जी के दिशा–निर्देश में गठित स्वतंत्रता पूर्व से ही 'कांग्रेस विदेश–नीति सेल' भारतीय जनता तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के बीच में सेतु का काम कर रहे थे। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के जटिलता को समझने तथा उस सन्दर्भ में भारत की विदेश–नीति को समझाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। स्वामी विवेकानन्द तथा महात्मा गाँधी के विश्वदृष्टि को उन्होंने व्यवहार में परिणत किया। स्वामी विवेकानन्द ने भारत को विश्व में "शान्ति के दूत, न्याय एवं नैतिक आधार पर विश्व व्यवस्था के अग्रदूत" की भूमिका निभाने पर जोर दिया। गाँधी जी का भी यह विश्वास था कि, "भारत सत्य का मार्ग छोड़कर स्वतंत्रता हासिल करने के बजाय बरबाद हो जाएगा।" (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

   गाँधी जी के अनुसार विदेश नीति के अग्रलिखित तत्व होने चाहिए –

   (क) विविधता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता,

   (ख) लोकतांत्रिक व्यवस्था में बाह्य दबाव नहीं,

   (ग) अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्ति बनाए रखना,

   (घ) चिन्तन शक्ति को बढ़ावा देना।

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि, "मैं भारत के सम्बन्ध में अहिंसा की नीति का समर्थन इसलिए नहीं करता हूँ कि वह कमजोर देश है बल्कि मैं चाहता हूँ कि अपनी ताकत के प्रति सचेत होकर भारत अहिंसा के मार्ग पर चले। इस ताकत को हासिल करने के लिए किसी तालीम या हथियार की जरूरत नहीं है।" (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

2. दूसरी विचारधारा क्रांतिकारियों जैसे सुभाषचन्द्र बोस की थी कि पश्चिमी ताकतों तथा धुरी शक्तियों के बीच व्याप्त संघर्ष से लाभ उठाने की नीति, जमीन से ब्रिटिश ताकत को खदेड़ने के लिए जापान की सहायता लेना जिससे भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था मजबूत हो।

3. तीसरी विचारधारा साम्यवादियों की थी, जो कोई स्वतंत्र विचारधारा नहीं थी बल्कि यह 1930 से 1940 के बीच की सोवियत संघ की प्रतिक्रिया से निर्धारित विचारधारा थी। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

इसके अलावा सरदार वल्लभ भाई पटेल युद्ध में किसी भी प्रकार की भागीदारी के विरुद्ध थे। प्रथम विश्वयुद्ध में किए गए वायदों को पूरा नहीं करने के कारण गाँधी जी स्पष्ट शब्दों में भारत को मिलने वाले प्रदाय/हिस्से की जानकारी चाहते थे। वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने कांग्रेस के स्पष्ट माँग को अस्वीकार कर दिया जिससे क्षुब्ध होकर कांग्रेस की प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। दूसरी तरफ गाँधी जी ने सीमित रूप में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का प्रारम्भ किया जो 15 अगस्त, 1941 तक चला लेकिन जापान की युद्ध में सफलता को देखते हुए यह आन्दोलन स्थगित हो गया। अंतर्राष्ट्रीय दबाव से घबरा कर तथा जापान के विरुद्ध भारत से युद्ध में पूर्ण सहायता के लिए 11 मार्च, 1942 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने युद्ध समाप्त होने पर जल्द–से–जल्द पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) प्रदान करने की घोषणा की। इसी घोषणा को सर स्टैफोर्ड क्रिप्स लेकर भारत आए परन्तु कांग्रेस ने ही नहीं, पूरे देश ने क्रिप्स मिशन को अस्वीकार कर दिया और भारत छोड़ो प्रस्ताव करतल ध्वनि से 8 अगस्त 1942 को AICC के द्वारा पारित कर दिया गया।

यह प्रस्ताव सिर्फ राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय नीति की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण थी। इस प्रस्ताव में केवल भारत की ही स्वतंत्रता प्राप्ति का संकल्प नहीं वरन् सम्पूर्ण पराधीन और शोषित मानव जाति के स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रस्ताव रखा गया।

इसके द्वारा समस्त अधीन एशियाई राष्ट्रों की स्वतंत्रता सुनिश्चित कराने तथा एक विश्व संघ की स्थापना कराने पर बल दिया गया था। (पी.डी. कौशिक, भारत की विदेश नीति)

ग– अंतर्राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण

1. जुलाई, 1945 में कांग्रेस कार्य–समिति ने शिमला सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का स्वागत करते हुए लघु शक्ति की कमज़ोरी तथा महाशक्तियों के विशेषाधिकार की आलोचना की।
2. द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर सितम्बर 1945 के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में उपनिवेशवाद विरोधी नीति पर बल देते हुए कहा कि, "युद्ध का अन्त उपनिवेशों और अधीन देशों के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं लाया है तथा साम्राज्यवादी शक्तियाँ फिर से अन्य देशों पर अपना आधिपत्य जमाने की पुरानी प्रतियोगिता में लग गई हैं।" (पी.डी. कौशिक, भारत की विदेश नीति)
3. दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों – बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया तथा अफ्रीका के संघर्षों को कांग्रेस के द्वारा खुलकर समर्थन दिया गया। मार्च 1946 में कार्य समिति के बम्बई अधिवेशन में एशिया और अफ्रीका के देशों में विदेशी आधिपत्य के अन्त तथा विदेशी सेवाओं की वापसी की माँग की गई।

पण्डित नेहरु का आदर्शवाद 7 सितम्बर, 1946 को नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्रसारण से स्पष्ट झलकता है, "दुश्मनी तथा घृणा और आंतरिक संघर्षों के बावजूद विश्व, निकट– सहयोग स्थापित करने तथा कॉमनवेल्थ विश्व बनाने की ओर बढ़ रहा है। इसी नए विश्व में भारत को आगे बढ़ाना है। एक ऐसा विश्व जिसमें आज़ाद लोगों को स्वतंत्र रूप से सहयोग दिया जाएगा। कोई वर्ग या श्रेणी एक–दूसरे का शोषण नहीं करेगी।"

श्री जे.एन. दीक्षित पचास वर्षों के विदेश नीति क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, "हजारों वर्षों में पहली बार हमने स्वतंत्र नागरिक तथा उप–महाद्वीप में संयुक्त संप्रभु गणराज्य के रूप में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का सामना करने के लिए अपनी नीतियाँ कैसे निर्धारित करें? इन चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनाई गई पद्धति ही वास्तविकता में हमारी विदेश नीति के मूलभूत तत्व हैं।" (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

सोवियत संघ के तत्कालीन शासक जोसेफ स्टालिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को बुर्जुआ आन्दोलन ही मानते थे। वे इसे कभी जनसाधारण का संग्राम नहीं मानते थे। उनकी नज़र में नेहरु–गाँधी साम्राज्यवादी–औपनिवेशिक विचारधाराओं के एजेंट थे। स्टालिन भारत की प्रथम राजदूत श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित से कभी नहीं मिले तथा भारत के दूसरे राजदूत डॉ. एस. राधाकृष्णन से भी एक या दो बार अनिच्छा से मिले (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)। जहाँ तक अरब तथा मुस्लिम देशों का सवाल था, अधिकांश मुस्लिम देश महाशक्तियों के उपनिवेश थे तथा भारत–पाक विभाजन के बाद भारत से बचकर चल रहे थे।

विदेश नीति में अपने नैतिक, उदारवादी तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण के जवाब में नेहरु जी को भी महाशक्तियों से भारत की सहायता में असहयोगी तथा अरुचिपूर्ण रवैया का जवाब प्राप्त हुआ। फलस्वरूप राष्ट्रहित की दृष्टि से गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त यथार्थ के धरातल पर खरा नहीं उतरा।

राष्ट्रनिर्माण एवं राष्ट्रहित के दृष्टि से नेहरु काल को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :–

(क) 1947–1955 राष्ट्रीय एकीकरण + सुरक्षा

(ख) 1956–1964 आर्थिक निर्माण + राष्ट्रीय सुरक्षा

इसके पहले कि हम इन दो कालों पर चर्चा करें। नेहरु जी द्वारा विदेश नीति की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक विरासत के अलावा स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् जिन आधुनिक विचार मूल्यों का समावेश किया गया वह कम महत्वपूर्ण नहीं थे। इसलिए इस पर एक नज़र आवश्यक है।

(क) शान्तिवाद – गाँधीवादी दर्शन से उपजे सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के मूल्यों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्तिदूत की भूमिका निभाना जो कोरिया संकट, स्वेज़ संकट तथा प्रथम गुटनिरपेक्ष आन्दोलन 1961 बेलग्रेड के दौरान लक्षित हुआ।

(ख) राष्ट्रवाद का प्रबल समर्थन का प्रमाण है पंचशील सिद्धान्त जिसमें किसी भी देश की राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रमण किए बगैर कूटनीतिक सम्बन्धों पर जोर दिया गया तथा एक–दूसरे के राष्ट्रीय सीमा का सम्मान करना एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया।

(ग) उदारवादी अंतर्राष्ट्रीयवाद (Liberal Internationalism) – भारतीय राजनीतिक /दार्शनिक विचारकों जैसे गोखले, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर उदारवादी मानवतावादी विचारधारा के पोषक थे। इन लोगों के विचारधाराओं के प्रभाव के कारण तथा अपनी वैश्विक दृष्टि के कारण नेहरु जी सभी राष्ट्रों की सम्प्रभुतापूर्ण समानता, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का अधिकार, स्वतंत्र विदेश नीति बनाने का अधिकार तथा UNO का समर्थन की नीति इत्यादि पर अडिग रहे। भारतीय संविधान के चौथे भाग के अनुच्छेद 51 राज्य के नीति निर्देशक तत्व में उदारवादी अंतर्राष्ट्रीयतावाद के विचारधारा का समावेश करते हुए अंतर्राष्ट्रीय कानून तथा संधियों के सम्मान का उल्लेख किया गया है। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 57–60)

(घ) लोकतांत्रिक समाजवाद – लोकतंत्र, मार्क्सवाद, फेबियन समाजवाद इन सबका मिलाजुला स्वरूप लोकतांत्रिक समाजवाद का है जिसका चयन नेहरु जी ने भारत के राष्ट्र–निर्माण के लिए आवश्यक समझा। उन्होंने साम्यवादी तथा गैर–साम्यवादी, दोनों ही देशों से अपनी निकटता बराबर रूप में बनाए रखा। साथ ही साथ वे विकसित तथा विकासशील देशों में आर्थिक समानता पर सहयोग पर बल देते थे जिससे कि एक नवीन विश्व आर्थिक व्यवस्था का विकास हो सके (NIEO) तथा गरीब देश आर्थिक, औद्योगिक तथा शैक्षणिक विकास शान्ति से प्राप्त कर सकें। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 57–60)

(ङ) व्यक्तित्व कारक (Personality Factor) – यूँ तो भारतीय विदेश नीति के निर्माण में स्वतंत्रता पूर्व से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारकों का जखीरा भरा पड़ा है लेकिन कोई भी आलोचक भारत की विदेश नीति निर्माण के क्षेत्र में नेहरु जी के बहुमूल्य केन्द्रीय भूमिका को नकार नहीं सकता। साथ ही विदेश नीति निर्माण में राष्ट्रहित का पुरज़ोर ख्याल रखने में गाँधी जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, डॉ. राधा कृष्णन, श्री लाल बहादुर शास्त्री तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी के योगदान का महत्वपूर्ण स्थान रहा। लेकिन जहाँ तक अंतर्राष्ट्रवाद का सवाल था नेहरु जी एवं विदेश सचिव श्री वी.के. कृष्ण मेनन का योगदान अति महत्वपूर्ण था। गुटनिरपेक्षता शब्द का निर्माण श्री मेनन (1956–1962 तक वी. के. कृष्ण मेनन रक्षा मंत्री रहते हुए नेहरु के प्रधान सलाहकार के रूप में उभरे) तथा नेहरु जी के संयोग से हुआ। "नेहरु जी की मृत्यु के बाद भी उनकी विश्व दृष्टि ही भारत की विदेश नीति का मार्गदर्शक सिद्धान्त रहा।" अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुटनिरपेक्षता को एक सफल तृतीय शक्ति आन्दोलन के रूप में स्थापित करने का श्रेय नेहरु जी को जाता है। (यू.आर. घई, भारतीय विदेश नीति, 44) उन्होंने विदेश नीति के सम्बन्ध में एक आम सहमति विकसित करने की कोशिश की। एक तरफ अफ्रो–एशियाई देशों को झकझोरा तो दूसरी तरफ चीन जैसे साम्यवादी ड्रैगन से हाथ मिलाया। तीसरी तरफ महाशक्तियों के सैन्य सन्धियों का यथाशक्ति विरोध करते हुए प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर पं. नेहरु अपने स्पष्ट दृष्टिकोण रखते चले।

अपने जीवनकाल में नेहरु जी ने विदेश मंत्री का पद खुद ही सम्हाला। उसके बाद 1956–1962 तक रक्षा मंत्री वी.के. कृष्ण मेनन नेहरु जी के विदेश नीति मामले में विशेष सलाहकार रहे। श्री मेनन के अलावा कुछ और उल्लेखनीय विदेश सचिव और राजनयिक हुए जैसे गिरिजा शंकर बाजपेयी, सुविमल दत्त, आर.के. नेहरु, राजेश्वर दयाल, पी.एन. हक्सर, जे.एन. दीक्षित आदि जिन्होंने नेहरु के दिशा–निर्देश में लम्बे समय तक काम करने के बाद 'इन्दिरा काल' तक विदेश नीति गलियारे में अहम् भूमिका निभाई। (रमेश के. अरोरा और गोयल, इण्डियन पब्लिक एण्ड विदेश नीति, 173)

4.3 1946–1955 राष्ट्रीय एकीकरण एवं सुरक्षा काल

ब्रिटिश, जाते–जाते भारत में हिन्दू–मुस्लिम संप्रदायों के बीच फूट को हवा देते गए। वे यह स्थापित करना चाह रहे थे कि भारत में केवल ब्रिटिश राज ही अखण्डता कायम रख सकता है जिसके अभाव में देशी रियासतें भारत सरकार से रिश्ता तोड़ देंगी और पुनः उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व हो जाएगा। 556 देशी रियासतों का भारत में विलय एक चुनौतीपूर्ण कार्य था जिसे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी सूझ–बूझ से अंजाम दिया। भारत विरोधी बड़े रियासतों में प्रमुख थे हैदराबाद, बड़ौदा, त्रावणकोर, जम्मू और कश्मीर, भोपाल, जोधपुर–बीकानेर, जैसलमेर आदि। सरदार पटेल ने हालात को समझते हुए जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ी, बातचीत या बलप्रयोग के माध्यम से इन रियासतों को भारतीय गणराज्य में शामिल होने को तैयार किया था।

लेकिन कश्मीर पर छिपकर पाकिस्तानी हमला ने भारत को यथार्थ राजनीति का सबसे पहला सबक सिखाया कि केवल "संवैधानिक एवं कानूनी प्रक्रिया" से ही देश की अखण्डता की सुरक्षा नहीं की जा सकती। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999)

नेहरु जी की दूसरी बड़ी रणनीति थी। दक्षिण–पूर्व–एशिया में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों को भारत के द्वारा खुलकर समर्थन देना जिसके तहत मार्च, 1947 तक "एशियन रिलेशंस कांफ्रेंस" तथा जनवरी, 1949 में इंडोनेशिया की स्वतंत्रता के लिए पुनः "दिल्ली कांफ्रेंस" आयोजित करना। इस कांफ्रेंस में नेहरु जी ने दक्षिण एशियाई देशों का एक स्थाई संगठन बनाने की कोशिश की लेकिन सफलता इसलिए नहीं मिली कि जितने समूह थे उतने विकल्प।

जम्मू–कश्मीर का विलय –

भारत की सबसे बड़ी समस्या देश को भौगोलिक दृष्टि से मजबूत बनाना था। इसी बीच पाकिस्तान के घुसपैठ की कार्यवाई के कारण राजा हरिसिंह ने तत्काल भारत के साथ विलय का प्रस्ताव रखा जिसके फलस्वरूप भारतीय सेना ने पाक घुसपैठिए से कश्मीर की रक्षा की। लेकिन पाकिस्तान के इरादे पर अंकुश लगाने के लिए वे इस विवाद पर UNO का समर्थन चाहते थे। लेकिन UNO ने ब्रिटिश इशारे पर भारत के प्रति नकारात्मक रुख अपनाया तब नेहरु जी की आदर्शवादी नीति गलत साबित हुई। सुरक्षा परिषद् ने कश्मीर पर भारत की संप्रभुता को मान्यता नहीं दी तथा एक ऐसे जनमत संग्रह का सुझाव दिया, जिसकी नियुक्ति संयुक्त राष्ट्र संघ करेगा। साथ ही जम्मू कश्मीर के विभाजन की सलाह भी दी गई। कश्मीर में तब नेशनल कांग्रेस की शेख अब्दुल्ला सरकार थी। इसी बीच हिन्दू महासभा के नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी जो कश्मीर में कैदी थे, की हत्या 1953 में कर दी गई। इससे राज्य में साम्प्रदायिक फूट बढ़ गई। शेख अब्दुल्ला के सम्बन्ध नेहरु जी से और खराब हो गए जिससे शेख को एक दशक से भी ज्यादा समय के लिए राज्य से बाहर रखा गया। तब से अब तक दोनों ही नीतियों विदेश तथा गृह में कश्मीर भारत के लिए एक जटिल समस्या बन कर रह गया। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999, पृ. 50)

चीन तथा पंचशील

नेहरु जी ने भारत–चीन के बीच अंतर्राष्ट्रीय पंचशील सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अपनी दक्षिण–एशिया नीति के तहत उन्होंने चीनी राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन तो किया ही था। साथ ही संयुक्त राष्ट्र में माओत्से तुंग सरकार के सदस्यता की भी पैरवी की थी। भारत को 1950 के कोरियन संकट में "न्यूट्रल नेशंस रिपैट्रिएशन कमीशन" का अध्यक्ष बनाया गया था। उसी तरह हिन्द–चीन (Indo-China) 1954 में जेनेवा में श्री मेनन ने (Indo-China Peace Agreement) को व्यावहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत ने UNO के निमंत्रण पर लाओस, कंबोडिया तथा वियतनाम में भी मध्यस्थ एवं अध्यक्ष की भूमिका निभाई। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति, 1999, पृ. 54) इन्हीं वर्षों के दौरान समाजवादी देश तथा भारत निकट आए। स्टालिन की मृत्यु एवं ख्रुश्चेव की नियुक्ति से भारत–सोवियत संघ समीकरणों में सकारात्मक परिवर्तन आए। नेहरु जी के निमंत्रण पर ख्रुश्चेव तथा बुल्गानिन

1955 में भारत आए एवं कश्मीर–मुद्दे पर भारत का समर्थन किया। सोवियत समाजवादी रुझान के कारण ही भारत से चीन के शुरुआती रिश्ते सौहार्द्रपूर्ण थे। चाउ–एन–लाई जून, 1954 में भारत आए तो हिन्दी–चीनी भाई–भाई के नारे से उनका स्वागत हुआ। अपनी आलोचनाओं के विपरीत नेहरु जी भारत–चीन सम्बन्धों के बारे में सिर्फ आदर्शवादी नहीं थे। वे चीन की दबंगई से परिचित थे तथा एशियाई सम्बन्ध में चीन से शक्ति–सन्तुलन के प्रति चिंतित थे। तिब्बत में अपना दखल बढ़ाने के साथ–साथ भारत के अरुणांचली क्षेत्रों को चीन अपना दर्शाने लगा था। जबकि अमरीका–चीन के कोरिया विवाद में भारत ने अपने को निष्पक्ष रखा था।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि चीनी प्रसार को रोकने के लिए 50 के दशक में अमरीका ने सुरक्षा परिषद् में भारत के स्थाई सदस्यता का प्रस्ताव रखा था जिसके तीन उद्देश्य थे –

(क) सुरक्षा परिषद् में साम्यवादी ताकत को कमजोर करना,

(ख) भारत को अपने पक्ष में करना, और

(ग) भारत–चीन के बीच कटुता बढ़ाना।

लेकिन नेहरु जी ने एशियाई एकता के आदर्शवाद के कारण चीन के पक्ष में सुरक्षा परिषद् SC के स्थाई सीट के प्रस्ताव को ठुकरा दिया जो आज 60 वर्षों से भारत के लिए एक असाध्य लक्ष्य बना हुआ है। लाल चीन को भारत ने तब तुरन्त मान्यता दे दी जब अमरीका उसे UNO का सदस्य भी नहीं बनाना चाह रहा था और भारत ने बढ़–चढ़ कर (K.M. Pannikar चीन सलाहकार) अंतर्राष्ट्रीय समुदायों में चीन की वकालत की। (पी.डी. कौशिक, भारत की विदेश नीति, 2001) 1954, अक्टूबर में पं. नेहरु चीन यात्रा पर गए और पंचशील के रूप में भारत–चीन शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के पाँच सिद्धान्त की घोषणा की गई। नेहरु जी की आशा थी कि चीन पंचशील सिद्धान्तों से बाँधा जा सकेगा लेकिन यह उम्मीद बेबुनियाद साबित हुई। उत्तर कोरिया में भारत की तटस्थ भूमिका से चीन ने शान्त होने के बजाय भारत को एशिया में अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखना शुरु कर दिया।

भारत–चीन पर पंचशील सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

1. एक–दूसरे पर आक्रमण न करना,
2. एक–दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना,
3. एक–दूसरे के सम्प्रभुता का सम्मान करना,
4. परस्पर लाभ तथा समानता की भावना रखना, और
5. शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के सिद्धान्त का पालन करना।

कोलम्बो कान्फ्रेन्स , 1949

इंडोनेशियन आज़ादी पर नई दिल्ली, 1949 कांफ्रेंस के तुरन्त बाद 1949 में कोलम्बो में आयोजित इस कांफ्रेंस में पाँच एशियाई देशों भारत, पाक, इन्डोनेशिया, श्रीलंका (Ceylon) तथा बर्मा (Myanmar) ने भाग लिया। Pan Asianism की दिशा में नेहरु जी का यह तीसरा प्रयास था। इसमें बर्मा के प्रधानमन्त्री UNO तथा श्रीलंका के प्रधानमंत्री जॉन कोटलेवाला ने पाक के सहयोग से पश्चिमी गुट का परचम बुलन्द किया लेकिन इण्डोनेशिया ने भारत के विचारों का समर्थन किया। नेहरु जी के Indo-China पर फॉर्मूला तथा अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद पर क्या दृष्टि (Stand) हो – पर काफी मतभेद उभर कर सामने आए। पाक उस वक्त SEATO तथा बगदाद पैक्ट का सदस्य बनने को तैयार था। इस प्रकार नेहरु जी को एशियाई देशों के अंदरूनी मतभेद का अंदाज़ लगता चला गया और वे Pan-Asianism से शिथिल होने लगे। लेकिन कोलम्बो कांफ्रेंस के लिए बांडुंग (इण्डोनेशिया) को स्वीकार कर लिया। (S.B. Jain, India's Foreign Policy, pp. 88-90)

बान्डुंग सम्मेलन, 1955

इस सम्मेलन को गुटनिरपेक्षता का आधार माना जाता है। यह अफ्रो–एशियाई कांफ्रेंस भारत तथा चीन के बीच नेतृत्व की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि बांडुंग सम्मेलन ने पंचशील के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

नेहरु जी ने तीसरी दुनिया के नेतृत्व के लिए अपनी पात्रता स्थापित कर दी। नेहरु–नासिर–सुकार्णो की तिकड़ी ने नए तीसरे गुट का आगाज़ कर दिया। इसका एक नकारात्मक आयाम यह था कि नेहरु जी को 'बड़े भाई' के विशेषण के निशाने पर ले लिया गया। लेकिन दुर्भाग्य से एशिया में इनके नेतृत्व को लेकर जो कयास लगाए जा रहे थे, उसमें चा0–एन–लाई ने नेहरु जी को दो नम्बर पर पहुँचा दिया। चा0–एन–लाई की विमान के साथ होने वाले 'ड़यंत्र का उससे पहले ही भंडाफोड़ कर दूसरे विमान से बांडुंग की यात्रा कर चीन ने अपने खुफिया तंत्र और शक्ति का परचम कांफ्रेंस में गाड़ दिया। इससे नेहरु के व्यक्तित्व को आघात पहुँचा। (Micheal Brecher, The new States of Asia, 1983) जबकि नेहरु जी ने जो "एशियाई मानस" (Pan Asianism) के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण और सुरक्षा का सपना देखा था वह बिखरता सा लगा।

4.4 राष्ट्रनिर्माण तथा आर्थिक सुरक्षा का युग– 1955–64

शीतयुद्ध में अमरीका के पक्ष में रुचि न लेने से वह भारत को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता देने का विरोध करने लगा। चूँकि भारत ने कोरिया में UNO कार्यवाई में सैन्यबल देने से इन्कार करते हुए, जापानी शान्तिसन्धि पर भी हस्ताक्षर से इन्कार कर दिया। भारत एशियाई देशों और जापान में अमरीकी दबदबा कम करना चाहता था। चीन तथा जापान में सैन्य बल भेजने के बजाए भारत ने यहाँ डॉक्टरी मिशन भेजा, तब भी चीन प्रसन्न नहीं हुआ और ना ही सोवियत यूनियन। दूसरी तरफ अफ्रो–एशियाई देशों में भारत की साख बढ़ने से अमरीका और पश्चिमी देश भारत को अलग–थलग करने लगे। सन् 50 के दशक में चर्चिल जिसने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया था, वह पुनः सत्ता प्राप्त करने के बाद भारत से विमुख हो चुके थे। सन् 1955 में 0हापोह की स्थिति में भारत ने पूर्वी यूरोप के साथ दोस्ती बढ़ा दिया जिससे सुरक्षा तथा तकनीकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। 1949 में नेहरु जी को वाशिंगटन यात्रा से खाली हाथ लौटना पड़ा था। भारत खाद्यान्न संकट से बुरी तरह जूझ रहा था। पश्चिमी देशों से कोई ठोस आर्थिक सहायता नहीं मिलने के बावजूद ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने गुटनिरपेक्षता तथा भारत की क्षमताओं की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

पं. नेहरु ने दूसरे दशक काल में पाकिस्तान की मध्यस्थता से अमरीका का ध्रुव शत्रु चीन अब अमरीका की ओर झुकने लगा था। अमरीका ने पाक को भारी मात्रा में धन और हथियार दिए। यह भारत के लिए चिन्ता का विषय था। इस दौर में भारत में गरीबी हटाना आधुनिकीकरण, शिक्षा, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण (Modernization, Industrialization and Urbanization) नेहरु की भारतीय विदेश नीति की प्रमुख चिन्ताएँ थीं। यह चिन्ता बिना विदेशी आर्थिक सहायता के दूर नहीं हो सकती थी। आर्थिक एवं विदेशी सहायता की अमरीकी उम्मीद टूट चुकी थी। अमरीका ने चीन के अवरोध के लिए दक्षिण–पूर्व एशिया संगठन (SEATO) की रचना की जिसमें भारत ने साथ देने से मना कर दिया लेकिन पाक ने भारी मात्रा में, हथियार एवं सैनिक सहायता के लालच में इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु नेहरु की दूसरी अमरीका यात्रा 1956 में तथा राष्ट्रपति आइजनहावर की 1959 में, भारत यात्रा से सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। 1960 में अमरीका के उपविदेश मंत्री डगलस डिल्लों ने मार्च, 1960 में सीनेट में यह घोषणा की कि भारत का आर्थिक विकास अमरीकन विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य बन गया है।

इन सबके पीछे हाथ था बढ़ते भारत–सोवियत मैत्री सम्बन्ध का। पं. नेहरु का द्वितीय शासन काल गुटनिरपेक्षता की पुष्टिकरण का काल था। वे नैतिकवाद, समाजवाद, एशियावाद के प्रयोगों से गुजरते हुए यथार्थवादी धरातल पर पैर जमाने का प्रयास कर रहे थे। इस काल की विशेषताएँ निम्नलिखित थीं :–

1. भारत–चीन सीमा विवाद पर औपनिवेशिक दृष्टि का आरोप,
2. छोटे एशियाई देशों का बड़े भाई के व्यवहार का आरोप,
3. कश्मीर में जनमत–संग्रह निरन्तर टालने का आरोप,
4. गोवा–मुक्ति के लिए बल–प्रयोग का आरोप।

उपरोक्त आरोपों के प्रकाश में भारतीय विदेश नीति की मजबूरियाँ तथा राष्ट्रहित के तकाज़े से पं. नेहरु को बांडुग कांफ्रेंस के बाद से लगातार लद्दाख तथा तिब्बत क्षेत्र में हो रहे चीनी घुसपैठ से निबटने के लिए एक मज़बूत सहारे की आवश्यकता थी। 1955–56 में लद्दाख के अक्साई चीन में, चीन द्वारा सड़क का निर्माण भारत के लिए खतरे की घंटी के साथ ही नेहरु जी को अपने आदर्शवाद के नींद से जगा गया। उधर पाक कश्मीर को अपने दबाव में

लाने का प्रयास करता रहा तथा दूसरी ओर तिब्बत में चीन का समर्थन करता रहा। तिब्बत से दलाई लामा के निष्कासन पर नेहरु जी तिब्बत स्वायत्तता पर अडिग हो गए।

इस प्रकार नए सुरक्षा दबावों के मद्देनज़र तथा देश की आर्थिक चुनौतियों का सामना करने के लिए पुराने पश्चिमी ताल्लुकात (अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी) पूँजीवाद एवं समाजवाद के आदर्शों का हवाला देकर, भारत के लिए औद्योगिक सहायता देने से मना करने लगे। उन्होंने भारतीय स्टील प्लाण्टों के लिए निवेश करने से मना कर दिया। ऐसे समय में सोवियत यूनियन में स्टालिन की मृत्यु के बाद खुश्चेव ने सत्ता सम्हाला जिससे चीन के माओ–त्से–तुंग के मतभेद खड़े हो गए। यही वह समय था जब रूस ने दक्षिण पूर्व एशिया में रुचि लेना शुरु किया। भारत ने रूस के पक्ष में हंगरी संकट में सोवियत हस्तक्षेप पर अपना मुँह बन्द रखा लेकिन स्वेज नहर संकट पर पश्चिम की आलोचना की तथा मिस्र के प्रधानमंत्री नासिर का समर्थन किया। इज़राइल के निर्माण के बाद से भारत ने फिलीस्तीन का समर्थन करना शुरू किया। इससे पश्चिमी देश, विशेषकर अमरीका भारत में दूरी बढ़ने लगी।

कान्गो संकट, 1956

गुटनिरपेक्ष यात्रा में एक नया पड़ाव अफ्रीका के Congo Crisis के दौरान आया जब मिश्र ने इंडोनेशिया तथा युगोस्लाविया से मिलकर न्यूर्योर्क में UNO में साथी देशों के साथ मिलकर गुटनिरपेक्ष देशों की एक बैठक बुलाकर कांगो के गिज़ेंगा शासन को मान्यता दे दिया तथा मिश्र एवं युगोस्लाविया इसे एक गुटनिरपेक्ष बैठक का दर्जा देना चाह रहे थे। यहाँ यह जानना दिलचस्प है कि इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्नो भी बांडुग के तर्ज पर पाक तथा चीन से मिलकर एक और गुटनिरपेक्ष बैठक बुलाना चाह रहे थे जिसमें नेहरु रुचि नहीं रखते थे। इस प्रकार गुटनिरपेक्षता के निर्माता पं. नेहरु ने स्वयं को गुटनिरपेक्षता के बहाव से दूर कर लिया और पहले गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के संयोजकों के रूप में भारत शामिल नहीं था। हालांकि गुटनिरपेक्षता के जन्मदाता के रूप में भारत एक संस्थापक सदस्य की हैसियत रखता है। (Singham and Hune, Nonalighment in an age of Alignment, 1986, London)

यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि तीसरी दुनिया के साथ–साथ पूर्वी यूरोप के प्रतिनिधि राज्य के रूप में युगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को विश्व स्तरीय बनाने में अहम् भूमिका निभाई। उन्होंने अफ्रीकी देशों जिसमें याना, टोगो, लाइबेरिया, माली, मोरोक्को, ट्यूनिशिया, सूडान तथा मिश्र शामिल हैं, का लम्बा दौरा किया तथा प्रथम गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सम्मेलन की भूमि तैयार की और अन्ततः इसकी तैयारी बैठक काहिरा सम्मेलन के रूप में पाँच जून, 1961 को हुई। (Leo Mates, Nonalignment: Theory and Current Policy, 1972, Belgrade) गुटनिरपेक्षता की पहली औपचारिक परिभाषा तथा विषय – वस्तु इसी तैयारी बैठक में तय की गई जिसमें भारतीय प्रतिनिधियों ने सबसे अहम् भूमिका निभाई। औपचारिक गुटनिरपेक्षता के निम्न पाँच तत्व हैं –

1. एक राष्ट्र की गुटनिरपेक्षता तथा शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व पर आधारित अपनी स्वतंत्र नीति होनी चाहिए,
2. गैर–औपनिवेशिक स्वतंत्रता आन्दोलनों का समर्थन करना,
3. दो महाशक्तियों से सम्बन्धित किसी सैन्य गुट का सदस्य न हो,
4. किन्हीं महाशक्तियों के साथ द्विपक्षीय सैन्य समझौता का सदस्य न हो,
5. किसी महाशक्ति को सैनिक ठिकाने के लिए आधार क्षेत्र (Military base) प्रदान न करे।

इस प्रकार नए स्वतंत्र देशों को अवसर प्रदान करने के लिए परिभाषा को इतना व्यापक रखा गया जिससे कि अधिक से अधिक देश सदस्य बन सकें। नेहरु जी के नेतृत्व में एक व्यापक आधार वाले परिभाषा का निर्धारण सम्भव हो सका जिसमें न सिर्फ अफ्रो– एशियाई देशों को बल्कि लातीन अमेरिकी तथा पिछड़े पूर्वी यूरोपीय देशों को भी जोड़ने का मौका दिया गया।

बेलग्रेड सम्मेलन, 1961

बेलग्रेड गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में 25 राष्ट्रों द्वारा सहभागिता की गई। यह उस समय घटित हो रहा था जब महाशक्तियों के बीच शीतयुद्ध चरम पर पहुँच गया था। अमरीका तथा सोवियत यूनियन के बीच क्यूबन–मिसाइल संकट को लेकर युद्ध जैसी स्थिति बन गई थी। इसलिए नेहरु जी सम्मेलन में इस बात पर जोर देना चाह रहे थे कि

तत्कालीन खतरा "युद्ध एवं शान्ति" है न कि उपनिवेशवाद के विरोध का, जबकि छोटी शक्तियाँ मंच से उपनिवेशवाद के पुरज़ोर भर्त्सना के पक्ष में जुट गईं। लेकिन पं. नेहरु के अथक प्रयास से गुटनिरपेक्ष मसौदा की भाषा को नरम रखा गया। नेहरु जी के बिना पर एक शान्ति अपील श्री केनेडी तथा श्री ख्रुश्चेव को भेजा गया तथा क्षेत्रीय एवं स्थानीय विवादों को गुटनिरपेक्ष मंच से उठाने से मना कर दिया गया। इस प्रकार मार्शल टीटो की तुलना में पंडित नेहरु गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के नेता का शीर्षक हासिल करने में सफल रहे जो दक्षिण–एशियाई छोटे देशों को सुहावना नहीं लगा (K.P. Karunakaran, Outside the Contest, Delhi, 1963)। पाक को गुटनिरपेक्ष देश की सदस्यता के लिए समर्थन नहीं मिला। लेकिन बेलग्रेड, नेहरु जी द्वारा अमरीका एवं रूस को शान्ति पत्र भिजवाने के लिए सदा याद किया जाएगा। (Two Decades of Nonalignment: Document of Gatherings of the Nonaligned Countries, 1961-1982, Ministry of External Affairs, New Delhi, 1983)

चीनी आक्रमण, 1965

कश्मीर विवाद को UNO में रखकर पंडित नेहरु भारत का कश्मीर पर दावा कमजोर कर चुके थे। इसलिए चीन के मामले में उन्होंने पंचशील करते हुए तिब्बत का मसला द्विपक्षीय रखते हुए उसे गुटनिरपेक्ष या अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने से रोक दिया। लेकिन इससे चीन उदारवादी होने के बजाय आक्रमणकारी होकर, भारत की गुटनिरपेक्ष, अफ्रो–एशियाई देशों में लोकप्रियता को देखते हुए पहले 1960 में तिब्बत तथा अक्टूबर, 1962 में गुटनिरपेक्ष सम्मेलन के ठीक एक साल बाद ही भारत पर हमला बोल देता है। भारत को विश्व की चौथी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का नेहरु जी का सपना भ्रान्तिपूर्ण रहा। पंचशील के सिद्धान्त खण्डित हुए तथा भारत एशिया के नेतृत्व से भी फिसल गया। पाक ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए चीन से हाथ मिला लिया। लेकिन पाक की आशा के विपरीत ब्रिटेन–अमेरिका ने इस मौके पर भारत की सहायता की।

इससे भी दुखद यह था कि भारत के तथाकथित गुटनिरपेक्ष मित्रों ने भारत–चीन के बीच वही तटस्थता दिखाई जिसकी वकालत भारत, अमरीका एवं रूस के बीच करता रहा। कटे पर नमक के माफिक रूस ने भारत की कोई सहायता नहीं की। चूँकि 1962 में ही नेहरु जी ने क्यूबा संकट के समय केनेडी तथा ख्रुश्चेव दोनों के मध्य एक मध्यस्थ की सफल भूमिका निभाई थी, इसलिए अमरीका ने भारत को प्रचुर मात्रा में सहायता दी।

नेहरु काल में भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध और कश्मीर समस्या

14 अगस्त, 1947 को भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान अस्तित्व में आया। विभाजन अनिवार्य था या नहीं यह अलग प्रश्न है किन्तु विभाजन की घटना से दोनों देशों के बीच जो घृणा, वैमनस्य और अविश्वास पैदा हुआ वह कभी समाप्त नहीं हो सका और एशिया महाद्वीप में एक सतत विवाद पैदा हो गया – भारत–पाक विवाद। दोनों देशों में हर विषय और हर कदम पर मतभेद बढ़ता गया और उनके बीच युद्ध की स्थितियाँ भी आईं। वैसे माइकेल ब्रेशन का यह कथन भी सही प्रतीत होता है,

"भारत और पाकिस्तान हमेशा ही अघोषित युद्ध की स्थिति में रहे हैं।"

यद्यपि दोनों देशों की मूलभूत विचारधारा और सोच ही एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी दोनों देशों के सम्बन्धों को प्रभावित करने वाली कुछ समस्याओं को चिन्हित किया जा सकता है –

- ऋणों की अदायगी – भारत सरकार ने ब्रिटिश भारत के सारे ऋणभार को स्वीकार कर लिया। बदले में भारत को पाकिस्तान से 3 अरब प्रति वर्ष मिलना था जिसे पाकिस्तान ने कभी नहीं दिया।
- नहरों के पानी के सम्बन्ध में – पंजाब के विभाजन के पश्चात् नदियों से निकाली गई नहरों के पानी के सम्बन्ध में उनके मुख्यालय भारत के नियंत्रण में आ गये थे। 1960 में सिन्धु–जल–सन्धि समपन्न हो जाने से यह झगड़ा शान्त हो गया।
- शरणार्थियों की समस्या – विभाजन के बाद पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर अत्याचार हुये। वे भागकर भारत आने लगे, भारत ने उन्हें शरण दिया। उनकी जमीन और सम्पत्ति, जो वे पाकिस्तान में छोड़कर आये थे, की क्षतिपूर्ति की मांग की गई लेकिन पाकिस्तान सदैव आनाकानी करता रहा। आज भी शरणार्थियों की समस्या किसी न किसी रूप में बनी हुई है।
- हैदराबाद की समस्या – हैदराबाद के निजाम ने स्वतंत्र राज्य की घोषणा की थी। किन्तु उसका रवैया

पाकिस्तान के पक्ष में था। हैदराबाद भौगोलिक दृष्टि से भारत में ही मिल सकता था। इसलिए निजाम के विरुद्ध भारत को सैनिक कार्रवाई करनी पड़ी जिसका पाकिस्तान ने विरोध किया और इस मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में भी उठाया लेकिन निरर्थक।

- जूनागढ़ की समस्या – जूनागढ़ के मुस्लिम शासक ने पाकिस्तान में विलय की घोषणा कर दी जब कि वहाँ की जनता हिन्दू थी। जनता ने नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान भागने के लिए विवश किया। एक जनमत संग्रह के बाद जूनागढ़ को भारत में सम्मिलित कर लिया गया जिसके विरोध में पाकिस्तान ने भ्रामक प्रचार किया।

- कश्मीर समस्या – यह समस्या आज भी भारत–पाकिस्तान सम्बन्धों में प्रभाव डालने वाले तत्वों में पहले स्थान पर है। कश्मीर की समस्या भारत पाकिस्तान के बीच की सबसे उलझी हुई समस्या हैं विभाजन के बाद कश्मीर के शासक ने किसी भी देश में विलय स्वीकार न करके स्वतंत्र रहने की घोषणा कर दी। कश्मीर का शासन तो हिन्दू था लेकिन उसकी जनता मुस्लिम बहुल थी। इसलिए पाकिस्तान को कश्मीर के शासक का यह निर्णय अच्छा नहीं लगा। पाकिस्तान इसे अपने साथ मिलाना चाहता था। 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान की सहायता और प्रेरणा से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत के कबायलियों ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। जब हमलावर श्रीनगर के पास तक पहुँच गये तो कश्मीर के शासक ने भारत से सहायता मांगी और कश्मीर को भारत में विलय करने की प्रार्थना की। नेहरु जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और सेना भेज दिया। युद्ध की समाप्ति पर जनमत संग्रह की शर्त के साथ कश्मीर भारत का अंग मान लिया गया। संयुक्त राष्ट्र आयोग की व्यवस्था के अनुसार जनमत संग्रह की एक शर्त यह भी थी कि पाकिस्तान द्वारा हस्तगत क्षेत्र से जब पाकिस्तानी सेना और कबायली पूर्णतया हट जायेंगे तभी जनमत संग्रह होगा। पाकिस्तान ने अधिकृत क्षेत्र "आजाद कश्मीर" से सेनायें हटाना स्वीकार नहीं किया और जनमत संग्रह की बार समाप्त हो गई। 6 फरवरी, 1954 को कश्मीर की संविधान सभा ने एक प्रस्ताव पास कर भारत में जम्मू–कश्मीर राज्य का विजय होने की पुष्टि कर दी और 26 जनवरी, 1957 को जम्मू–कश्मीर का संविधान लागू होते ही जम्मू कश्मीर औपचारिक रूप से भारत का अभिन्न अंग बन गया।

नेहरु जी की कश्मीर नीति

कश्मीर विवाद का प्रारम्भ – स्वतंत्रता के पहले कश्मीर भारत के उत्तरी पश्चिमी प्रदेश में स्थित एक महत्वपूर्ण देशी रियासत थी। इसका क्षेत्रफल 1,34,400 वर्ग कि.मी. और जनसंख्या 40 लाख थी। इस जनसंख्या में लगभग 77% मुसलमान, 20% हिन्दू तथा 3% बौद्ध, सिक्ख आदि थे। सन 1947 में देशी रियासतों को यह विकल्प दिये गये थे कि वे या तो भारत और पाकिस्तान में से किसी एक में सम्मिलित हो जायें अथवा पृथक बनी रहे। कश्मीर के महाराजा हरिसिंह अपना पृथक राज्य बनाये रखना चाहते थे अतः उन्होंने भारत और पाकिस्तान से यथास्थिति समझौता करने का अनुरोध किया। भारत देशी राज्यों की समस्या के समाधान मे व्यस्त था अतः वह इस पर ध्यान नहीं दे सका, परन्तु पाकिस्तान ने 14 अगस्त को कश्मीर से यथास्थिति समझौता कर लिया। 20 अक्टूबर 1947 को उसने इस समझौते के बावजूद पश्चिमी सीमा प्रान्त के कबायली लोगों को प्रेरणा और सहायता देकर उनसे काश्मीर पर आक्रमण करा दिया। 24 अक्टूबर की आक्रमणकारियों ने महुरा बिजली घर पर अधिकार कर लिया जिससे श्रीनगर को बिजली प्राप्त होती थी। इसपर महाराजा हरिसिंह ने भारत से सहायता मांगी और कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने का अनुरोध किया। 27 अक्टूबर को भारत सरकार ने महाराजा हरिसिंह के अनुरोध को स्वीकार कर लिया, परन्तु गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन का परामर्श मानकर नेहरु ने यह घोषणा की कि आक्रमणकारियों को खदेड़ दिये जाने के बाद जनता की इच्छा के अनुसार कार्य किया जायेगा। भारत ने शीघ्रता से काश्मीर की रक्षा के लिये सेनायें भेज दी। कबायली लोग पाकिस्तान की भूमि से होकर काश्मीर पर आक्रमण कर रहे थे। भारत ने पाकिस्तान से अनुरोध किया कि कबायलियों को अपने क्षेत्र से होकर नहीं आने दे परन्तु पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकल अली खाँ ने कहा कि "काश्मीर में भारत का विलय उसके कायर शासक के द्वारा भारत सरकार की आक्रमणकारी सहायता से काश्मीर की जनता को दिया गया धोखा है।" उन्होंने काश्मीर के भारत में विलय को अस्वीकार कर दिया।

कश्मीर और संयुक्त राष्ट्र – भारतीय सेनाएँ तेजी से आगे बढ़ीं तथा आक्रमणकारी पीछे हटने लगे परन्तु नेहरु ने अपने अनेक सहयोगियों के विरोध के बावजूद लार्ड माउन्टबेटन का यह परामर्श मान लिया कि मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाया जाये। 1 जनवरी, 1948 करे भारत ने संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र की धारा 35 के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् से यह शिकायत की कि पाकिस्तान कश्मीर में कबायली आक्रान्ताओं को सहायता दे रहा है जिससे "अन्तर्राष्ट्रीय

शान्ति और सुरक्षा पर खतरा उत्पन्न हो सकता है" तथा यह अनुरोध भी किया कि वह पाकिस्तान को आक्रमणकारियों की सहायता बंद करने को कहे।

भारत के द्वारा पूरे कश्मीर को आक्रमणकारियों से मुक्त कराये बिना कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र में ले जाना नेहरु की एक भूल थी। सुरक्षा परिषद् का उद्देश्य शान्ति को बनाये रखना है, किसी एक पक्षकार के पक्ष में निर्णय देना नहीं है। किसी भी विवाद में उसकाल क्ष्य दोनों पक्षों में समझौता कराना होता है। उसके सदस्य उसे राष्ट्रीय हित की अभिवृद्धि का एक य मानते हैं। अतः जिन मामलों में उनके अपने हित निहित नहीं होते उनमें उनकी नीति न्यूनाधिक मात्रा में आक्रमणकारी के संतुष्टिकरण की नीति बन जाती है।

जब भारत ने सुरक्षा परिषद् से शिकयत की, तब भारत की शिकायत से दो मुद्दे उभरकर सामने आते थे। (1) क्या पाकिस्तान कबायली आक्रमणकारियों की सहायता कर रहा था तथा (2) क्या कश्मीर का भारत में विलय वैधानिक है। इन दोनों ही प्रश्नों पर तथ्य इतने स्पष्ट थे कि कबायली आक्रमणकारियों के साथ पाकिस्तान की मिलीभगत होने में तथा कश्मीर के भारत में विलय की वैधानिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता था। परन्तु उसने इन दोनों मुद्दों को दरकिनार करते हुए जनमतसंग्रह को विचार का प्रारम्भिक मुद्दा बना लिया। उसने आक्रमण के शिकार भारत और आक्रमणकारी पाकिस्तान को समानता की स्थिति देकर समझौता कराने का प्रयत्न किया। 21 अप्रैल, 1948 को सुरक्षा परिषद् ने भारत और पाकिस्तान के लिये संयुक्त राष्ट्र आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग के प्रयत्नों से 1 जनवरी, 1949 को कश्मीर में युद्ध विराम हो गया। 13 अगस्त, 1948 और 5 जनवरी, 1949 को आयोग ने क्रमशः अपनी रिपोर्ट से पहले और दूसरे भाग सुरक्षा परिषद् को सौंपे। इनमें निम्न सिद्धांतों को कश्मीर विवाद के समाधान के आधार रूप में प्रस्तुत किया गया –

- पाकिस्तान कश्मीर से अपनी सेनाएँ हटा ले तथा कबायलियों को भी वहाँ से हटवाने का प्रयत्न करे।
- इस प्रकार सेनाओं द्वारा खाली किये गये प्रदेश का शासन प्रबन्ध आयोग के निरीक्षण में स्थानीय अधिकारी करेंगे।
- पाकिस्तानी सेनाओं के हट जाने के बाद भारत भी अपनी सेना के अधिकांश भाग हटा लेगा।
- अन्त में एक स्वतंत्र और निष्पक्ष जनमतसंग्रह के द्वारा यह निर्णय किया जायेगा कि कश्मीर भारत में शामिल होना या पाकिस्तान में।

सुरक्षा परिषद् ने चेस्टर निमिट्ज को जनमत संग्रह प्रशासक नियुक्त किया।

पश्चिमी राष्ट्र प्रारम्भ से ही कश्मीर विवाद में एक बड़ी सीमा तक पाकिस्तान का पक्ष ले रहे थे। परन्तु 1954 में कुछ ऐसे विकास हुए जिन्होंने कश्मीर समस्या की प्रकृति बदल दी। सितम्बर, 1954 में सीटो का सदस्य बनकर पाकिस्तान अमरीका आदि पश्चिमी राष्ट्रों के साथ सैनिक संधि में बंध गया। उसे पश्चिमी राष्ट्रों से भारी सैनिक सहायता और राजनीतिक समर्थन प्राप्त होने लगा। इससे बाध्य होकर भारत को भी अपनी नीति बदलनी पड़ी। सीटो पर हस्ताक्षर से पहले फरवरी, 1954 में अमरीका पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने को सहमत हो गया था। यद्यपि अमरीका ने भारत को यह आश्वासन दिया कि यह सहायता सिर्फ साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिये है और इसका उद्देश्य भारत को हानि पहुँचानी नहीं है परन्तु मार्च, 1954 में नेहरु ने लोकसभा में कहा कि, "अमरीका के राष्ट्रपति ने कहा है कि यदि पाकिस्तान को दी जाने वाली सैनिक सहायता का दुरुपयोग होता है, इससे दूसरों पर आक्रमण किया जाता है तो वह ऐसे आक्रमण को रोकेगा, परन्तु हमारा विगत अनुभव बताता है कि जब आक्रमण होता है तो उसे रोकने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। साढ़े छः वर्ष पूर्व कश्मीर पर भीषण हमला हुआ किन्तु अमरीका ने आजतक इसकी निन्दा तक नहीं की और हमें यह कहा जाता रहा है कि हम शान्ति बनाये रखने के लिये इस पर आग्रह नहीं करें। इसलिए निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि अमरीका द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली सहायता से आक्रमण को प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों के उत्पन्न होने की सम्भावना है।" 13 अप्रैल, 1956 को नेहरु ने स्पष्ट रूप से कहा कि भारत अब परिवर्तित परिस्थितियों में कश्मीर में जनमत संग्रह को अनावश्यक और अवांछनीय माता है। उनके शब्दों में, "जनमत संग्रह करने का प्रश्न स्पष्ट रूप से इस शर्त के साथ सम्बद्ध था कि पाकिस्तान कश्मीर से अपनी सेनाएँ हटा लेगा। पिछले 9 वर्ष में पाकिस्तान यह शर्त पूरी करने में असमर्थ रहा है। पाकिस्तान को मिलने वाली सैनिक सहायता ने और उसकी सैनिक समझौतों की सदस्यता ने कश्मीर में जनमत संग्रह करने के प्रस्ताव के मूल आधार को ही नष्ट कर दिया है।"

अमरीका सोवियत संघ के विरुद्ध अपनी मोर्चाबन्दी के अन्तर्गत सोवियत सीमा के निकट पाक अधिकृत कश्मीर के प्रदेश में अपना हवाई अड्डा स्थापित करना चाहता था। अमरीका की इस अभिसंधि का ज्ञान होने पर सोवियत संघ ने भी भारत का खुले रूप में समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया। 1956 में बुल्गानिन और ख्रुश्चेव ने कश्मीर समस्या पर भारत की नीति का समर्थन करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा, "आप पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर हमें आवाज दीजिये। हम तत्काल आपकी सहायता के लिये दौड़े चले आयेंगे।"

26 अक्टूबर, 1947 में कश्मीर को भारत में विलय करने के अपने प्रस्ताव के साथ महाराजा हरिसिंह ने कश्मीर के लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला को कश्मीर का अन्तरिम प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया था। 1951 में कश्मीर में एक संविधान सभा की स्थापना की गई। सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित इस संविधान सभा ने 6 फरवरी 1954 को राज्य के भारत में विलय की पुष्टि कर दी। भारत सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 370 में कश्मीर को विशेष दर्जा प्रदान किया। 19 नवम्बर, 1956 को संविधान सभा ने कश्मीर के लिये एक संविधान की रचना की जिसमें कश्मीर को भारत का एक अभिन्न अंग घोषित कर दिया गया तथा यह भी कहा गया कि संविधान की इस धारा में संशोधन नहीं किया जा सकता। वयस्क मताधिकार के आधार पर जनमत संग्रह में कश्मीर की जनता ने इस संविधान को स्वीकार किया। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के प्रतिनिधि गुन्नार जारिंग ने इस जनमत संग्रह को वैधानिक स्वीकार किया। 26 जनवरी, 1957 को नवनिर्मित संविधान पूरी तरह लागू हो गया। इस प्रकार जहाँ तक भारत का प्रश्न है, कश्मीर की जनता के विचार का आंकलन किया जा चुका है। पाकिस्तान के द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर से अपनी सेना को हटाने से इन्कार करने के कारण ही जनमत संग्रह नहीं किया जा सका। अतः भारत पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि उसने कश्मीर में जनता की इच्छा का आंकलन नहीं किया है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वैधानिक रूप से कश्मीर के विलय के लिये केवल महाराजा का निर्णय की आवश्यकता थी क्योंकि स्वतंत्रता अधिनियम 1947 में जनमत संग्रह की कोई व्यवस्था नहीं थी।

सुरक्षा परिषद् की बैठक में अमरीका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और क्यूबा ने सम्मिलित प्रस्ताव रखा जिसमें कश्मीर से दोनों देशों की सेनायें हटाने और संयुक्त राष्ट्र सेना के तत्वावधान में जनमत संग्रह कराने की बात कही गई। यह प्रस्ताव भारत को नितान्त अस्वीकार्य था तथा सोवियत संघ ने निषेधाधिकार का प्रयोग करके इसे विफल करा दिया। सुरक्षा परिषद् ने 1957 में गुन्नार जारिंग और 1958 में फ्रेंक ग्राहम को दोनों पक्षें में समझौता कराने के लिये भेजा परन्तु वे कोई समाधान नहीं ढूँढ सके। 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के समय पाश्चात्य देशों ने भारत को पर्याप्त सहायता प्रदान की। भारत की सैनिक सहायता की आवश्यकता का लाभ उठाते हुए पाकिस्तान और उसके पाश्चात्य मित्रों ने भारत पर कश्मीर विवाद के सम्बन्ध में अनुचित दबाव डालने का प्रयत्न किया। इस दबाव के कारण नई दिल्ली, करांची, रावलपिंडी और ढाका में भारत और पाकिस्तान के विदेशमंत्रियों के मध्य वार्तायें हुईं, किन्तु पाक विदेश मंत्री भुट्टो के अड़ियल रवैये के कारण मई, 1963 में वार्तायें असफल हो गईं। फरवरी, 1964 में पाकिस्तान ने पुनः कश्मीर के प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में उठाया, किन्तु सुरक्षा परिषद् की बैठक बिना कोई प्रस्ताव पास किये स्थगित हो गई।

पाकिस्तान का तर्क प्रधानतः धार्मिक है। द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान यह मानकर चलता है कि प्रत्येक मुसलमान पाकिस्तान का समर्थक है और प्रत्येक हिन्दू भारत का। उसका तर्क है कि कश्मीर में मुसलमानों का बहुमत है अतः कश्मीर पाकिस्तान के साथ रहना चाहिये।

महाराजा हरिसिंह द्वारा कश्मीर के भारत में विलय को एक 'ड़यंत्र करार देते हुए अक्टूबर, 1947 में पाक प्रधानमंत्री लियाकत अली ने कहा कि "कश्मीर का भारत में विलय एक धोखा है जो कश्मीर की जनता को भारत सरकार की आक्रामक सहायता से कश्मीर के कायर शासक द्वारा दिया गया है।"

भारत का प्रधान तर्क वैधानिक है।

- वैधानिक और संवैधानिक रूप से कश्मीर का भारत में विलय अक्टूबर 1947 में पूरा हो गया जब महाराजा हरिसिंह ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर करके उसे भारत सरकार को सौंप दिया।
- कृष्णमेनन ने 3 मई, 1962 को सुरक्षा परिषद् में यह तर्क दिया कि भारतीय संविधान में उसके किसी घटक राज्य के अलगाव की व्यवस्था नहीं है। कश्मीर भारत से अलग नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी कोई भी व्यवस्था संघीय सिद्धान्त के विरुद्ध होगी।

- भारत ने कश्मीर को आक्रमणकारियों से बचाने के लिये और उसका आर्थिक विकास करने के लिये असंख्य व्यक्तियों के जीवन और धन का बलिदान किया है।
- भारत जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त अथवा धार्मिक राज्य के प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकता है। यह सत्य है कि कश्मीर मुस्लिम बहुल है परन्तु जब कश्मीर में 40 लाख मुसलमान थे तब भारत में 600 लाख मुसलमान निवास करते थे।
- कश्मीर के मुसलमान भी धार्मिक राज्य के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं। यह तथ्य शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में सर्वप्रथम कश्मीरी मुसलमानों ने ही कबायली आक्रमणकारियों का प्रतिरोध किया था, इस बात का प्रमाण है।
- परिस्थितियाँ बहुत बदल गई हैं। जनमत संग्रह अब अनावश्यक और अवांछनीय है। जनमत संग्रह की एक शर्त यह थी कि इसके पहले पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर से अपनी सेनायें हटा लेगा। पाकिस्तान ने यह शर्त पूरी नहीं की। दूसरे, सन् 1954 में पाकिसतान अमरीकी सैनिक संधियों में सम्मिलित हो गया। इन बातों से समस्या का संदर्भ ही बदल गया है। सन् 1965 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया था, जिसने कश्मीर के विषय में उसकी अधिकारिक सिथति को समाप्त कर दिया है। जनमत संग्रह केवल इसलिये नहीं हो सका क्योंकि पाकिस्तान ने अधिकृत प्रदेश से अपनी सेनाएँ नहीं हटाईं।

कश्मीर समस्या और पश्चिमी शक्तियाँ –

कश्मीर के सम्बन्ध में पश्चिमी शक्तियों का दृष्टिकोण भारत में भारी आलोचना और असन्तोष का कारण रहा। विशेष रूप से यह प्रश्न भारत अमरीका सम्बन्धों में अक्सर तनाव पैदा करता रहा है। सुरक्षा परिषद् में पाश्चात्य शक्तियों ने जनमत संग्रह को मुख्य मुद्दा मान लिया और पाकिस्तान के आक्रमण पर गौर नहीं किया। दिसम्बर 1949 में कनाडा के जनरल मेकनांटन ने, जो उस समय सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष थे एक ऐसी योजना प्रस्तुत की जिसमें भारत और पाकिस्तान दोनों के द्वारा कश्मीर से सेनाएँ हटा लेने और उसे बाद जनमत संग्रह का प्रस्ताव था। 1951 में अमरीका और ब्रिटेन की पहल पर सुरक्षा परिषद् में यह भारत विरोधी प्रस्ताव पास हो गया कि जम्मू कश्मीर में संविधान सभा के गठन से जनमत संग्रह के निष्पक्ष कार्य में बाधा पहुँचेगी। 1954 में पाकिस्तान के सीटो का सदस्य बन जाने के बाद पाश्चात्य राज्य और भी खुलकर पाकिस्तान का समर्थन करने लगे। जून, 1957 में अमरीका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और क्यूबा ने एक पाकिस्तान समर्थक प्रस्ताव रखा जो सोवियत संघ के निषेधाधिकार के कारण पारित नहीं हो सका। जून 1962 में फिर एक बार सोवियत संघ को निषेधाधिकार का प्रयोग करना पड़ा। शीत युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद पश्चिमी राज्यों के भारत विरोधी दृष्टिकोण में कुछ कमी आई है। परन्तु कश्मीर में पाकिस्तान के द्वारा आतंकवादी गतिविधियों के द्वारा जो छद्म युद्ध चलाया जा रहा है उसके विषय में भी वे काफी नरम रुख अपना रहे हैं जो उनकी आतंकवाद विरोधी उद्घोषणाओं से मेल नहीं खाता है।

भारत की गलतियाँ – परन्तु भारतीय राजनीतिज्ञों, विशेषकर नेहरु की गलतियाँ कश्मीर में भारत की कठिनाइयों का मूल कारण रही हैं। प्रथम, नेहरु के द्वारा जनमत संग्रह का वचन देना भारी भूल थी। यह दीर्घकालीन विवाद, सामयिक सीमा संघर्षों और आतंकवादी हमलों का कारण रही है। जनवरी, 1949 के युद्धविराम के बाद भी हजारों सैनिकों और नागरिकों की मृत्यु इसके परिणामस्वरूप हुई है।

सरदार पटेल का मत था कि यदि भारत को कश्मीर को तलवार के बल पर बचाना है तब जनमत संग्रह का प्रश्न कहाँ रह जाता है? इसी प्रकार लार्ड बर्डवुड का मत था कि "यदि नेहरु को यह विश्वास था कि अब्दुल्ला का प्रशासन उनके दृष्टिकोण से जनता की इच्छा पर आधारित था, तब जनमत संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं थी और उसे उसके लिये कभी भी सहमत नहीं होना चाहिये था।"

नेहरु का जनमतसंग्रह का वचन अनावश्यक और अवांछनीय था। न तो विलयपत्र में महाराजा हरिसिंह ने ऐसी कोई शर्त रखी थी और न ही लोकप्रिय काश्मीरी नेता शेख अब्दुल्ला ने ऐसी कोई माँग रखी थी। वस्तुतः यह लार्ड माउन्टबेटन का विचार था। 27 अक्टूबर, 1947 को विलयपत्र को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा कि, "जब कश्मीर और उसकी भूमि आक्रमणकारियों से रहित कर दी जायेगी तब राज्य का विलय जनता के संदर्भ के लिये रखा जायेगा। परन्तु इसका अर्थ अनिवार्यतः भारत और पाकिस्तान में से एक के साथ विलय के लिये जनमतसंग्रह नहीं था। परन्तु भारत के अतिबुद्धिमान प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद् में अपनी पहल पर जनमत–संग्रह का वचन दे दिया।

कश्मीर के विलय को उस भारतीय प्रतिनिधि के भाषण ने सशर्त और अंतर्राष्ट्रीय विवाद बना दिया।

दूसरे, जैसा कि प्रोफेसर के.पी. सक्सेना का मत है, कश्मीर विवाद को संयुक्त राष्ट्र में ले जाना एक भयंकर भूल थी। सरदार पटेल और अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने ऐसा करने का विरोध किया था परन्तु इस समय नेहरु ने लार्ड माउन्टबेटन के परामर्श को अधिक महत्वपूर्ण मानकर विवाद को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का निर्णय लिया। महात्मा गांधी भी उनके इस निर्णय से क्षुब्ध थे यद्यपि उन्होंने कश्मीर में भारतीय सेनाओं की कार्यवाही का समर्थन किया।

अगस्त, 1965 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया, सन् 1971 में पाकिसतान ने पुनः भारत को सैनिक चुनौती दी, मई 1999 में पाकिस्तान ने घुसपैठियों द्वारा कश्मीर पर सैनिक शक्ति के बल पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। तीनों ही बार भारत पाकिस्तानी सेनाओं को पीछे ढकेलने में सफल हुआ परन्तु वह कूटनीति की मेज पर इन सफलताओं का कोई लाभ नहीं उठा सका।

मूल्यांकन

नेहरु काल भारतीय विदेश नीति का आदर्शवादी काल कहा जा सकता है जब 1000 वर्षों से गुलाम रहे भारत को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर एक महत्वपूर्ण आवाज के रूप में प्रतिष्ठा मिली। लेकिन ठोस धरातल पर एशिया में चीन की तुलना में नेतृत्व नहीं प्राप्त हुई। कश्मीर एवं तिब्बत नीति असफल साबित हुई। भारत के आक्रमणकारी न होने से उसका कोई शत्रु नहीं होगा, यह धारणा गलत निकली। कश्मीर समस्या को UNO ले जाना तथा तिब्बत पर चीन की संप्रभुता स्वीकार करना भारी भूलें थीं जिनका आज भी कोई समाधान नहीं है। इसलिए यथार्थ के धरातल पर राष्ट्रहित की दृष्टि से नेहरु नीति कमजोर नीति साबित हुई। लेकिन इसके बदले में भारत UNO में एक अफ्रो–एशियाई मंच गढ़ने में सक्षम रहा। नेहरु जी के व्यक्तिगत प्रयासों से शीतयुद्ध के खतरों को काफी सीमा तक टाला जा सका। विशेष, यहाँ के शिक्षा एवं तकनीकी के क्षेत्र में दोनों ही खेमों से पर्याप्त सहायता मिलती रही जिससे भारत के औद्योगिक नीति की नींव रखी जा सकी। नेहरु काल गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की भी अग्निपरीक्षा साबित हुई। जैसा कि जी.एच. जेनसन अपने पुस्तक "अफ्रो–एशिया और गुटनिरपेक्ष" 1966 में लिखते हैं कि दो एशियाई दिग्गजों के बीच शान्ति स्थापित करने का छः सदस्यीय देशों की कोलम्बो बैठक चीन के द्वारा अस्वीकृत कर दी गई जिससे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सीमा का पता चलता है।

4.5 सारांश

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गुटनिरपेक्ष शक्तिशाली समूह के रूप में तो नहीं उभरा लेकिन "शान्ति के क्षेत्र" को बढ़ाने में बहुत सकारात्मक भूमिका निभाता रहा। भारत की गुटनिरपेक्ष नीति के कारण चीन–युद्ध एक पूर्ण युद्ध में परिवर्तित नहीं हुआ। क्यूबन संकट में भारत से नाराज़ चल रहे रूस ने 12 दिसम्बर 1962 के बाद प्रत्यक्ष रूप से भारत के पक्ष में मत रखा। साथ ही गुटनिरपेक्षता की अंतर्राष्ट्रवादी छवि भी उस समय उभर कर सामने आई, जब अमरीका ने खुलकर भारत की सहायता की। इस प्रकार भारत के सामाजिक–आर्थिक आधारों को निर्मित करने में गुटनिरपेक्षता की नीति कारगर रही तथा नेहरु जी के "शान्ति के क्षेत्र" (area of peace) का निर्माण करने में महती भूमिका निभाती रही।

इकाई–5 शास्त्री काल (1964–1966) में भारतीय विदेश नीति

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 शास्त्री काल 1964–1966 में भारतीय विदेश नीति

(क) काहिरा गुटनिरपेक्ष सम्मेलन अक्टूबर 1964

(ख) राष्ट्रहित तथा यथार्थवाद

(ग) पाक आक्रमण 1965

(घ) ताशकंद समझौता

5.5 सारांश

5.6 बोध प्रश्न

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

- शास्त्रीकाल के समय की भारतीय विदेश नीति को समझना
- काहिरा गुटनिरपेक्ष सम्मेलन, राष्ट्रीय यथार्थवाद, पाक आक्रमण 1965 ताशकंद समझौता आदि के बारे में समझना

5.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री उस समय प्रधानमंत्री बने जब चीनी आक्रमण से लगे आघात को नेहरू जी सहन नहीं कर पाये हृदय–पक्षाघात से 27 मई 1964 को उनका देहान्त हो गया था देश में शीर्ष स्तर शून्यता उभर आयी थी नेहरू जी ने अपने जीवन के अन्तिम समय में लाल बहादुर शास्त्री को नामित कर दिये थे। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुये लाल बहादुर शास्त्री नेहरू जी के तथा जनता की उम्मीदो पर खरा उतरे थे। भारत को गरीबी के अलंकार से निकाल कर उन्होंने विकास के रास्ते पर पहुँचाया। सूखा और गरीबी से टूटते किसानों की हिफाजत था वार्डर पर लड़ रहे जवानों को हिम्मत बढ़ा कर अपना फर्ज निभाया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुटनिपेक्ष को शक्तिशाली समूह को शक्ति के रूप में तो नहीं उभर सका किन्तु शांति के क्षेत्र में लाल बहादुर शास्त्री जी के नेतृत्व में भारत की ख्याति विश्व में फैली।

5.2 शास्त्री काल (1964–1966) में भारतीय विदेश नीति

स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री उस समय प्रधानमंत्री बने जब चीनी आक्रमण से पैदा आघात को नेहरु जी सहन नहीं कर पाये और हृदय पक्षाघात से 27 मई, 1964 को उनका देहान्त हो गया था। देश के शीर्ष स्तर पर एक शक्ति शून्यता उभर आई थी। अंतर्राष्ट्रीय जगत में नेहरु जी के विराट व्यक्तित्व का स्थानान्तरण कौन करेगा यह प्रश्न चारों तरफ से गूँज रहा था। ऐसे में एक छोटे कद के विराट व्यक्तित्व वाले लाल बहादुर शास्त्री जी को नेहरु जी के आँखें मूँदने से पहले स्वयं उन्हीं के द्वारा उनके बाद श्रेष्ठतम उम्मीदवार के रूप में नामित कर दिये गये थे। एक आम आदमी जिसने जीवन संघर्ष से जीवन पर्यन्त दृढ़ता से मुकाबला किया जब तक मृत्यु ने ही उन पर विजय नहीं पा लिया। गरीबी के कंटकपूर्ण रास्तों को करीब से देखकर सारा जीवन आम आदमी की उन्नति के लिए लगा देने की साहसिक गाथा का नाम है श्री लाल बहादुर शास्त्री।

चुनौतियाँ

जब शास्त्री जी ने कुर्सी सम्हाली उस समय भारत–चीन युद्ध में पराजय के कारण, निम्नलिखित परिस्थितियाँ चुनौती पूर्ण थीं :–

1. भारत की अंतर्राष्ट्रीय छवि धूमिल हो चुकी थी।
2. महाशक्तियों का शीत–युद्ध चरम पर था।
3. चीन–पाक–इण्डोनेशिया का ध्रुवीकरण भारत के विरुद्ध जा रहा था।
4. देश को भारी दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ रहा था।
5. दक्षिण में हिन्दी भाषा को लेकर भयानक दंगे का सामना करना पड़ रहा था।
6. श्रीलंका में तमिलों की स्थिति बिगड़ने से दक्षिण भाषाई राज्य केन्द्र सरकार पर अनावश्यक दबाव बना रहे थे।
7. और सबसे ज्यादा दुःखद यह था कि नेहरु की अनुपस्थिति को पाकर पाक कच्छ छेत्र में दबाव बनाते हुए कश्मीर पर दूसरे आक्रमण की तैयारी कर रहा था। **(Michael Brecher, Succession in India: A Study in Decision-Making, 1966)**

एक नए प्रधानमंत्री के लिए एक अत्यन्त छोटे समय में इतनी विकट परिस्थितियों का सामना करना बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य था तब, जबकि उनकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति नेहरु जी की तुलना में शून्य थी। लेकिन इसके विपरीत शास्त्री जी ने नेहरुकाल के चीनी युद्ध पराजय को, पाक के नापाक युद्ध को विजय में तब्दील कर दिया। अत्यन्त छोटे समय में उनकी उपलब्धियाँ अत्यन्त महान थीं। एक ओर सूखा और गरीबी से टूटते किसानों की हिफाज़त करना तो दूसरी तरफ सरहद पर लड़ रहे जवानों की हिम्मत बढ़ाना उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

काहिरा गुटनिरपेक्ष सम्मेलन, अक्टूबर 1964

अपने छोटे से कार्यकाल में विदेश नीति एवं गुटनिरपेक्षता के क्षेत्र में भी शास्त्री जी ने अमिट छाप छोड़ी। उनके कार्यकाल में जिन लोगों को नेहरु जी के सामने पुरज़ोर तरीके से अपना पक्ष रखने का मौका नहीं मिला था, उन लोगों ने गुटनिरपेक्षता की नीति से हटकर भारत के लिए अमेरिका या सोवियत रूस से हाथ मिलाने की वकालत की। इसमें प्रमुख थे दक्षिण पंथ के आचार्य कृपलानी जिन्होंने अमेरिका को रियायत देने के लिए दबाव डालना शुरू किया। अमेरिका द्वारा बहुत सस्ते दर पर Voice of America Broadcast शुरू करना चाहता था इसलिए भारत को PL 480 के तहत या सस्ते दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराकर रेडियो ब्रॉडकास्ट के लिए छूट चाहता था। दूसरी तरफ भारतीय प्रेस जैसे 'The Statesman', 'The Hindu' ने गुटनिरपेक्ष जैसे नकारात्मक अवधारणा का त्याग कर देना चाहिए का प्रचार किया। लेकिन शास्त्री जी ने दृढ़ता का परिचय देते हुए Voice of America संधि एक सप्ताह के अन्दर रद्द कर दिया तथा अमरीका के वियतनाम नीति की आलोचना की। इससे यह पता चल गया कि शास्त्री जी दबाव में आए बिना स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम थे। (Michael Brecher, वही) 1964 में चीन के द्वारा अणु बम की परीक्षा ने भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को हिला कर रख दिया। जब उन पर सी. राजगोपालाचारी जैसे नेता दबाव बनाने लगे कि अब भारत को अमरीका से सन्धि कर लेनी चाहिए तो वह एक किंचित दौर था जब शास्त्री जी ने महाशक्तियों – अमरीका, लंदन तथा जर्मनी से मिलकर एक सुरक्षा कवच की कोशिश की लेकिन किसी द्विपक्षीय–सैनिक–संधि पर करार से इन्कार कर दिया क्योंकि यह भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के खिलाफ होगा।

दिसम्बर 1964 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विल्सन के साथ हुए बातचीत के आधार पर शास्त्री जी ने एक दो–सूत्रीय योजना बनाई जिसकी विशेषता थी (क) कि आणविक शक्तियाँ गैर–आणविक शक्तियों के विरुद्ध नाभिकीय हथियार प्रयोग नहीं करेंगे तथा (ख) UNO के द्वारा एक शपथ दिलवाना कि UNO द्वारा गैर–आणविक राज्यों के सुरक्षा का उस परिस्थिति में पूरी सुरक्षा की जाएगी अगर कोई आणविक शक्ति उन पर नाभिकीय आक्रमण करे। **(Report of the Ministry of External Affairs, 1965-66, New Delhi, 1966, p. 69)**

शास्त्री काल में इन्डोनेशिया बांडुग के तर्ज पर एक–दूसरे बांडुग के लिए लगातार प्रयास कर रहा था लेकिन नेहरु जी ने इस बात को पहचान कर एक दूसरे बेलग्रेड के लिए अपनी कूटनीतिक शक्ति लगा दी थी लेकिन समय

से पहले देहान्त होने के कारण नेहरु जी के स्थान पर शास्त्री जी ने दूसरे गुटनिरपेक्ष शिखर सम्ममेलन में काहिरा में सहभागिता की तथा नेहरु जी के विराट विदेश नीति के अनुभव नहीं होने के बावजूद भारत को गुटनिरेपक्ष नेतृत्व के रूप में पिछड़ने नहीं दिया। शास्त्री जी ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर गुटनिरपेक्ष रहते हुए चीन तथा पाक मुद्दे पर गुटनिरपेक्ष समर्थन माँगा। उन्होंने राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि रखते हुए चीन से आणविक परीक्षण स्थगित करने का आग्रह किया तथा सम्मेलन से चीन को एक अपीलीय पत्र भेजने की पेशकश की। उन्होंने आणविक परीक्षणों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की माँग रखी। (Foreign Affairs Records, Vol. 10, No. 4, April, 1964)

राष्ट्रहित तथा यथार्थवाद

शास्त्री जी एक यथार्थवादी विदेश नीति के लिए कृतसंकल्प थे। उन्होंने राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखते हुए सबसे पहले खाद्य समस्या से निबटने का निश्चय किया। 1964 के दुर्भिक्ष से निबटने के लिए जहाँ से भी खाद्यान्न मिल सका, उसका आयात किया और सारे देश में उसका वितरण किया। चूँकि आयात करके खाद्यान्न की पूर्ति कोई स्थाई हल नहीं था इसलिए उन्होंने कृषि पर काफी जोर दिया। सिंचाई व्यवस्था में व्यापक सुधार करके, उन्होंने कृषि योग्य भूमि को हरा–भरा कर दिखाया। (श्री विवेक मोहन, लाल बहादुर शास्त्री, नई दिल्ली, 2011)

कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए तथा उसे आम इन्सान तक उचित मूल्यों पर उपलब्ध कराने के लिए उन्होंने किसानों को बहुत सुविधाएँ उपलब्ध कराईं–जैसे अच्छी नस्ल के बीज उपलब्ध कराना, उत्तम श्रेणी का खाद दिलवाना, कृषि में आत्म–निर्भरता लाना इत्यादि। उन्हें पूरा विश्वास था कि किसान का लाभ देश का लाभ होगा। उन्होंने अपने अथक प्रयासों से देश को कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बना दिया। यह हरित क्रान्ति का आगाज़ था। किसानों की सम्पन्नता के साथ–साथ देश की दूसरी आवश्यकता थी सुरक्षा। वे पाकिस्तान के इरादे से भलीभांति परिचित थे। पाक को यह गलतफहमी थी कि अब भारत के पास नेहरु जैसा सक्षम नेता नहीं है। लाल बहादुर जैसा कमज़ोर इन्सान देश की रक्षा नहीं कर पाएगा।

पाक आक्रमण, 1965

चीनी आक्रमण द्वारा बिगड़ी हुई परिस्थितियों का फायदा उठाकर मार्च–अप्रैल, 1965 को पाक ने अपनी सेना कच्छ–रण में उतार दी। (श्री दिनेश चन्द्र झा, भारत–पाक सम्बन्ध, पटना, 1972) अभी भारतीय सेना तैयार नहीं थी, यह देखकर पाक ने कश्मीर क्षेत्र में अपनी गतिविधियाँ शुरू कर दीं। शास्त्री जी ने कठोर निर्णय लेते हुए ईंट का जवाब पत्थर से देने की योजना बनाई। (Hari Ram Gupta, Indo-Pak War, 1965, New Delhi, 1968) भारतीय सेनाओं को उन्होंने पश्चिमी पंजाब में उतार दिया। उन्होंने भारतीय सेनाओं का मनोबल खूब बढ़ाया। वे पाकिस्तान के भीतर तक घुस कर हमला करने लगे। यह युद्ध बाइस दिन तक चला होगा कि भारतीय सेनाएँ लाहौर और सियालकोट तक पहुँच गईं। पाक को इस भीषण जवाबी हमले की बिल्कुल उम्मीद नहीं थी। भारतीय सेना ने पाक थल सेना और वायु सेना की कमर तोड़ डाली। पाक ने चीन से मदद की गुहार लगाई तो भारत ने चीन को भी जवाबी कार्यवाही के लिए आगाह कर दिया। जब तक भारत–पाक युद्ध चला, शास्त्री जी की सिंहगर्जना पूरे भारत में गूँजती रही। अन्ततः सुरक्षा परिषद् ने 20 सितम्बर को एक प्रस्ताव पास कर दोनों देशों को युद्ध बन्द करने का निर्देश दिया।

शास्त्री जी ने जैसे कृषि मामले में ठोस कदम उठाया, सुरक्षा मामले में भी कोई समझौता नहीं किया। चारों दिशाओं में उनका नारा 'जय जवान, जय किसान' गूँज उठा। चीन युद्ध में खोए हुए आत्मसम्मान को उन्होंने पुर्नप्रतिष्ठित किया।

UNO मध्यस्थता

भारत–पाक, 1965 के युद्ध में भी हर बार की तरह एक बार फिर ब्रिटेन ने पाक के हक में फैसला सुनाया कि पाक द्वारा एक छोटा हमला, भारत द्वारा एक बड़े युद्ध में बदल दिया गया। (Russel Brines, Indo-Pak Conflict, London, 1970) पश्चिमी देश विश्व जनमत पाक के हम में करते नज़र आ रहे थे। ऐसे में सोवियत यूनियन ने हस्तक्षेप करके दोनों देशों से युद्ध विराम की पेशकश की। इसी बीच चीन ने भारत पर तिब्बत सरहद के लगायत सैन्य ठिकाने बनाने का आरोप लगाया। शास्त्री जी ने मुँहतोड़ जवाब देते हुए चीनी आरोप साबित करने के लिए पर्यवेक्षक नियुक्त करने की चुनौती दे डाली। (Foreign Affairs Records, Vol. XI, No. 6, Sept., 1965)

इस बार चूँकि दोनों महाशक्तियों का दबाव भारत और पाकिस्तान पर बन रहा था इसलिए शास्त्री जी ने UNO की मध्यस्थता स्वीकार कर ली। दोनों देश सीज़फायर के लिए तैयार हो गए तथा सैनिकों की वापसी तथा

एक–दूसरे के क्षेत्रों में घुसपैठ के क्षेत्रों से वापसी पर मंत्रणा के लिए सोवियत प्रधानमंत्री Kosygyn के ताशकंद निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। **(Priyankar Upadhyaya, Non-aligned States and India's International Conflict, New Delhi, 1992)**

ताशकंद समझौता

4 जनवरी, 1966 को पाक राष्ट्रपति अयूब खान तथा शास्त्री जी ताशकंद में युद्ध–कैदियों तथा युद्ध क्षेत्रों के वापसी इत्यादि मुद्दों पर बातचीत के पहले चक्र में प्रवेश करते हैं। लेकिन पाक द्वारा कश्मीर मुद्दा को विवादित क्षेत्र घोषित करने के विषय पर शास्त्री जी कठोरता से बातचीत स्थगित कर देते हैं। यह भाँपते हुए कि कहीं बातचीत असफल न हो जाय प्रधानमंत्री कोसीजीन द्वारा दोनों देशों के अध्यक्षों के बीच में 16 घंटे तक प्रस्ताव को लेकर मध्यस्थता करनी पड़ी तब कहीं जाकर शास्त्री जी ने सोवियत यूनियन को भारत के एक मित्र के रूप में बनाए रहने के लिए कोसीजिन के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी। परिणामस्वरूप 10 जनवरी, 1966 को ताशकंद समझौते पर दोनों नेताओं ने हस्ताक्षर कर दिया। इस समझौते के अनुसार दोनों देशों की सेनाओं को 25 फरवरी, सन् 1966 से पहले अपने उन पुराने स्थानों पर वापस लौटना था जहाँ वे लड़ाई शुरू करने के पहले थे। इसके बाद 10 जनवरी, 1966 की रात को ही शास्त्री जी को भीषण दिल का दौरा पड़ा और 11 जनवरी की सुबह वे मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। इससे पता चलता है कि वे भारी दबाव में थे।

भारतीय संसद में पहली बार पश्चिमी गुट, साम्यवादी गुट तथा कांग्रेस ने खुलकर इस समझौते का समर्थन किया। लेकिन अफसोस की बात यह थी कि पाक–भारत युद्ध के प्रति गुटनिरपेक्ष देशों का दृष्टिकोण बिल्कुल तटस्थ तथा असहानुभूतिपूर्ण था। यही स्थिति 1962 चीन आक्रमण की संध्या पर उपस्थित हुई थी। सबसे विसंगतिपूर्ण स्थिति यह थी कि जिस बांडुग और बेलग्रेड के रचयिता पं. नेहरु रहे थे उसी आन्दोलन के सदस्य या तो पाकिस्तान के पक्ष में थे या तटस्थ थे। अरब–गुटनिरपेक्ष देशों ने इस्लामिक पक्ष लेते हुए पाक का समर्थन किया। नेपाल तथा श्रीलंका ने पाक के प्रति सहानुभूति दिखाई। सिर्फ मलेशिया तथा युगोस्लाविया ने खुलकर भारत का समर्थन किया। सभी गुटनिरपेक्ष देशों की भारत–पाक युद्ध के प्रति प्रतिक्रिया अपने राष्ट्रीय हित के सुरक्षा से उपजी थी। इसलिए पाक के गुटनिरपेक्ष नहीं होते हुए भी इंडोनेशिया, नेपाल, मिस्र, स0दी अरब, टर्की जैसे देश खुलकर पाक के पक्ष में आए। **(Dr. S.B. Jain, India's Foreign Policy and Non-alignment, New Delhi, 2000, pp. 156-165)**

5.3 सारांश

शास्त्री जी इस बात के लिए विशेष रूप से याद किए जाते हैं कि उन्होंने अपने कार्यकाल में विदेश नीति को हकीकत में बदलने के लिए एक पूर्णकालिक विदेश मंत्री की नियुक्ति की। फिर सरदार स्वर्ण सिंह को प्रथम विदेश मंत्री बनाया जो एक धैर्यवान तथा कुशल राजनयिक थे। दूसरे, उन्होंने प्रधानमंत्री सचिवालय (PMO) का गठन कर विदेश मामलों के सलाहकारों की एक नई टीम जुटाई। इसके अतिरिक्त उन्होंने सामरिक एवं परमाणु विकल्प को भी खुला रखा। **(Sri L.P. Singh, India's Foreign Policy: The Shastri's Period, 1980)** अपनी यथार्थवादी विदेश नीति का परिचय देते हुए शास्त्री जी ने श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके के साथ नागरिकता विहीन प्रवासी तमिलों के बारे में शान्तिपूर्ण समाधान किया। इस सन्धि से उन्होंने भारत के छोटे पड़ोसी देशों को आश्वस्त किया कि उनके विरुद्ध भारत का कोई बलप्रयोग का इरादा नहीं है।

इकाई–6 (क) इन्दिरा कालीन विदेश नीति, 1966–1977

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 इंदिरा गाँधी कालीन विदेश नीति 1966–1977

(क) बांग्लादेश का निर्माण तथा शिमला समझौता

(ख) शिमला समझौते की आलोचना

(ग) इन्दिरा गाँधी एवं शेख अब्दुल्ला समझौता

(घ) आत्म निर्भरता एवं आत्म सुरक्षा पर बल

(ङ) भारत सोवियत मैत्री

(च) अमेरिका से तनाव पूर्ण सम्बन्ध

(छ) क्यूबा संकट

(ज) पोखरण परी

(झ) दक्षिण एशियाई एवं पड़ोसी देशों से सम्बन्ध

(ञ) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का नेतृत्व

6.5 सारांश

6.6 बोध प्रश्न

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्‌देश्य

- इन्दिरा गाँधी कालीन विदेश नीति समझना
- बांग्लादेश का निर्माण, शिमला, समझौता भारत सोवियत मंत्री, अमेरिकी सम्बन्ध, पोखरण परीक्षण दक्षिण एशियाई देशो से सम्बन्ध, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का नेतृत्व आदि को समझना

6.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री उस समय प्रधानमंत्री बने जब चीनी आक्रमण से लगे आघात को नेहरू जी सहन नहीं कर पाये ह्रदय–पक्षाघात से 27 मई 1964 को उनका देहान्त हो गया था देश में शीर्ष स्तर शून्यता उभर आयी थी नेहरू जी ने अपने जीवन के अन्तिम समय में लाल बहादुर शास्त्री को नामित कर दिये थे। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुये लाल बहादुर शास्त्री नेहरू जी के तथा जनता की उम्मीदो पर खरा उतरे थे। भारत को गरीबी के अलंकार से निकाल कर उन्होंने विकास के रास्ते पर पहुँचाया। सूखा और गरीबी से टूटते किसानों की हिफाजत था वार्डर पर लड़ रहे जवानों को हिम्मत बढ़ा कर अपना फर्ज निभाया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुटनिपेक्ष को शक्तिशाली समूह को शक्ति के रूप में तो नहीं उभर सका किन्तु शांति के क्षेत्र में लाल बहादुर शास्त्री जी के नेतृत्व में भारत की ख्याति विश्व में फैली।

6.2 इन्दिरा गाँधी कालीन विदेश नीति 1966–1977

शास्त्री जी के निधन के बाद श्रीमती इन्दिरा गान्धी कांग्रेस पार्टी नेता और देश की प्रधानमंत्री बनीं। वे कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा तथा शास्त्री जी के काल में मंत्री रह चुकी थीं।

श्रीमती गाँधी ने कुल मिलाकर 15 वर्ष तक अर्थात् सन् 1966–77 तक तथा उसके बाद सन् 1980–84 तक भारत की विदेश नीति की बागडोर सम्हाली। शास्त्री जी के नक्शे कदम पर उन्होंने विदेश मंत्रालय की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी स्वयं नहीं सम्हाला बल्कि विदेशी मामलों के जानकार वरिष्ठ सदस्यों को जैसे एम.सी. छागला, वाई.बी. चव्हाण, सरदार स्वर्ण सिंह, दिनेश सिंह आदि को इसकी जिम्मेदारी सौंपी। श्रीमती गाँधी के मार्गदर्शन और नियंत्रण में उनकी टीम द्वारा तैयार विदेश नीति का केन्द्र–बिन्दु आदर्शवाद की बजाय राजनीतिक यथार्थवाद एवं राष्ट्रीय हित थे। शास्त्री जी की ही तरह इन्दिरा जी के बारे में महिला होने, राजनीति में अनुभवहीन होने के आरोप लगते रहे जिसे जल्दी ही श्रीमती गाँधी ने अपने लौह–संकल्प से झूठ साबित कर दिया। उन्होंने अपने पिता के साथ किए विदेश यात्राओं और करीब से विदेश सम्बन्धों के प्राप्त अनुभव के आधार पर आने वाले समय में एक सशक्त विदेश नीति संचालन का परिचय दिया। (जे.एन. दीक्षित, भारतीय विदेश नीति)

इन्दिरा जी ने नेहरु जी के साथ अनेक शिष्ट मण्डलों में भाग लेकर लंदन, पेरिस, मास्को, बीजिंग तथा अन्य देशों की यात्रा की थी। साठ के दशक में वे डॉ. राधाकृष्णन की जगह यूनेस्को कार्यकारी बोर्ड में प्रतिनिधि नियुक्त हुईं। उन्होंने शीतयुद्ध, कोरियाई युद्ध, भारत–चीन युद्ध, 1965 भारत–पाक युद्ध जैसे संवेदनशील युद्धों को करीब से देखा। वे नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता से सहमत, भारत की राष्ट्रीय हित एवं सुरक्षा के प्रति कृतसंकल्प थीं। वह भारत को आत्मनिर्भर एवं मजबूत बनाना चाहती थीं। वे अमरीका एवं मित्र राष्ट्रों की ओर से भारत के प्रति प्रतिकूल रवैये के प्रति सजग थीं। वे पाक–चीन के नापाक इरादे से भलीभांति परिचित थीं। इसलिए उन्होंने सोवियत संघ तथा समाजवादी देशों के साथ सामरिक सम्बन्ध बनाए रखने को प्राथमिकता दिया। श्रीमती गाँधी की प्राथमिकताएँ निम्नलिखित थीं :–

1. मात्र विश्व शान्ति नहीं बल्कि राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा,
2. अमरीका–पाक–चीन निकटता के जवाब रूप में सोवियत सहायता लेना गुटनिरपेक्षता के अनुकूल
3. चीन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा गुटनिरपेक्षता को नया रूप देना
4. एक भूमण्डलीय भूमिका की तुलना में क्षेत्रीय विदेश नीति को प्राथमिकता देना।

उन्होंने दक्षिण एशिया में स्थिरता स्थापित करने के लिए नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, म्याँमार, श्रीलंका एवं मालदीव के साथ सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। आर्थिक सम्भावनाओं की तलाश में नवस्वतंत्र अफ्रीकी देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। इसके अलावा टीटो, नासेर, फिदेल कास्त्रो नेताओं के साथ परिचय बढ़ा कर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में प्रमुख स्थान सम्हाला। 1967 में उन्होंने अमरीका और श्रीलंका की यात्रा की। उसी वर्ष सोवियत प्रधानमंत्री कोसीजीन तथा अमरीकी राष्ट्रपति निकसन भारत यात्रा पर आए। सोवियत संघ ने रक्षा एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भारत की काफी सहायता की।

साथ ही पाकिस्तान की शत्रुता का सामना करने के लिए उन्होंने इस्लामिक देशों के साथ भी सहयोग किया तथा ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ इस्लामिक कांफ्रेंस का भी सदस्य बनीं। इज़राइल के निर्माण के बाद उसे मान्यता देने के बाद भी वे फिलीस्तीन आन्दोलन को भरपूर नैतिक, आर्थिक समर्थन देती रहीं। परन्तु आन्तरिक राजनीति में इन्दिरा जी को गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। 1967 के आम चुनाव के बाद 1969 में कांग्रेस में फूट पड़ गई तथा देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स हटाने जैसा कड़ा कदम उठाया। पूर्वी बंगाल में पाकिस्तानी अत्याचार के कारण पूर्वी बंगाली शरणार्थियों का भारत आना शुरू होना तथा आसाम और बंगाल में नक्सल आन्दोलन का शुरू होना कुछ ऐसी घटनाएँ थीं जिसके लिए इन्दिरा जी ने कठोर कार्यवाई की। 1969 से 1974 तक पाकिस्तानी राजनीति में आए घोर पतन के कारण पूर्वी पाकिस्तान मुक्ति आन्दोलन के रास्ते पर चल पड़ा। जनरल याह्या खान की सैनिक निरंकुशता से घबरा कर भारत के असम, मणिपुर, त्रिपुरा तथा पश्चिम बंगाल में नौ लाख से भी ज्यादा शरणार्थी घुए आए। इतने सारे शरणार्थियों के खर्च की आपूर्ति तथा रख–रखाव का भार भारत पर पड़ने लगा। शरणार्थी समस्या का भारत की अर्थव्यवस्था और सुरक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। भारत ने समस्या को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाने का अनेक प्रयास किया। 1970 में श्रीमती गाँधी ने UNO के महासभा के पच्चीसवें अधिवेशन में भी इस बात को उठाया, अमरीका सहायता प्राप्त करने गईं लेकिन खाली हाथ लौटकर आईं। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 100–107)

इस पूरे दुःखद घटनाक्रम में तीन बातें महत्वपूर्ण थीं –

(क) पाकिस्तान में 1958 से 1970 तक सैनिक शासन के भ्रष्टाचार से ऊबी जनता लोकतांत्रिक चुनाव चाहती थी। जुल्फिकार अली भुट्टो ने इस बात का फायदा उठाकर पाकिस्तान पापुल्स पार्टी (PPP) का गठन किया। अंततः दिसम्बर, 1970 में चुनाव हुए।

(ख) बंग्लाभाषियों पर पाकिस्तानी सेना का लगातार जुल्म ढाते रहना जिसके परिणामस्वरूप भारतीय सीमा में लगातार शरणार्थियों का प्रवेश बढ़ते जाना जिससे तंग आकर श्रीमती गाँधी ने बंगवासियों के मुक्तिआन्दोलन को समर्थन देने का निर्णय लिया। इसी बीच पूर्वी बंगाल के अवामी लीग के शेख मुजीबुर्रहमान भारी मतों से चुनाव जीत जाते हैं और बंग्लादेश सरकार अप्रत्यक्ष रूप से अस्तित्व में आ जाती है।

(ग) अमरीका के राज्य सेक्रेटरी हेनरी किसिंजर ने भारत, पाक तथा चीन की यात्रा की एवं भारत पर दबाव डाला कि वह पाक के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 100–107)

पश्चिमी देशों ने अंतर्राष्ट्रीय जनमत बनाकर भारत के विरुद्ध दुष्प्रचार किया जिसके फलस्वरूप इस मानव त्रासदी से निपटने के लिए इन्दिरा जी ने 7 अगस्त, 1971 को सोवियत संघ से हाथ मिलाकर इंडो–सोवियत शांति–मैत्री और सहयोग के समझौते पर हस्ताक्षर कर लिया। अमरीका इस संधि से नाराज़ हो उठा। राष्ट्रपति निक्सन ने बंगवासियों के मुक्तिसंग्राम को खत्म करने की मुहिम चलाई। श्रीमती गाँधी के लिए निक्सन ने उग्र तथा तिरस्कारपूर्ण रवैया अपनाया। सितम्बर–अक्टूबर, 1971 में UNO के सदस्य देशों ने मुक्ति संग्राम एवं भारत के विरुद्ध बहुमत वोट दिया लेकिन इससे डरने के बजाए श्रीमती गाँधी और दृढ़संकल्प हो गईं। श्रीमती गाँधी ने आत्म–निर्णय के सिद्धान्त का हवाला देते हुए पूर्वी बंगाल निवासियों के लिए स्वतंत्र राज्य का समर्थन किया। (Anjoo Sharan Upadhyaya, Self-determination in World Politics: Emergence of Bangladesh, Lok Bharati, Varanasi, 1984)

पश्चिम द्वारा भारत से असहयोग एवं आलोचना के पश्चात् पाक ने 3 दिसम्बर, 1971 को भारत पर आक्रमण कर दिया। बंगवासियों का मुक्तिसंग्राम भारत–पाक युद्ध में बदल गया। यह युद्ध 13 दिनों तक चला। अमरीका ने सुरक्षा परिषद् में भारत को रोकने का प्रस्ताव पेश किया जिसे सोवियत संघ ने वीटो कर दिया। पश्चिमी ताकतों और अमरीका ने खुलकर पाक की सहायता की। अमरीका ने कड़ा रुख अपनाते हुए बंगाल की खाड़ी में सातवाँ बेड़ा (Seventh Liner) भेजा। लेकिन श्रीमती गाँधी अडिग रहीं। 16 दिसम्बर, 1971 को ढाका में युद्ध समाप्त हो गया। भारत ने 5 दिसम्बर, 1971 को बांग्लादेश को मान्यता दे दी। पाकिस्तान में याहिया खान का शासन खत्म हो गया तथा भुट्टो दिसम्बर, 1971 को पाक के राष्ट्रपति तथा चीफ मार्शल लॉ एडमिनिस्ट्रेटर बन गए। भारत ने 93 हजार पाक सैनिक युद्धबन्दी बनाया।

इस युद्ध के दो सबक सामने आए –

(क) UNO ने भारत के अनुकूल वस्तुनिष्ठता के आधार पर फैसला नहीं सुनाया ठीक जैसे कश्मीर मुद्दे पर।

(ख) अंतर्राष्ट्रीय समुदाय अपने हितों को देखते हुए प्रतिक्रिया देते हैं, नैतिकता या वस्तुनिष्ठता के आधार पर नहीं। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 110)

(क) बांग्लादेश का निर्माण तथा शिमला समझौता

बंग्लादेश आज़ाद हो जाने पर, सोवियत संघ से मशविरा कर भारत ने एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर दिया क्योंकि युद्ध लम्बे समय तक जारी रखने पर सोवियत युनियन लम्बे समय तक भारत की सहायता जारी नहीं रख सकता था। 7 जनवरी, 1972 को भुट्टो ने शेख मुज़ीबुर्रहमान को रिहा कर दिया। इसका ठोस कारण था भारत से पाक युद्धबन्दियों की रिहाई और भारतीय सेना द्वारा जीती पाकिस्तान की पाँच हजार वर्गमील भूमि को वापस हासिल करना। श्रीमती गाँधी ने जल्द से जल्द युद्ध समझौता को अन्जाम देने के लिए तेज गति से ढाका, इस्लामाबाद, दिल्ली में अपने प्रख्यात सलाहकारों पी.एन. धर, पी.एन. हक्सर, टी.एन. कौल के माध्यम से संवाद चलाए जिसकी परिणति जुलाई, 1972 में शिमला में भारत–पाक शिखर वार्ता के रूप में हुई। शिमला समझौते के तीन मुख्य बिन्दु थे

1. पाकिस्तान के युद्ध बन्दियों की रिहाई।
2. पाकिस्तानी क्षेत्र से भारतीय सेना की वापसी।

3. कश्मीर मुद्दा शिमला समझौता में शामिल नहीं।

(ख) शिमला समझौते की आलोचना

शिमला समझौता में युद्ध में हारने के बावजूद पाक की स्थिति मजबूत हुई तथा इन्दिरा जी की यथार्थवादी नीति के बावजूद भारत की स्थिति कमज़ोर हुई क्योंकि भुट्टो श्रीमती गाँधी को यह समझाने में कामयाब हो गए कि जम्मू–कश्मीर में नियंत्रण रेखा पर अभी औपचारिक रूप से बात न करके, आगे के लिए खुला रखा जाय अन्यथा पाक में भुट्टो की स्थिति कमज़ोर हो जाएगी एवं फिर से सैनिक शासन हावी हो जाएगा। (पी.डी. कौशिक, भारत की विदेश नीति) अभी के लिए जम्मू कश्मीर को विवादित मुद्दा मान लिया जाय जिससे बाद में वो उस वायदे से पीछे हट गए। इस प्रकार जम्मू कश्मीर को सुलझाने का एक मजबूत मौका भारत ने खो दिया। साथ ही 480 वर्गमील भूमि छोड़ बाकी कश्मीरी भूमि पाक को वापस कर दिया गया। आलोचकों का कहना है कि युद्ध के मैदान में जो जीता गया था वह वार्ता की मेज पर हार दिया गया था। शिमला समझौते की एक उपलब्धि यह थी कि दोनों देशों ने यह वचन दिया कि कश्मीर विवाद का समाधान वे केवल द्विपक्षीय वार्ताओं के द्वारा करेंगे। (पी.एन. धर, इन्दिरा गाँधी – दी इमरजेन्सी एण्ड इण्डियन डेमोक्रेसी) इस प्रकार पुरानी नियन्त्रण रेखा (LOC) ही 40 साल बाद भी भारत–पाक सीमा बनी हुई है।

(ग) इन्दिरा गाँधी एवं शेख अब्दुल्ला समझौता

इन्दिरा जी ने कश्मीर के नेशनल कांफ्रेंस के लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला को राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया। 24 फरवरी, 1975 को कश्मीर समस्या के अन्तिम समाधान के उद्देश्य से इन्दिरा जी ने एक समझौते के तहत शेख अब्दुल्ला को कश्मीर का मुख्यमंत्री स्वीकार किया। इस समझौते में शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर को भारत का एक अंग स्वीकार किया तथा अनुच्छेद 380 सहित भारतीय संविधान को स्वीकार किया। शेख अब्दुल्ला 1975 से 1982, अपनी मृत्यु तक कश्मीर के मुख्यमंत्री रहे। (पी.डी. कौशिक, पृ. 135)

इन्दिरा काल एवं आन्तरिक नीति

इन्दिरा जी के विदेश नीति के यथार्थवादी स्वरूप को समझने के लिए उनके राष्ट्रहित एवं आन्तरिक नीति पर एक दृष्टिपात समीचीन होगा। 1971 के चुनाव में इन्दिरा गाँधी को भारी बहुमत प्राप्त हुआ जिससे उनकी राजनीतिक स्थिति काफी अच्छी हो गई। दूसरी तरफ पाक–चीन–अमरीका के बढ़ती हुई मित्रता को रोकने के लिए उनकी अगस्त, 1971 की सोवियत संघ के साथ "शान्ति, मित्रता और सहयोग" की बीस वर्षीय सन्धि रामबाण साबित हुई। इससे अमरीका एवं चीन पाक की सहायता करने से खबरदार हो गए।

इन्दिरा काल में भारतीय विदेश नीति की प्रमुखतः सात विशेषताएँ थीं –

1. आत्मनिर्भरता एवं आत्म सुरक्षा पर बल
2. भारत सोवियत मैत्री
3. अमरीका से तनावपूर्ण सम्बन्ध
4. दक्षिण एशियाई एवं पड़ोसी देशों से घनिष्ठ सम्बन्ध
5. अफ्रो–एशियाई देशों का रुझान
6. यथार्थवादी गुटनिरपेक्षता
7. राष्ट्रहित में परमाणु परीक्षण

(घ) आत्मनिर्भरता एवं आत्म सुरक्षा पर बल

नेहरु जी के विपरीत इन्दिरा जी ने आन्तरिक सुरक्षा के लिए सैनिक शक्ति एवं आर्थिक आत्म–निर्भरता को बराबर महत्व दिया। श्रीमती गाँधी की आशा थी कि नए राष्ट्र बांग्लादेश के साथ भारत की मजबूत मित्रता होगी। लेकिन इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकी। भारत–पाक में मिली सफलता के कारण इन्दिरा जी के तेवर विपक्ष के साथ कड़े होने लगे थे। बिहार का आकाल, गुजरात का छात्र आन्दोलन, रुपये का अवमूल्यन तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार के खिलाफ जयप्रकाश नारायण ने युवा आन्दोलन का आवाह्न किया जिसको अभूतपूर्व सफलता मिली। राजनीतिक

अस्थिरता के भय से उन्होंने जून, 1975 में सम्पूर्ण भारत में आपातकाल लागू कर दिया। विपक्ष के नेता जेल में डाले जाने लगे जिससे भारत की लोकतांत्रिक छवि को काफ़ी आघात पहुँचा। अंततः 1977 के आम चुनाव में श्रीमती गाँधी को हार का मुँह देखना पड़ा। (इन्दिराकालीन विदेश नीति के लिए देखें – **Indira Gandhi, India and the World, Foreign Affairs, New York, Oct, 1972)**

(ङ) भारत सोवियत मैत्री

इन्दिरा जी की यथार्थवादी विदेश नीति का प्रमाण है भारत–सोवियत मैत्री सम्बन्ध। 1968 में एक मोड़ ऐसा आया था जब अमरीका–पाक सम्बन्ध को कमजोर करने के लिए सोवियत संघ भी पाक को सहायता देने के लिए आतुर था। सोवियत मानचित्रों में भारत के कुछ सीमावर्ती क्षेत्रों को चीनी क्षेत्र के रूप में चित्रित किया गया था और सोवियत संघ अब पाकिस्तान से सम्बन्ध सुधारने के लिए प्रयत्नशील था। लेकिन पाक–चीन–अमरीका की धुरी मजबूत होते देखकर सोवियत संघ को कूटनीतिक पृथकता का सामना करना पड़ा जिसे भुनाते हुए श्रीमती गाँधी ने शरणार्थी दबाव के स्थिति में भारत की कूटनीतिक पृथकता को भारत–सोवियत मैत्री में बदल दिया। इस मित्रता के बदौलत भारत दक्षिण एशिया के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र में बदल गया। सोवियत मैत्री सम्बन्ध भारत के बहुमुखी विकास में सहायक सिद्ध हुआ। 2 अक्टूबर, 1971 को दोनों देशों ने वैज्ञानिक एवं तकनीक सहयोग के क्षेत्र में समझौता किया। नवम्बर, 1973 में ब्रेझनेव भारत आए तथा दोनों देशों के बीच व्यापार, नियोजन और वाणिज्य सम्बन्धी तीन समझौते हुए। 19 अप्रैल, 1975 को भारत ने एक सोवियत प्रक्षेपण यंत्र के माध्यम से अपना भू–उपग्रह "आर्यभट्ट" अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया। यह भारत के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

(च) अमरीका से तनावपूर्ण सम्बन्ध

भारत की स्वतंत्रता से लेकर आजतक भारत–अमरीका परस्पर मैत्री चाहते हैं, लेकिन अमरीका–सोवियत नेतृत्व के प्रतिस्पर्धा के कारण अमरीका अपना प्रभाव क्षेत्र बनाने लग जाता है जिसमें वह पाक एवं चीन के साथ इसलिए दबाव बनाता है कि वह दक्षिण एशिया में सोवियत संघ का प्रभाव कम कर सके। दूसरी तरफ अमरीका का शक्ति–सन्तुलन करने के लिए सोवियत संघ को भारत से सहयोग इसलिए सुलभ है कि पाक–चीन का आघात भारत पर निरंतर होता रहा है। इन परिस्थितियों में न चाहते हुए भी, प्रत्यक्ष शत्रुता न रहते हुए भी अमरीका तथा भारत अच्छे दोस्त नहीं रह सके हैं।

(छ) क्यूबा **संकट 1961 में भारत ने अमरीका–सोवियत संघ के बीच मध्यस्थता की थी जिससे सोवियत संघ ने भारत को दरकिनार कर पाक–चीन से दोस्ती बढ़ाने की कोशिश की। फलस्वरूप 1962 के चीनी आक्रमण की संध्या पर अमरीका ने खुलकर भारत की मदद की। अमरीका ने इसके बदले वियतनाम सम्बन्धी अपनी नीति पर भारत का समर्थन माँगा परन्तु ऐसा नहीं होने पर 1965 में भारतीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री को अमरीका ने यात्रा का निमंत्रण वापस ले लिया जो भारत का राष्ट्रीय अपमान था। (पी.डी. कौशिक, पृ. 80–82) शीघ्र ही 1965 में भारत–पाक युद्ध में पाक ने अमरीकन हथियारों का बड़े पैमाने पर भारत के विरुद्ध प्रयोग किया जिस पर अमरीका मौन रहा। एक बार पुनः 1971 भारत–पाक युद्ध में अमरीका ने बंगाल की खाड़ी में "सातवाँ बेड़ा" भेजकर भारत को भयभीत करने की कोशिश की तथा 1970 में बांग्ला शरणार्थियों के लिए खाद्यान्न सहायता मुद्दे पर इन्दिरा जी को अमरीका यात्रा पर भी असफलता प्राप्त हुई।**

(ज) पोखरण परीक्षण

इन्दिरा जी की विदेश नीति का focus "निर्णय की स्वतंत्रता" और भारत के "राष्ट्रीय हित" की ओर ज्यादा झुका हुआ था ना कि नेहरु जी की सैद्धान्तिक, वैश्विक गुटनिरपेक्षता की ओर। नेहरु जी के नेतृत्व में भारत ने 1963 में नाभिकीय परीक्षण निषेध संधि (Test Ban Treaty) पर विश्व शान्ति के आदर्श के लिए हस्ताक्षर किए थे। लेकिन इन्दिरा जी ने 1968 की परमाणु अप्रसार नियंत्रण सन्धि (N.P.T.) पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। वे सामरिक शक्ति मजबूत करने के पक्ष में थीं। 1974 में पोखरण में आणविक परीक्षण करा कर श्रीमती गाँधी ने भारत की गिनती नाभिकीय देशों के बीच करा दी। पोखरण परीक्षण राष्ट्रीय गौरव तथा राष्ट्रीय शक्ति के लिए महत्वपूर्ण साबित हुई। परमाणु विस्फोट के बल पर श्रीमती गाँधी ने चीन, पाक, सोवियत संघ तथा अमरीका से अपनी शर्तों पर सम्बन्धों में सुधार किया, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसी क्रम में उन्होंने अमरीका से दिसम्बर, 1973 पी.एल. 480 ऋण के तहत भारत की पंचवर्षीय योजना के लिए अनुदान का करार किया।

(झ) दक्षिण एशियाई एवं पड़ोसी देशों से घनिष्ठ सम्बन्ध

नेहरु शासनकाल में अमरीका, सोवियत संघ एवं चीन पर जो दृष्टि केन्द्रित थी इन्दिरा काल में वह पड़ोसी देशों, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीकन देशों की तरफ अग्रसर हुआ। नेपाल, श्रीलंका, बर्मा तथा ईरान जैसे देशों से चल रहे तनाव को इन्दिरा जी ने मैत्रीपूर्ण संधियों से दूर किया। मई, 1974 में श्रीमती गाँधी ईरान गईं तथा अक्टूबर, 1974 में ईरान के शाह भारत आए। शिमला समझौते के बाद पाक के साथ कई टूटे सम्बन्ध पुर्नस्थापित किए गए। 1976 में चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की पहल भी भारत द्वारा की गई। इन सम्बन्धों की खासियत यह थी कि यह सभी आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग पर बल देते थे जिसके फलस्वरूप इन देशों के नागरिकों में आदान–प्रदान का सिलसिला शुरू हुआ।

विदेश मंत्रालय का सशक्तिकरण

श्रीमती गाँधी ने विदेश नीति रचना के यंत्र को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। विदेश मंत्री के अलावा विदेश नीति निर्माण में विशेषज्ञों की भूमिका को बढ़ाया। एल.के. झा, जी. पार्थासारथी, बी.के. नेहरु, डी.पी. धर, पी.एन. हक्सर जैसे सक्षम सलाहकारों की उन्होंने टीम तैयार की। अन्तिम निर्णय वे स्वयं लेती थीं।

(ञ) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का नेतृत्व

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का तीसरा शिखर सम्मेलन जो 1970–71 में अफ्रीकी देश जाम्बिया की राजधानी लुसाका में हुआ, वह श्रीमती गाँधी का पहला गुटनिरपेक्ष सम्मेलन का अवसर था जिसमें उन्होंने गुटनिरपेक्षता को मजबूती से स्थापित किया। गुटनिरपेक्षता के आलोचकों को करारा जवाब देते हुए श्रीमती गाँधी ने कहा कि दुनिया को गुटनिरपेक्षता की सख्त आवश्यकता है क्योंकि विश्व विनाश की कगार पर बैठा है। वियतनाम युद्ध में प्रयोग परम्परागत तथा रासायनिक हथियारों का उन्होंने विरोध करते हुए पूर्ण निःशस्त्रीकरण के लिए महाशक्तियों को उनकी जिम्मेदारी याद दिलाई। उन्होंने हिन्द महासागर तथा डियागो गार्शिया (मॉरीशियस) को शान्ति का क्षेत्र घोषित करने के लिए महाशक्तियों पर जवाबदेही डालते हुए पूरे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को संगठित एवं एकजुट करने का आवाह्न किया। उन्होंने फिलीस्तीन, पश्चिम एशिया, दक्षिण–पूर्व एशिया का हवाला देते हुए उपनिवेशवाद, नस्लवाद एवं रंगवाद (Apartheid) को सबसे बड़ा खतरा बताया। (श्रीमती गाँधी का लुसाका सम्मेलन पर भाषण, Two Decades of Non-alignment] 1980)

उन्होंने अफ्रीकी देशों के मुद्दे को उठाते हुए गुटनिरपेक्ष देशों में आपसी आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर और स्वावलम्बन पर सबसे ज्यादा जोर दिया। उन्होंने तृतीय विश्व के देशों को उन्नत देशों की सहायता पर निर्भर रहने के बजाय आपस में द्विपक्षीय क्षेत्रीय तथा विविध–पक्षीय विकास के आधार खोजने पर बल दिया। (श्रीमती गाँधी का लुसाका सम्मेलन पर भाषण, Two Decades of Non-alignment, 1983) उन्होंने व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTAD) को भी असफल बताया। उन्होंने राजनीतिक एवं आर्थिक उपनिवेशवाद के खात्मे पर बल देते हुए पश्चिम के नव–आर्थिक–उपनिवेशवाद से खबरदार रहने के लिए गुटनिरपेक्ष मंच का आवाह्न किया। उनका अन्तिम महत्वपूर्ण प्रसार विश्व के प्रचलित सूचना व्यवस्था पर था जो दुनिया के गरीब देशों को सिर्फ अपने पैमाने से सूचना प्रदान करता था। इसलिए श्रीमती गाँधी ने एक नई वैश्विक सूचना व्यवस्था स्थापित करने पर जोर डाला। (श्रीमती गाँधी का लुसाका सम्मेलन पर भाषण, Two Decades of Non-alignment)

इस प्रकार श्रीमती गाँधी के लुसाका सम्मेलन के भाषण का एक–एक बिन्दु सम्मेलन का घोषणा पत्र बन गया तथा उनके उठाए हर मुद्दे को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने तालियों के साथ स्वीकार किया जो श्रीमती गाँधी का गुटनिरपेक्ष नेतृत्व करने में भारत की प्रतिष्ठा को पुर्नस्थापित करता है।

1974 में अफ्रीका के अल्जीरिया में आयोजित चौथे गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भी श्रीमती गाँधी ने तीसरी दुनिया की "अधूरी क्रान्ति" से अपनी बात शुरू की जिसका अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अभी तक हमें राजनीतिक स्वतंत्रता ही हासिल हुई है लेकिन जब तक आर्थिक और तकनीकी स्वतंत्रता हासिल नहीं हो जाती दुनिया से गैर–बराबरी दूर नहीं हो सकती।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के इतिहास में चौथा गुटनिरपेक्ष शिखर बैठक अल्जीयर सम्मेलन 1974 को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ (Turning Point) के रूप में माना जाता है क्योंकि इसके प्रस्तावों को UN General Assembly के छठे

विशेष सत्र में New International Economic Order (NIEO) का दर्जा दिया। तत्पश्चात् एक UN चार्टर की घोषणा हुई जिसमें दुनिया के सभी देशों का आर्थिक अधिकार एवं कर्तव्य क्या हैं? इसका उल्लेख किया गया। श्रीमती गाँधी ने पश्चिमी देशों की अंधाधुंध तकनीक दौड़ से बाहर रह कर एक बार फिर गरीब देशों का स्वावलम्बन की ओर ध्यानाकर्षण किया तथा राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी साम्राज्यवाद, प्रभुत्ववाद के खिलाफ गुटनिरपेक्ष देशों का मोर्चा खोल दिया। श्रीमती गाँधी को "सक्रिय गुटनिरपेक्षता" का मूल मंत्र देने के लिए अल्जीयर्स सम्मेलन में सम्मान के साथ व्यापक समर्थन मिला। (श्रीमती गाँधी का लुसाका सम्मेलन पर भाषण, Two Decades of Non-alignment)

श्रीमती गाँधी का गुटनिरपेक्ष को सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने "नवीन अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था" के तहत गुटनिरपेक्ष देशों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनने तथा पारस्परिक सहयोग (Mutual Cooperation) बढ़ाने के लिए नीति बनाने पर ज्यादा ज़ोर दिया बजाय कि पश्चिमी देशों के महँगे ऋणों पर निर्भर रहने के।

इसके अलावा उन्होंने दक्षिण–पूर्व एशिया के कम्बोडिया, वियतनाम तथा लाओस में महाशक्तियों के अहस्तक्षेप का पक्ष दृढ़ शब्दों में किया। हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाना, महाशक्तियों के बीच नाभिकीय हथियारों पर सीमा तय किया जाना तथा अफ्रो–एशियन देशों में उपनिवेशवाद एवं रंगभेद नीति का जोरदार शब्दों में विरोध किया। विश्व शान्ति एवं समृद्धि को किसी एक देश की समस्या न मानते हुए उन्होंने इसे समस्त विश्व की समस्या बताते हुए "सक्रिय गुटनिरपेक्षता" (Active Non-alignment) को अल्जीयर सम्मेलन का सन्देश घोषित किया। (श्रीमती गाँधी का लुसाका सम्मेलन पर भाषण, Two Decades of Non-alignment)

6.3 सारांश

श्रीमती गाँधी की गुटनिरपेक्ष विदेश नीति का सबसे अहम् मोड़ अगस्त, 1976 में कोलम्बो शिखर सम्मेलन में आया जब उनके नेतृत्व में पहली बार गुटनिरपेक्ष देशों का एक स्थाई समन्वय समिति (Co-ordinating Bureau) निर्मित हुआ। आन्दोलन की सदस्य संख्या बढ़कर 86 हो गई तथा श्रीमती गाँधी की सशक्त अध्यक्षता में एक नवीन सूचना प्रणाली (New Information Order) के लिए एक नवीन एजेन्सी की नींव रखी गई जो सूचनाओं को पश्चिमी नियंत्रण से निकाल कर क्षेत्रीय वितरण केन्द्रों को प्रदान करेगा। इस प्रकार उन्होंने पूरे विश्व को अन्तरनिर्भर बताते हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को विघटनकारी शक्तियों से सावधान रहते हुए, सम्मेलन से आन्दोलन की एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने पर विशेष जोर दिया। उन्होंने छोटे और बड़े देशों के बीच चल रहे पुराने गैर–बराबरी को मिटाकर एक नए आर्थिक एक राजनीतिक सन्तुलन को विकसित करने पर जोर दिया। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि श्रीमती गाँधी के काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में एक नई 0र्जा का संचार हुआ तथा तृतीय विश्व के देशों को गुलामी भरी आर्थिक व्यवस्था से छुटकारा पाने में श्रीमती गाँधी में एक सशक्त नेता प्राप्त हुआ। उन्होंने परमाणु क्षमता हासिल कर भारत के प्रौद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति को निश्चित दिशा प्रदान की।

इकाई–6 (ख) जनता सरकार में विदेश नीति 1977–1980

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जनता सरकार में विदेश नीति 1977–1980

(क) भारत अमेरिका सम्बन्धों में सुधार

(ख) भारत सोवियत सम्बन्ध

(ग) भारत चीन यात्रा

(घ) जनता सरकार

(ङ) अफगान मुद्दा

(च) भारत अमेरिका सम्बन्ध

(छ) भारत इग्लैण्ड सम्बन्ध

(ज) सातवाँ गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन का आयोजन

(झ) एशियाई खेलों का आयोजन

(ञ) भारत की लंका मुद्दा

6.5 सारांश

6.6 बोध प्रश्न

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

- इन्दिरा गाँधी कालीन विदेश नीति समझना
- बांग्लादेश का निर्माण, शिमला, समझौता भारत सोवियत मंत्री, अमेरिकी सम्बन्ध, पोखरण परीक्षण दक्षिण एशियाई देशो से सम्बन्ध, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का नेतृत्व आदि को समझना

6.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री उस समय प्रधानमंत्री बने जब चीनी आक्रमण से लगे आघात को नेहरू जी सहन नहीं कर पाये हृदय–पक्षाघात से 27 मई 1964 को उनका देहान्त हो गया था देश में शीर्ष स्तर शून्यता उभर आयी थी नेहरू जी ने अपने जीवन के अन्तिम समय में लाल बहादुर शास्त्री को नामित कर दिये थे। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुये लाल बहादुर शास्त्री नेहरू जी के तथा जनता की उम्मीदो पर खरा उतरे थे। भारत को गरीबी के अलंकार से निकाल कर उन्होंने विकास के रास्ते पर पहुँचाया। सूखा और गरीबी से टूटते किसानों की हिफाजत था वार्डर पर लड़ रहे जवानों को हिम्मत बढ़ा कर अपना फर्ज निभाया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुटनिपेक्ष को शक्तिशाली समूह को शक्ति के रूप में तो नहीं उभर सका किन्तु शांति के क्षेत्र में लाल बहादुर शास्त्री जी के नेतृत्व में भारत की ख्याति विश्व में फैली।

6.2 जनता सरकार में विदेश नीति 1972–1980

1975 में आपात काल लगाने के फलस्वरूप 1977 का आम चुनाव इन्दिरा जी हार गई तथा पाँच विभिन्न दलों

के संयोग से मिलकर बना जनता दल — भारतीय लोकदल, जनसंघ, कांग्रेस संगठन, समाजवादी दल एवं कांग्रेस के नेता श्री मोरार जी देसाई भारत के प्रधानमंत्री बने। मोरार जी एक रूढ़िवादी, दक्षिणपंथी राजनेता थे जिनका पश्चिमी लोकतंत्र में ज्यादा विश्वास था। विश्व परिदृश्य बदल रहा था तथा गुटनिरपेक्ष देश में कुछ शीतयुद्ध से जुड़ी सैन्य—गुट प्रणाली के पूर्ण सदस्य बन चुके थे। अमरीका, चीन तथा सोवियत संघ से भी सम्बन्ध सुधारने का प्रयास कर रहा था। नेपाल, बंग्लादेश और श्रीलंका मोरार जी से इसलिए मित्रवत सम्बन्ध चाह रहे थे क्योंकि वे श्रीमती गाँधी के विपरीत बाजार—व्यवस्था के समर्थक थे।

रिचर्ड निक्सन तथा जेराल्ड फोर्ड के दौर के बाद नौ सालों बाद भारत—अमरीका सम्बन्ध में 1977 में जिमी कार्टर के राष्ट्रपति बनने के बाद महत्वपूर्ण मोड़ आया। मोरार जी ने श्री अटल बिहारी बाजपेयी को विदेश मंत्री नियुक्त किया जो एक व्यावहारिक 'विज़न' वाले नेता माने जाते थे। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 120) मार्च, 1977 से अक्टूबर, 1979 के बीच बाजपेयी द्वारा भारत की विदेश नीति में निम्नलिखित प्रयास किए गए —

- 1979 में वाशिंगटन यात्रा।
- पाक के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए फरवरी, 1978 में पाकिस्तान यात्रा तथा मोरारजी एवं जिया—उल—हक का केन्या में अगस्त, 1978 में बातचीत होना।
- फरवरी, 1979 में बाजपेयी की चीन यात्रा।
- राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी तथा प्रधानमंत्री मोरार जी की श्रीलंका यात्रा।

(क) भारत—अमरीका सम्बन्धों में सुधार

जिमी कार्टर एक 'डिमोक्रेट' नेता थे तथा उनकी माँ लिलियन कार्टर का भारत में पुणे सेवा संस्था से सम्बन्ध रहा था। 1974 के पोखरण परीक्षण के कारण परमाणु अप्रसार नीति के तहत अमरीका ने जो प्रतिबन्ध भारत पर लगाए थे, उस तनाव को कम करने में कार्टर प्रशासन का अच्छा हाथ रहा। फिर भी तीन बिन्दुओं पर मनमुटाव बना रहा —

- मानवाधिकार का अमरीकी मानक दुनिया पर लागू कराना,
- एन.पी.टी. (N.P.T.) पर हस्ताक्षर कराना तथा इसके एवज़ में तारापुर परमाणु बिजी परियोजना के लिए सवंर्द्धित यूरेनियम उपलब्ध कराना तथा
- पाकिस्तान को आर्थिक एवं रक्षा सहायता जारी रखना।

कार्टर की जनवरी, 1978 की भारत यात्रा पर एक भारत—अमरीका संयुक्त घोषणा पत्र निकाला गया जिसे 'दिल्ली घोषणा पत्र' के रूप में जाना जाता है जिसमें लोकतंत्र एवं आर्थिक विकास के क्षेत्र में सहयोग पर बल दिया गया। इसके अलावा कार्टर ने भारत—नेपाल—बांग्लादेश—पाक के बीच नदी जल—विभाजन का एक प्रस्ताव रखा जिसे भारत ने ठुकरा दिया। तत्पश्चात् मोरार जी की वाशिंगटन यात्रा पर अमरीका तारापुर परमाणु संयंत्र के लिए संशोधित यूरेनियम देने से मुकर गया क्योंकि इससे भारत पुनः चक्रण की तकनीकी विकसित कर सकेगा जिससे भारत की परमाणु क्षमता बढ़ेगी। अन्ततः फ्रांस ने तारापुर पावर—स्टेशन के लिए सवंर्धित यूरेनियम देना स्वीकार किया। इधर उद्योग मंत्री जॉर्ज फर्नांडीज़ की समाजवादी विचारधारा के कारण प्रमुख अमरीकी निगमों (I.B.M.) तथा कोकाकोला को भारतीय आर्थिक क्षेत्र से निकाल दिया गया। इस प्रकार मोरार जी — कार्टर नज़दीकियों के बावजूद परमाणु प्रसार एवं परमाणु संयंत्रों की निगरानी को लेकर दोनों देशों में गम्भीर मतभेद बने रहे।

हालाँकि जनता पार्टी के घोषणा पत्र "विशुद्ध गुटनिरपेक्षता" (Genuine Nonalignment) तथा किसी एक महाशक्ति की ओर झुकाव को सही करने जैसी घोषणाएँ कुछ खास परिवर्तन नहीं कर पाईं बल्कि निरन्तरता एवं परिवर्तन का आंकलन करने पर प्रो. वेदप्रताप वैदिक के अनुसार, जनता सरकार को इतना समय नहीं मिला कि दीर्घकालिक विवाद सुलझाए जा सकें। जहाँ तक छोटे पड़ोसी देश हैं, उनको अत्यधिक सुविधाएँ देकर समझौता करना दीर्घकालिक राष्ट्रीय हितों के लिए हानिकारक होता है। (डॉ. वेद प्रताप वैदिक, भारतीय विदेश नीति—नए दिशा संकेत, नई दिल्ली, 1980) वास्तविकता यह थी कि "सोवियत संघ के साथ विशेष सम्बन्धों की अनिवार्यता" से जनता सरकार भी पीछे न हट सकी।

(ख) भारत–सोवियत सम्बन्ध

प्रधानमंत्री मोरार जी तथा अटल बिहारी ने अक्टूबर, 1977 में सोवियत संघ की यात्रा की। मार्च, 1979 में प्रधानमंत्री कोसीजिन भारत आए। लेकिन दोनों देशों के संयुक्त घोषणा–पत्र में दोनों देशों के राजनीतिक एवं आर्थिक भिन्नता का जिक्र किया गया फिर भी रुपया–रुबल विवाद का औचित्यपूर्ण समाधान निकल कर आया। लेकिन कम्पूचिया के हेंग सामरिन सरकार को मान्यता दिलाने की सोवियत संघ की इच्छा को भारत ने समर्थन नहीं दिया। फिर भी जनता–सरकार के कार्यकाल में सोवियत–संघ से घनिष्ठ सम्बन्धों में कोई कमी नहीं आई। आर्थिक क्षेत्र में रुपया–रुबल समाधान बाजपेयी काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

(ग) भारत–चीन यात्रा

श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने फरवरी, 1979 में चीन की सद्भावना यात्रा की। उन्होंने चीन के साथ बिना सीमा–विवाद को मुद्दा बनाए, नए सिरे से भारत–चीन सम्बन्धों की नींव डाली। इस प्रयास से भारत–चीन सम्बन्धों में सकारात्मक बदलाव आए लेकिन 1979 में वाजपेयी यात्रा के दौरान ही चीन के द्वारा वियतनाम पर आक्रमण करने के कारण उन्हें अपनी यात्रा बीच में ही रद्द कर बैरंग वापस लौटना पड़ा। यह चीन द्वारा भारत का अपमान का प्रयास था।

(घ) जनता सरकार एवं पड़ोसी–राज्य सम्बन्ध

जनता सरकार ने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने के गम्भीर प्रयास किए। भारत–पाक समझौते के दृष्टि से जनता–शासनकाल महत्वपूर्ण था। वाजपेयी तथा सूचना प्रसारण मंत्री श्री एल.के. आडवाणी ने 1978 में पाकिस्तान की यात्रा की। इससे वाणिज्य, संस्कृति और खेलकूद के क्षेत्र में परस्पर सहयोग बढ़ा। जल विभाजन पर 14 अप्रैल, 1978 को सलाल डैम के सम्बन्ध में द्विपक्षीय समझौता हुआ लेकिन कश्मीर मुद्दा ज्यों का त्यों रहा। साथ–ही–साथ पाक ने मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग से दुर्व्यवहार का मुद्दा उठा दिया तथा भारत में अस्थिरता पैदा करने के लिए, जिया–उल–हक ने सिक्खों को भड़काना शुरु कर दिया जो आगे चलकर खालिस्तान समस्या में विकसित हुआ। इसी बीच आंतरिक मतभेदों के कारण मोरार जी देसाई ने त्याग–पत्र दे दिया। बाजपेयी काल में पड़ोसी देशों से निम्नलिखित समझौते किए गए :–

- 5 नवम्बर, 1977 को भारी रियायतें देकर बांग्लादेश के साथ फरक्का समझौता किया गया।
- 17 फरवरी, 1978 करे नेपाल के साथ व्यापार एवं पारगमन की संधियाँ हुईं।
- 22 जून, 1978 को अण्डमान सागर में समुद्री सीमा का निर्धारण करने के लिए भारत, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड के बीच समझौता हुआ।
- राष्ट्रपति संजीव रेड्डी तथा मोरार जी देसाई ने श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने से भी सम्पर्क स्थापित किया लेकिन उनकी यह भविष्यवाणी कि श्रीमती गाँधी का प्रभाव अब खत्म हो गया है। यह गलत साबित हो गया जब मार्च, 1980 में वे फिर चुनाव जीतकर आ गईं।
- पश्चिम एशिया नीति के तहत फिलीस्तीन आन्दोलन का समर्थन करते हुए जनता सरकार ने इज़राइल से सम्बन्ध सुधारने पर ज़ोर दिया। आगे चलकर 1992 में यह प्रयास दोनों देशों के बीच राजनीतिक–कूटनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने में उपयोगी रहा।

आंतरिक गतिरोधों के कारण मोरार जी के इस्तीफे से जनता सरकार की छवि धूमिल हुई तथा अगस्त, 1979 से जनवरी, 1980 तक चौधरी चरण सिंह की सरकार सत्ता में आई। चरण सिंह सरकार ने पाकिस्तान को सितम्बर, 1979 के पाँचवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन हवाना में शामिल होने की अनुमति दे दी जिससे पाक को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अन्दर इस्लामिक अरब देशों से अपना पक्ष मजबूत करने का मौका मिल गया लेकिन अफसोस कि स्वयं चरण सिंह ने 1979 में हवाना सम्मेलन में उपस्थित न होकर भारत की स्थिति कमज़ोर कर दी।

दूसरी घटना जिसने चरण सिंह तथा सोवियत यूनियन के बीच गतिरोध पैदा किए वह थी दिसम्बर, 1979 में अफ़गानिस्तान में सोवियत संघ की घुसपैठ, जिसका चरण सिंह ने स्पष्ट शब्दों में विरोध किया। उन्होंने सोवियत राजदूत को यथाशीघ्र अपनी सेनाएँ हटाने का सुझाव दिया। लेकिन संयोगवश एक महीने के अन्दर ही जनवरी, 1980

में श्रीमती गाँधी आम चुनाव जीतकर प्रधानमंत्री के रूप में सत्ता में आ गई।

इस प्रकार भारतीय विदेश नीति को विषय–वस्तु में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया लेकिन जनता सरकार ने काफी अल्प समय में बहुआयामी विदेश नीति स्थापित करने की कोशिश की। विदेश मंत्री एवं विदेश मंत्रालय को महत्वपूर्ण दर्जा प्राप्त हुआ। UNO की महासभा के 32वें अधिवेशन में विदेश मंत्री के रूप में श्री बाजपेयी ने हिन्दी में सभा को सम्बोधित कर भारत की हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गौरव प्राप्त कराया।

इन्दिरा गाँधी का दूसरा कार्यकाल

जनवरी, 1980 के निर्वाचनों में इन्दिरा कांग्रेस को भारी बहुमत मिला और वे पुनः प्रधानमंत्री बनीं। अपने दूसरे कार्यकाल में श्रीमती गाँधी को गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा जो इस प्रकार हैं –

(क) अफगान संकट से निपटना।

(ख) जम्मू–कश्मीर और पंजाब में पाकिस्तान द्वारा भड़काए गए विद्रोह का सामना करना।

(ग) अमरीकी राष्ट्रपति रोनॉल्ड रीगन का बढ़ता प्रभाव तथा सोवियत राष्ट्रपति ब्रेझनेव की अस्वस्थता से उत्पन्न शक्ति असन्तुलन और शीतयुद्ध में समन्वय स्थापित करना।

(घ) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त करना तथा आन्दोलन के दो सदस्यों ईरान–इराक के बीच सैनिक–संघर्ष के बीच मध्यस्थता करना (जे.एन. दीक्षित, पृ. 135) क्योंकि ईरान के शाह से भारत के सम्बन्ध अच्छे रहे थे लेकिन आन्तरिक क्रान्ति के द्वारा शाह का तख्ता पलट जाने पर उसमें रूढ़िवादी शासन स्थापित हो गया जिसे श्रीमती गाँधी ने तुरन्त मान्यता प्रदान कर दी।

(ङ) अफगान मुद्दा

1973 से अफगान में उथल–पुथल हो रहा था। 1973 में वहाँ शाही तख्ता पलट कर गणराज्य स्थापित करने की कोशिश हुई थी। जिसके कारण वहाँ 1975 में सौर क्रान्ति आई थी। पाक तथा स0दी अरब ने इसका विरोध किया था और अमरीका के पैसे से वहाँ के समाज को आधुनिक समाज में बदलने का प्रयास किया जा रहा था। इसका जवाब सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में 1979 में अपने हस्तक्षेप के द्वारा दिया। श्रीमती गाँधी भारत–सोवियत वित्तीय, प्रौद्योगिक एवं रक्षा सम्बन्धी सम्पर्क को देखते हुए सोवियत संघ की आलोचना अहितकर मानती थीं। अपनी पश्चिम एशिया नीति के तहत तथा महाशक्तियों के नवीन शीत युद्ध के मद्दे नज़र वे नहीं चाहती थीं कि कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जिससे अमरीका पाक को सैनिक सहायता देना शुरु कर दे। श्रीमती गाँधी चाहती थीं कि सोवियत संघ ऐसा नहीं कर सकता था तथा भारत पूरी तरह सोवियत–अफगान नीति का समर्थन नहीं कर सकता था।

इस मौके पर भारत की मजबूरी का फायदा उठाकर अमरीका एवं पाक ने भारत सरकार पर यह आरोप लगाया कि भारत ने अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं नैतिकता के उसूलों के खिलाफ अफगानिस्तान में सोवियत घुसपैठ का समर्थन किया है। जबकि सच्चाई यह थी कि भारत–सोवियत संघ के परम्परागत मैत्रीपूर्ण यात्रा में श्रीमती गाँधी सोवियत संघ की एकतरफा आलोचना कर अमरीका–चीन–पाक त्रिकोण में अकेली नहीं पड़ना चाहती थीं। अमरीका 1950 से लगातार पाक का सैन्यीकरण कर रहा था। चीन ने 1960 से पाक को सहायता देना शुरु किया था। 1971 में बांग्लादेश के निर्माण के समय पाक–चीन–अमरीका काफी करीब आ गए थे। श्रीमती गाँधी यह चाहती थीं कि सोवियत सैनिक अफगानिस्तान से वापस चले जायें लेकिन वे यह नहीं चाहती थीं कि इसी बहाने अमरीका पाकिस्तान का बढ़–चढ़कर सैन्यीकरण करे।

अफगान मुद्दा अमरीका–चीन–पाक त्रिकोण के कारण एक पेचीदा शीतयुद्ध मुद्दा बनता जा रहा था जिसका प्रभाव 1986 के बाद से कश्मीर में पड़ा जो आजतक शान्त नहीं हो सका। श्रीमती गाँधी की अफगान नीति के मुख्य बिन्दु निम्न थे :–

(क) अफगानिस्तान में आधुनिकीकरण लाना आवश्यक है लेकिन राजनीतिक स्थिरता भी लाना आवश्यक है।

(ख) भारत ने अफगान क्रान्ति का समर्थन तथा सोवियत सेना का विरोध किया।

(ग) भारत ने सोवियत सेना का खुलेआम तथा एकतरफा विरोध इसलिए नहीं किया क्योंकि अमरीकी दबाव तथा उग्रवादी इस्लामिक ताकतों का संयोग दोनों ही भारत के लिए हानिकारक था।

(ग) भारत–अफगानिस्तान के घटनाक्रम में सीधा भाग नहीं लेगा लेकिन सामाजिक, आर्थिक उद्योग, हाइडिल पावर, लघु उद्योग तथा स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में सहयोग देता रहेगा।

कुल मिलाकर भारत ने अफगान समस्या पर मध्यम मार्ग अपनाया लेकिन इसमें उसे सफलता नहीं मिली। अफगानिस्तान में सोवियत समर्थित वामपंथी सरकार को भारत द्वारा समर्थन दिए जाने के कारण पाक–अमरीका–चीन तथा प्रमुख इस्लामिक देशों के बीच सम्बन्ध अधिक मजबूत हो गए परन्तु भारत–पाक शत्रुता बढ़ने लगी। 5 जून, 1980 के एक टेलीविज़न भाषण में पाक प्रशासक जिया–उल–हक ने यह स्पष्ट किया कि पाक को अपने बचाव के लिए हर कदम उठाना पड़ता है क्योंकि भारत–सोवियत रक्षा समझौते के कारण भारत भारी मात्रा में सोवियत हथियार प्राप्त करता है। श्रीमती गाँधी का भय सही निकला क्योंकि यही जाकर बाद में अमरीका–पाक द्वारा प्रशिक्षित शस्त्र अफगान मुजाहिदीनों द्वारा कश्मीर में प्रयोग होने लगे।

श्रीमती गाँधी के दूसरे कार्यकाल में भारत–पाक सम्बन्ध

श्रीमती गाँधी के दूसरे चरण में पाक मार्शल जिया–उल–हक ने भारत–पाक द्विपक्षीय तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दा जोर–शोर से उठाना शुरु कर दिया। जैसे गुटनिरपेक्ष अफगानिस्तान में महाशक्ति सोवियत संघ के सैनिक हस्तक्षेप पर भारत क्यों चुप रहा? कश्मीर मुद्दे में चीन को निमन्त्रण के साथ–साथ पंजाब मुद्दे पर सिक्खों के अलगाववादी विचारों को उकसाना, शिमला समझौते का उल्लंघन करना इत्यादि प्रमुख थे। जिया ने खालिस्तान आन्दोलन को धन देने के लिए विदेशों में बसे सिक्खों को माध्यम बनाया तथा आई.एस.आई. (I.S.I.) ने सिख अलगाववादियों को अस्त्र, सैन्य प्रशिक्षण तथा आश्रय देना शुरू कर दिया। चीन को बढ़ावा देने के लिए पाक–अधिकृत कश्मीर में खंजराब दर्रा खोल दिया गया तथा प्रमुख मार्ग कराकोरम भी चालू हो गया। इससे पाक और चीन के बीच भू–सामरिक सम्बन्ध स्थापित हो गया।

जिया ने अपने शासनकाल में परमाणु कार्यक्रम को भी बढ़ावा दिया जो भारत के लिए एक संवेदनशील मुद्दा था। जिया–उल–हक एक चालाक नेता थे जो 1971 में बांग्लादेश निर्माण का बदला लेने के लिए पंजाब तथा कश्मीर में अलगाववाद सुलगाते रहे जिसके जवाब में श्रीमती गाँधी ने जुल्फिकार अली की विधवा नुसरत भुट्टो तथा उनकी बेटी बेनज़ीर भुट्टो के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। लेकिन अन्ततः खालिस्तान आन्दोलन को शान्त करने के लिए जून, 1984 में श्रीमती गाँधी ने ऑपरेशन ब्लू स्टार (भारतीय सेना का अमृतसर गुरुद्वारे में घुसना) जैसे त्रासदी को अंजाम दे दिया जिसके फलस्वरूप 31 अक्टूबर, 1984 को श्रीमती गाँधी की हत्या कर दी गई।

(च) भारत–अमरीका सम्बन्ध

अपने द्वितीय शासनकाल में श्रीमती गाँधी ने अमरीका से सम्बन्ध सुधारने की कोशिश की। भारत को अभी भी तारापुर परमाणु बिजली परियोजना के लिए संशोधित यूरेनियम ईंधन की आवश्यकता थी और विकास कार्यक्रमों के लिए विश्व बैंक तथा मुद्रा कोष से ऋण की आवश्यकता थी। गुटनिरपेक्षता के लिए यह आवश्यक था कि भारत सिर्फ एक सोवियत उपग्रह बनकर न रहे। 25 जुलाई, 1982 को श्रीमती गाँधी 9–दिवसीय यात्रा पर नई दिल्ली से वाशिंगटन रवाना हुई। यह यात्रा 11 वर्ष बाद श्री रीगन के निमन्त्रण पर हुई जिनसे वह कैनकुन औद्योगिक तथा विकास सम्मेलन में मिल चुकी थीं। इस दौरे से दोनों पक्षों को अपनी गलतफहमियाँ दूर करने का मौका मिला। इसके अलावा अमरीका के प्रवासी भारतीयों को भी भारत–अमरीका सम्बन्ध को सौहार्द्रपूर्ण बनाने में बड़ी भूमिका थी। इस यात्रा की सफलता तब सामने आई जब अमरीका के सहयोग से फ्रांस ने तारापुर के लिए संशोधित यूरेनियम देना स्वीकार कर लिया। 27 नवम्बर, 1982 को फ्रांस के राष्ट्रपति मितरां भारत की चार दिवसीय यात्रा पर आए।

(छ) भारत–इंग्लैण्ड सम्बन्ध

पश्चिमी प्रजातांत्रिक देशों से सम्बन्ध बनाने के सिलसिले में 1982 में लन्दन में आठ महीने तक चलने वाला भारत महोत्सव 8 मार्च, 1982 को शुरु हुआ। श्रीमती गाँधी ने इस आयोजन में भाग लेने के लिए एक सप्ताह की ब्रिटेन यात्रा की। इस उत्सव के माध्यम से भारतीय कला एवं संस्कृति का पश्चिम से प्रसार किया गया। भारतीय एवं ब्रिटिश कई संस्थाओं ने मिलकर इस पर चार करोड़ रुपये खर्च किए। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए नवम्बर, 1983 को नई दिल्ली में राष्ट्रकुल सम्मेलन (Commonwealth Conference) का आयोजन हुआ जिसमें 48 देशों ने भाग लिया। इस प्रकार अमरीका तथा पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों के साथ तालमेल बैठा कर सोवियत घुसपैठ के रवैये पर भारत की चुप्पी से पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव को दूर करने का प्रयास किया गया। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 154)

1980 में भारत ने कम्पूचिया के हेंग सामरिन सरकार को मान्यता दे दी थी। भारत के इस कदम की यह कहकर आलोचना हुई थी कि यह कार्य सोवियत संघ को समर्थन देने के लिए किया गया है। इसका प्रतिकार करने के लिए श्रीमती गाँधी ने 1981 में मास्को की यात्रा रद्द कर दी तथा अगस्त, 1981 में अमरीका की यात्रा कर रीगन प्रशासन से तालमेल बैठाने की कोशिश की।

(ज) सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन का आयोजन

मार्च, 1982 में सातवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन का मेज़बान इराक था परन्तु इरान–इराक के युद्ध के कारण मार्च, 1983 में भारत ने जल्दीबाज़ी में यह सम्मेलन आयोजित किया। श्रीमती गाँधी की दूसरी पारी की विदेश नीति की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। गुटनिरपेक्ष देशों के सातवें सम्मेलन का नई दिल्ली में आयोजन करके श्रीमती गाँधी ने गुटनिरपेक्ष जगत में भारत की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। सोवियत संघ के वियतनाम, अफगानिस्तान और कम्पूचिया में हस्तक्षेप तथा अमरीका का क्यूबा, अंगोला तथा लातिन अमरीकी देशों में हस्तक्षेप से तथा गुटनिरपेक्ष देशों का आपसी संघर्ष से इसका सम्मान फीका पड़ गया था जिसे श्रीमती गाँधी ने अपनी सिंह गर्जना से वापस पटरी पर ला कर खड़ा किया। अपनी चिर–परिचित क्रान्तिकारी शैली में उन्होंने रंगभेद तथा उपनिवेशवाद के अन्तिम प्रतीकों के रूप में नामीबिया, दक्षिण अफ्रीका तथा फिलीस्तीन को स्वतंत्रता संघर्ष पर डटे रहने के लिए आवाज़ उठाई। उनकी दूसरी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की चिन्ता थी दुनिया के छोटे–बड़े सभी देशों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने का अवसर प्रदान करना। इस उद्देश्य से उन्होंने सम्मेलन को तत्काल एक ऐसा सुनियोजित कार्यक्रम बनाने पर ज़ोर दिया जिसके द्वारा नव–विकासशील देश कृषि, सिंचाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, वनस्पति, अनुसंधान, तकनीकी, प्रशिक्षण, छोटे उद्योग एवं संचार सुविधा के क्षेत्र में एक–दूसरे की सहायता कर सकें। (श्रीमती गाँधी ने 26 सितम्बर, 1983 को न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र–संघ (UNO) के उद्घाटन भाषण में तथा विश्व शान्ति का मुद्दा उल्लेख किया था।) (Seventh NAM Summit, Selected Documents, Vol. II, Indian Institute of Non-aligned Studies, New Delhi, 1984) उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि UNO आम सभा के आयोजित होने वाले UNCTAD के छठवें सत्र तथा मुद्रा और वित्तीय विकास के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इस योजना पर अनुकरण करने का विचार किया जाय। अपने ओजस्वी भाषण में उन्होंने अन्न, 0र्जा, ऋण प्रक्रिया, औद्योगीकरण तथा वित्तीय सहायता को गतिशील बनाने के लिए IMF तथा विश्व बैंक (World Bank) के पुनर्गठन की भी माँग उठाई। (India's Foreign Policy, Harchanran Singh, Josh, New Delhi, 1996)

उपरोक्त माँगें ही आगे चलकर दक्षेस (SAARC), ASEAN से सहयोग तथा नरसिम्हा राव की Looking East Policy में तब्दील हुईं। इसके अलावा श्रीमती गाँधी ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को, जो 1979 में हवाना सम्मेलन के दौरान अनावश्यक रूप से सोवियत संघ की ओर झुक गया था, उसे निकाल कर उसे सीधी धुरी पर खड़ा कर दिया। इसके फलस्वरूप आन्दोलन पुनः अमरीका और सोवियत संघ के बीच समान दूरी पर स्थापित हो गया।

विदेश नीति की दृष्टि से एक और सकारात्मक परिवर्तन का उन्होंने द्वार तब खोला जब उन्होंने गुटनिरपेक्ष देशों को अपने द्विपक्षीय मुद्दों को शान्तिपूर्वक गुटनिरपेक्ष मंच से सुलझाने का समर्थन किया। चूँकि ईरान–ईराक युद्ध के कारण गुटनिरपेक्ष देशों का अन्तर्राष्ट्रीय जगत में काफी उपहास बन रहा था, श्रीमती गाँधी ने ईरान–ईराक को अपना मुद्दा आपस में सुलझाने का अनुरोध किया। वे निरस्त्रीकरण तथा हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र (Zone of Peace) बनाने के लिए कृत संकल्प थीं।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि श्रीमती गाँधी ने कमज़ोर पड़ते गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में एक नई जान फूँकी। उन्होंने विदेश नीति को सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का साधन न मानकर राष्ट्रहित को साधने का माध्यम बनाया। दूसरे शब्दों में अत्यन्त आदर्शवादी होने के बजाय वे एक यथार्थवादी नेता साबित हुईं।

(झ) एशियाई खेलों का आयोजन

नवम्बर, 1982 में श्रीमती गाँधी ने दिल्ली में एशियाई सम्मेलनों का शानदार आयोजन कर भारत की आन्तरिक क्षमता एवं आत्मविश्वास का प्रदर्शन कर एक नए ढंग से अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास किया जहाँ लगभग सभी एशियाई देशों की सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ।

(ञ) भारत–श्रीलंका मुद्दा

अपने दक्षिण–दक्षिण संवाद (South-South-Dialogue) को बढ़ावा देने के लिए श्रीमती गाँधी ने "आसियान" ग्रुप को प्राथमिकता दी तथा श्रीलंका से संघर्ष मिटाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। जुलाई, 1983 में तमिल दंगे भड़क उठे थे। लगभग तीन लाख तमिल शरणार्थी भारत आ गए। अमरीका–पाक–इज़राइल के साथ श्रीलंका द्वारा विकसित सुरक्षा सम्बन्धों के कारण यह नितान्त आवश्यक हो गया था कि भारत–श्रीलंका मामले में दखल दे।

अमरीका ने पाक को भारत के खिलाफ एक 'फ्रंट–लाइन स्टेट' बना लिया जिससे सोवियत–अफगानिस्तान के गतिविधियों पर नज़र रखा जा सके। चीन से मिलकर पाक ने नेपाल तथा बांग्लादेश में भी भारत के खिलाफ भावना भड़काई। फिर अमरीका तथा पाक ने श्रीलंका में तमिल समस्या का फायदा उठाते हुए भारत के विरुद्ध सामरिक दबाव डालना शुरु कर दिया। जयवर्धने श्रीमती गाँधी के विरोधी थे इसलिए उन्होंने अमरीका–पाक और इज़राइल के साथ खुफिया सम्पर्क कर भारतीय तमिल को भड़काना शुरु किया। हिन्दी भाषा विवाद पर तमिलनाडु पहले भी भारत से अलग होने की धमकी दे चुका था। इसलिए श्रीमती गाँधी को तमिल के समर्थन का रास्ता चुनना पड़ा। भारत के सामरिक हितों को पाक–अमरीका–इज़राइल से खतरे को देखते हुए श्रीमती गाँधी ने विदेश मंत्री नरसिम्हा राव तथा जी. पार्थसारथी को विशेष दूत बनाकर श्रीलंका भेजा। श्रीमती गाँधी ने यह संदेश दिया कि भारत श्रीलंका का बँटवारा नहीं चाहता लेकिन श्रीलंका तथा तमिल नागरिकों के बीच मध्यस्थता को तैयार है। श्रीमती गाँधी ने पंजाब तथा कश्मीर में पाक–चीन–अमरीका की तिकड़ी की रुचि जानते हुए यह स्पष्ट उत्तर दिया कि श्रीलंका को अपनी समस्या स्वयं सुलझानी चाहिए।

भारत द्वारा सुलह करवाने के प्रयासों में सफलता भी मिली। भारत–श्रीलंका के बीच एक "हस्तांतरण पैकेज" पर सहमति हो गई लेकिन जयवर्धने बौद्ध धर्म पुरोहित तथा विरोधी नेताओं की आड़ लेकर स्वयं इन प्रस्तावों से पीछे हट गए। (जे.एन. दीक्षित, पृ. 160–161) पाक को पंजाब एवं जम्मू कश्मीर में विघटनकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने से रोकने के लिए, श्रीलंका मामले में श्रीमती गाँधी ने बहुत संयम से काम लिया लेकिन अमृतसर मन्दिर में ऑपरेशन ब्लू स्टार के एवज में 31 अक्टूबर, 1984 को श्रीमती गाँधी को, तथा सात साल बाद श्रीलंकाई तमिल मुद्दे पर श्री राजीव गाँधी को, बड़ी निर्ममता पूर्ण हिंसा में अपनी जान गँवानी पड़ी।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि श्रीमती गाँधी की दूसरी पारी की उपलब्धियों ने देश का मान–सम्मान काफी ऊँचा उठाया। गुटनिरपेक्षता में जान–फूँककर उन्होंने इसे एक बहुपक्षीय आन्दोलन बना दिया था। नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) के क्षेत्र में उन्होंने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। छोटे एवं गरीब अफ्रो–एशियाई देशों को साथ जोड़ कर उन्होंने खाद्यान्न, कृषि, ऊर्जा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए दक्षिण–पूर्व एशिया तथा दक्षिण–दक्षिण संवाद पर बल दिया तथा क्षेत्रीय स्तर पर अपनी समस्याओं के निवारण का मार्ग अपनाया। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में अस्त्रों की होड़ रोकने के साथ–साथ उन्होंने ऊर्जा एवं शान्तिप्रिय क्षेत्रों में भारत को परमाणु सम्पन्न बनाया तो दुनिया आश्चर्यचकित रह गई।

6.3 सारांश

इस बात को विद्वानों को अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि श्रीमती गाँधी ने सिर्फ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर विदेश नीति के क्षेत्र में एक बहुपक्षीय अध्याय जोड़ा। इसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद ही वैश्विक भाईचारा में एक नया उभार आया। मिखाइल गोर्बाच्योव सोवियत संघ में राजनीतिक खुलेपन एवं आर्थिक परिवर्तन (Glasnost and Perestroika) की बात करने लगे थे। इससे शीत–युद्ध के रणनीति में कमी आने लगी। निरस्त्रीकरण, परमाणु अप्रसार, अन्तरनिर्भरता, मानवाधिकार तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे नए मुद्दे लोकप्रिय होने लगे थे। शीत युद्धों के तनावों में कमी आने लगी थी। क्षेत्रीय समुदाय आसियान, सार्क, दक्षिण–दक्षिण संवाद उभर कर आने लगे थे। लेकिन साथ ही पाकिस्तान ने परमाणु बम तैयार करने के लिए एड़ी–चोटी एक कर दिया जो आगे चलकर बाजपेयी सरकार द्वारा 1998 में पोखरण–2 के रूप में परीक्षित किया गया। जिसके जवाब में पाक ने गोरी–1 के रूप में नाभिकीय विस्फोट किया। कुल मिलाकर श्रीमती गाँधी की दूसरी पारी विदेश नीति अत्यन्त सक्षम एवं सफल सिद्ध हुई। उन्होंने नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, नवीन अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था, अफ्रो–एशियाई देशों का स्वावलम्बन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के लोकतांत्रिकण के लिए भरपूर प्रयास किया।

6.4 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न – स्वतंत्रता पूर्व भारतीय विदेश नीति

टिप्पणी

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश नीति निर्माण के प्रमुख तत्त्व क्या–क्या थे?
2. स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय कांग्रेस विदेश–नीति निर्माण में कब–कब और किस प्रकार से योगदान दिया? घटनाओं का उल्लेख करें।
3. वर्ष 1920–45 के दौरान भारतीय विदेश–नीति में किन विचारधाराओं का संघर्ष चल रहा था?
4. द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भारतीय नेताओं एवं पण्डित नेहरु ने भारतीय विदेश नीति को क्या दृष्टि दी?

बोध प्रश्न – स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय विदेश नीति

टिप्पणी

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने कौन सी नीति अपनाई? इसके प्रमुण कर्णधार कौन थे?
2. भारत के विदेश नीति निर्माण में नेहरु जी का क्या योगदान था?
3. पंचशील सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? व्याख्या करें।
4. पंडित नेहरु के गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त एवं गुटनिरपेक्ष आन्दोलन पर प्रकाश डालें।
5. नेहरु जी के शासनकाल में भारतीय विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य क्या था?
6. नेहरु जी के वृहत्तर एशियाई अफ्रीकी देशों के स्वतंत्रता संग्राम के प्रति क्या दृष्टि थी?
7. नेहरु जी की विदेश–नीति पर कौन से प्रमुख विचारधाराओं का प्रभाव था?
8. चीनी आक्रमण के संदर्भ में नेहरु जी की विदेश–नीति की क्या दुर्बलताएँ थीं?
9. भारत–पाक विभाजन के बाद नेहरु जी की आन्तरिक सामरिक नीति अंतर्राष्ट्रीय नीति की तुलना में दुर्बल थी। टिप्पणी कीजिए।

बोध प्रश्न – शास्त्री कालीन भारतीय विदेश नीति

टिप्पणी

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. शास्त्री जी की विदेश–नीति की प्रमुख चुनौतियाँ क्या थीं?
2. नेहरु जी तथा शास्त्री जी की विदेश–नीति के अन्तर स्पष्ट करें।
3. शास्त्री जी के डेढ़ साल के विदेश–नीति का आकलन करें।

4. श्रीमती गाँधी एवं पं. नेहरु की विदेश–नीति में प्रमुख अन्तर स्पष्ट करें।

5. श्रीमती गाँधी ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त को यथार्थपरक बना दिया। टिप्पणी करें।

6. बाँग्लादेश के निर्माण में भारत की भूमिका?

7. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को श्रीमती गाँधी के योगदान की चर्चा करें।

बोध प्रश्न – जनता सरकार

टिप्पणी

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. 1977–1980 तक जनता शासनकाल में भारत की विदेश–नीति में क्या परिवर्तन आए?

2. मोरार जी शासनकाल में गुटनिरपेक्ष का पलड़ा किधर झुका था?

3. चौधरी चरण सिंह शासन–काल में भारतीय विदेश–नीति की अफगान नीति क्या थी?

4. श्रीमती गाँधी की परमाणु–नीति तथा जनता काल की परमाणु नीति की तुलना करें।

5. श्रीमती गाँधी के दूसरे कार्य–काल में महाशक्तियों से क्या सम्बन्ध थे?

6. श्रीमती गाँधी के दूसरे कार्य–काल में उनकी विदेश–नीति की विशेषताएँ क्या थीं?

शब्दावली

आत्मनिर्णय का सिद्धान्त	–	Theory of Self-determination
साम्राज्यवाद–उपनिवेशवाद	–	Imperialism-Colonialism
सह–समृद्धि का क्षेत्र	–	Co-prosperity sphere
अफीम का युद्ध	–	Opium War
आदर्शवाद / यथार्थवाद	–	Idealism/Realism/Pragmation
विश्वदृष्टि	–	Worldview
पृथकवाद	–	Isolationism
उदारवादी–अंतर्राष्ट्रवाद	–	Liberal-Internationalism
लोकतांत्रिक–समाजवाद	–	Democratic-Socialism
नवीन विश्व–आर्थिक व्यवस्था	–	New International Economic Order (NIEO)
नवीन अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था	–	New International Information Order (NIIO)
सैनिक आधार क्षेत्र	–	Military base
संयुक्त राष्ट्र संघ	–	UNO

गुटनिरपेक्षता	–	Non-alignment
गुटनिरपेक्ष आन्दोलन	–	Non-aligned Movement
सक्रिय गुटनिरपेक्षता	–	Active Nonalignment
विशुद्ध गुटनिरपेक्षता	–	Genuine Nonalignment
भारत महोत्सव	–	India Festival
दक्षिण–दक्षिण संवाद	–	South-south Dialogue
दक्षिण–पूर्व दृष्टि	–	Looking East Policy
नस्लवाद	–	Racism
रंगभेद	–	Apartheid Policy
शान्ति का क्षेत्र	–	Zone of Peace (मॉरीशस में डिगो–गॉर्शिया)
परमाणु–मुक्त क्षेत्र	–	Nuclear-free-Zone
शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व	–	Peaceful Co-existence
उपग्रह	–	Satellite

सारांश

भारत की विदेश–नीति के विभिन्न आयामों का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि परतंत्रता के काल से लेकर स्वतंत्रता के काल तक भारत अनेकानेक जटिलताओं से गुजरा जिसके मद्देनज़र पं. नेहरु के नेतृत्व में गुटनिरपेक्षता की नीति का वरण करना ही भारत के लिए समीचीन था। दो विश्वयुद्धों के बाद जिस प्रकार दुनिया दो महाशक्तियों में बँटा हुआ था, वैसे में हजारों सालों की गुलामी से नए–नए उबरे भारत को फिर से एक सैनिक गुट का उपग्रह देश बनाना तर्कसम्मत नहीं था।

नेहरु जी ने भारत को तो उबारा ही साथ ही एशिया अफ्रीका के अन्य गुलाम देशों को भी स्वतंत्र रहने का यह मार्ग दिखाया। अकेले रहकर महाशक्तियों का विरोध भारत के लिए कठिन होता लेकिन जब गुटनिरपेक्षता की विचारधारा अफ्रो–एशियाई देशों को भी सार्थक प्रतीत हुई तो उनके सहयोग से यह एक अंतर्राष्ट्रीय आन्दोलन बन गया। यह विचार प्रारम्भ में विशुद्ध रूप से नेहरु जी के दिमाग की उपज थी जिसे श्री वी.के. कृष्ण मेनन के सहयोग से उन्होंने एक अवधारणा का रूप दिया। लेकिन दोनों महाशक्तियों द्वारा यह अवधारणा घोर आलोचना का पात्र बना तथा नेहरु जी को दोनों महाशक्तियों से पृथकता एवं कठोर आक्षेप सहना पड़ा। लेकिन आगे चलकर यही नीति दुनिया के 150 राष्ट्रों द्वारा अपनाई गई और विश्व–शान्ति के लिए कारगर नुस्खा बन गई।

नेहरु जी के जीवनकाल में स्वेज़ संकट, कोरिया, कोन्गो, हंगरी, क्यूबन संकट जैसे अवसर आए जिनमें नेहरु जी ने महाशक्तियों के बीच निष्पक्षता से समाधान सुझाया और विश्वशान्ति स्थापित करने की दिशा में एक के बाद एक कदम उठाते चले गए। हाँ, कश्मीर एवं चीनी आक्रमण ने अवश्य ही नेहरु–नीति को कमजोर किया लेकिन उन्होंने भारत को महाशक्तियों का अखाड़ा बनने से काफी हद तक रोक लिया और इससे भी बढ़कर यह कि वे भारत के लिए अमरीका एवं सोवियत संघ दोनों से शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तकनीक विकास प्राप्त करने में सफल रहे। उनके पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री तथा श्रीमती गाँधी ने भी दृढ़ता से गुटनिरपेक्ष नीति का पालन किया तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को दिशा प्रदान की। शास्त्री जी के काल से ही भारत की विदेश–नीति यथार्थवाद की ओर मुड़ चुकी थी। 1965 के भारत–पाक युद्ध में उन्होंने पाकिस्तान को करारा जवाब देते हुए द्विपक्षीय मुद्दे भारत–पाक युद्ध को भी

गुटनिरपेक्ष मंच से उठाया जिसका अनुकरण श्रीमती गाँधी ने नई दिल्ली गुटनिरपेक्ष सम्मेलन 1983 में इरान–ईराक युद्ध के मुद्दे को उठाकर किया। 1977–1980 की जनता सरकार ने भी मात्र शब्दावली परिवर्तन के अलावा भारतीय विदेश–नीति के मूल तत्त्व महाशक्तियों के बीच गुटनिरपेक्षता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। जनता सरकार के विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 1971 भारत–पाक–बांग्लादेश युद्ध के अवसर पर श्रीमती गाँधी की सराहना करते हुए उनके द्वारा उठाए गए कदम को न्यायोचित ठहराया था। खालिस गुटनिरपेक्षता (Genuine Nonalignment) की वकालत के बावजूद जनता सरकार के विदेश–मंत्री के रूप में श्री बाजपेयी ने गुटनिरपेक्षता के नीति का पालन करते हुए जनता सरकार की नीति को निरंतरता एवं परिवर्तन का समन्वय बताया था।

जनता सरकार ने गुटनिरपेक्षता के साथ–साथ पड़ोसी देशों के साथ भी सम्पर्क बढ़ाया, तो श्रीमती गाँधी ने अपनी दूसरी पारी 1980–84 में पड़ोसी देशों से घनिष्ठता के साथ–साथ भारतीय विदेश नीति को अफ्रीकी देशों से जोड़कर, क्रान्तिकारी तथा बहुआयामी (NIEO तथा NIIO) की सौगात दिया। विश्व–आर्थिक संरचना को बदलने का उन्होंने लगातार प्रयास किया। भारत की गुटनिरपेक्षता शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, विश्व–शान्ति, निरस्त्रीकरण, परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण प्रयोग, स्वावलम्बन तथा राष्ट्रीय विकास के दृष्टि से काफी सफल रही।

बोध प्रश्नों के उत्तर–स्वतंत्रता पूर्व भारतीय विदेश नीति

1. स्वतंत्रता से पूर्व भारत की विदेश–नीति निर्माण में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कई प्रकार के तत्व शामिल थे। अरब, मुगल, यूरोपियन तथा ब्रिटिश हुकूमतों से भारत का सदियों पुराना सम्पर्क। निम्न तत्त्व संक्षेप में लिखें – 1857 का विद्रोह, धार्मिक पुनर्जागरण, पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव, आर्थिक एवं यातायात विकास – दो विश्वयुद्ध तथा राष्ट्रवाद का विकास

2. 1885 में भारतीय कांग्रेस के स्थापना के कारण।

   – दोनों विश्वयुद्धों में भारतीय कांग्रेस की भूमिका।

   – प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल होने के कारण

   – 1921 के बाद विदेशी मुद्दों पर कांग्रेसी दृष्टिकोण

   – भारतीय कांग्रेस द्वारा विदेश विभाग की स्थापना।

3. नरम दल–गरम दल विचारों का संघर्ष 1920–1945

   – द्वितीय युद्ध–काल में भारतीय नीति के वैचारिक संघर्ष

   – उन स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका जिन्होंने बलिदान एवं क्रान्ति का बिगुल फूँका।

4. भारतीय नेताओं तथा नेहरु जी ने भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा शान्ति एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का मार्ग अपनाया। महाशक्ति की सैन्य–गुटों से दूरी बनाना तथा एक स्वतंत्र–गुटनिरपेक्ष दृष्टि का विकास करना।

बोध प्रश्न – स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय विदेश नीति

1. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने गुटनिरपेक्षता को विदेश–नीति के साधन के रूप में अपनाया।

   – साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध किया।

   – भारत का बहुलवादी जनमानस, बौद्ध–जैन शान्ति की संस्कृति, गाँधी जी का योगदान तथा नेहरु जी की अंतर्राष्ट्रीय सतर्कता का परिणाम है गुटनिरपेक्षता।

2. गुटनिरपेक्षता की नीति–निर्माण में नेहरु जी की विदेशी शिक्षा और अनुभव तथा भारत के जटिल सामाजिक समस्याओं जैसे गरीबी, अशिक्षा, अविकास का निदान पाना ही उनकी विदेश–नीति का उद्देश्य था। साथ ही भारत के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा तथा आदर्श स्थापित करने की महत्वाकांक्षा। अफ्रो–एशियाई देशों को साथ लेकर चलना तथा एशियाई जनमानस (Pan Asianism) की भावना तैयार करने में अथक प्रयास।

3. भारत के निकटतम पड़ोसी चीन जो कि जनसंख्या तथा आकार में बहुत ही बड़ा था, तालमेल बैठाना तथा एक मित्र राज्य के रूप में चीन का ह्रदय परिवर्तन करना। स्वयं गुटनिरपेक्ष होने के नाते चीन के साम्यवादी

सरकार को पक्ष में करना तथा पाकिस्तान तथा चीन को एक न होने देना – वे प्राथमिकताएँ थीं जिनके संदर्भ में नेहरु जी ने भारत और चीन के बीच पंचशील के सिद्धान्त का निरुपण किया।

4. राष्ट्रनिर्माण और विकास की गतिविधियों को बिना अवरोध के प्रगति करने के लिए नेहरु जी ने भारत की विदेश–नीति के तौर पर गुटनिरपेक्षता को ग्रहण किया। लेकिन इसको एक मजबूत आधार प्रदान करने के लिए उन्होंने इसमें दुनिया के हर गरीब, पिछड़े एवं गुलाम देश को सदस्यता के लिए प्रोत्साहित किया जिसके परिणामस्वरूप प्रारम्भ में एशिया–अफ्रीका के अनेक देशों ने सैन्य–गुटों की सदस्यता से किनारा करके गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का सदस्य बनने में अपनी रुचि दिखाई। इस प्रकार गुटनिरपेक्षता, एक देश की नीति से, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की नीति बन गई।

5. नेहरु जी के शासन–काल में भारतीय विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य था गुटनिरपेक्ष रहते हुए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सकारात्मक योगदान देना। विकास के मार्ग तलाशना तथा दोनों सैन्य–गुटों से सहयोग तथा सहायता का मार्ग खुला रखना, आक्रमण नहीं करना तथा विश्व–शान्ति स्थापित करने के लिए अथक प्रयास करना।

6. नेहरु जी विश्व शान्ति स्थापित करने का स्वप्न देखते थे इसलिए वे सिर्फ भारत की विदेश–नीति से ही संतुष्ट नहीं थे बल्कि उनके विचार से एशिया–अफ्रीका के सभी देश गुट–निरपेक्ष रहकर तीसरा विश्व युद्ध होने से रोक सकते थे। उन्होंने अनेक अफ्रो–एशियाई देशों का भ्रमण किया तथा इन्डोनेशिया की डच शक्ति से आज़ादी के लिए नई दिल्ली कांफ्रेंस ऑन इन्डोनेशिया का 1949 में आयोजन किया था। इसके पहले दुनिया के दबे–कुचले देशों के सम्मेलन, ब्रुसेल्स में उन्होंने 1927 में भाग लिया था तथा 1947 में पहली बाद नई दिल्ली एशियन रिलेशन्स सम्मेलन आयोजित किया जिसमें उन्हें बड़ी सफलता हासिल हुई। वे साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ एक एशियाई जनमास (Pan Asianism) का मंच तैयार करना चाह रहे थे लेकिन चीन के बढ़ते आक्रमणकारी नीति के कारण उन्होंने यह विचार त्याग दिया।

7. नेहरु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा उन्होंने अनेक देशों में शिक्षा पाई थी तथा जन–आन्दोलनों को देखा था। इसलिए उनकी दृष्टि पर एक तरफ पश्चिम के उदारवादी नीति का प्रभाव था तो दूसरी तरफ सोवियत संघ के सफल साम्यवादी प्रयोगों का प्रभाव था तो तीसरी तरफ वे भारत की संस्कृति के भी कायल थे। लिहाजा उन्होंने भारत के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली को अपनाते हुए पूँजीपति–समाजवादी तथा लोकतांत्रिक दोनों ही विचारों को ग्रहण किया, फलस्वरूप देश में एक लोकतांत्रिक–समाजवादी व्यवस्था उभर कर आई और यही विचारधारा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समाजवाद एवं पूँजीवाद के बीच समदूरी (Equidistance) अर्थात् गुटनिरपेक्षता के रूप में स्थापित हुई।

8. नेहरु जी ने तिब्बत में चीन के बढ़ते हुए कदम, चीन द्वारा दलाई लामा को निर्वासित करने का कदम, तथा पाकिस्तान–चीन की साँठ–गाँठ की नीति को अध्ययन करने के बाद, भारत–चीन के बीच पंचशील नीति की स्थापना की जिससे भविष्य में चीन को उग्र होने से रोका जा सके। लेकिन नेहरु जी इसमें असफल रहे क्योंकि वे भारत को एक एशियाई ताकत के रूप में भी स्थापित करना चाहते थे, लेकिन चीन भारत के वर्चस्व को स्वीकार नहीं करना चाहता था। फिर भी नेहरु जी का यह सोचना कि चीनी साम्यवादी सरकार को सबसे पहले मान्यता देने, UNO में चीन की सदस्यता के लिए पक्ष लेने तथा सुरक्षा परिषद् में चीन के पक्ष में अपनी सदस्यता का दावा छोड़ देने से, चीन को मित्र बनाया जा सकता है, यह उनके चीन–नीति की दुर्बलताएँ थीं।

9. भारत–पाक विभाजन के बाद नेहरु जी का सारा ध्यान विदेश नीति के व्यापक उद्देश्यों से था। आदर्शवाद, विकासवाद एवं विश्व–शान्ति की चिन्ता में वे भारत की सामरिक चिन्ता तब भूल गए जबकि विभाजन के समय साम्प्रदायिक दंगों से सारा देश हिल गया था। स्वतंत्रता के 3 महीने के अन्दर ही पाक–कबाइलीयों द्वारा हमला यह इंगित करता है कि भारत छोटे से आक्रमण को भी झेलने की सामरिक तैयारी नहीं रखता था।

बोध प्रश्न – शास्त्री कालीन भारतीय विदेश नीति

1. 1964 की दुर्भिक्ष के कारण जब देश में खाद्यान्न की भयानक कमी आ गई थी तथा 1962 के चीन–आक्रमण के बाद भारत अत्यन्त कमज़ोर पड़ गया था, पंडित नेहरु का मानसिक बल कमजोर पड़ गया था, तब शास्त्री

जी ने देश की कमान संभाली थी। शास्त्री जी को खाद्यान्न समस्या, पाक–चीन गुटबन्दी की समस्या, चीनी आक्रमण के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में कमजोर पड़े भारत की छवि की समस्या तथा अन्ततः 1965 नवम्बर में पाक आक्रमण की चुनौतियों का सामना करना पड़ा था।

2. नेहरु जी आदर्शवादी तथा अंतर्राष्ट्रीय हित के चिन्तक थे, शास्त्री जी यथार्थवादी तथा राष्ट्रवादी हित के चिन्तक थे। नेहरु जी का विदेशों पर प्रभाव था लेकिन शास्त्री जी भारत की आन्तरिक समस्याओं को ज्यादा गहराई से जानते थे।

3. शास्त्री जी ने डेढ़ साल की विदेश नीति में "जय जवान, जय किसान" नारे के द्वारा देश की प्रजा का मनोबल बढ़ाने एवं सैनिकों के टूटते साहस को पुनर्जीवित करने का साहसिक कार्य किया गया। उन्होंने 1962 की चीन से करारी हार को पाक–हार में बदल कर भारत के गौरव को पुर्नप्रतिष्ठित किया। चीन को भी पाकिस्तान की मदद करने से खबरदार कर दिया। उन्होंने कृषि सम्पन्नता एवं सुरक्षा के मामले में कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने खाद्यान्न समस्या तथा बेरोजगारी की समस्या से निबटने के लिए कृषि और सिंचाई पर काफी ज़ोर दिया।

4. नेहरु जी की नीति गुटनिरपेक्षता के आदर्श को बहुत महत्व प्रदान करती थी। साथ ही उनका दृष्टिकोण उनके लम्बे अनुभव के कारण व्यापक था। उन्होंने यह पाया कि राष्ट्रनिर्माण के लिए पश्चिमी देशों से बिना सहायता प्राप्त किए, भारत में शिक्षा एवं औद्योगीकरण की राह मुश्किल होगी। इसलिए उन्होंने महाशक्तियों के बीच समान दूरी बनाई लेकिन वे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से तटस्थ नहीं रहे। श्रीमती गाँधी ने नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता के आदर्श के ऊँचाइयों से लाकर यथार्थ के धरातल पर खड़ा किया। उन्होंने सिर्फ महाशक्तियों पर निर्भर न रह कर 15 वर्ष इण्डो–सोवियत संधि 1971 अगस्त में की, परमाणु परीक्षण पर भी ज़ोर दिया, दक्षिण–दक्षिण संवाद का सिलसिला शुरु किया तथा अफ्रीकी देशों से मिलकर परम्परागत आर्थिक व्यवस्था को नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) में परिवर्तित करने का सफल प्रयास किया।

5. श्रीमती गाँधी ने आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बन लाने के लिए पड़ोसी देशों को सहयोग करने में सहायता दी। पाक–चीन द्वारा सुलगाई खालिस्तान की आग को बुझाया, बाँग्लादेश का सृजन किया, पोखरण परीक्षण कर निडर बनी रहीं। NIEO तथा NIIO का सृजन कराया, द्विपक्षीय विवादों को सुलझाने में पहले कदम उठाया तथा आन्तरिक अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण, गरीबी हटाओ योजना तथा परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता इत्यादि नए कार्यक्रम शुरु किए।

6. पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान जिसकी आबादी बंगाली थी, उन पर पाक सरकार के ज़ुल्म ढाने के फलस्वरुप भारत में पूर्वी पाक से आए रिफ्यूजी बांग्लादेश निर्माण का कारण बने। जब बंगाली शरणार्थियों की संख्या आसान तथा बंगाल में नौ लाख से भी पर पहुँच गई तब श्रीमती गाँधी ने बांग्लादेश के मुक्तिवाहिनी को सैनिक समर्थन देकर बांग्लादेश सृजन करने का निर्णय लिया।

7. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को श्रीमती गाँधी ने वास्तव में किसी भी गुट के प्रति ज्यादा झुकने से बचाया। आन्दोलन में फिर से सदस्य देशों का विश्वास जमाया। UNO की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करने के लिए तृतीय विश्व के सदस्य राष्ट्रों को संगठित किया। अल्जीयर सम्मेलन, 1976 के श्रीमती गाँधी का भाषण UNO के UNCTAD के छठवें अधिवेशन की आर्थिक नीति को प्रभावित करने में सफल रहा। उन्होंने दुनिया के आर्थिक व्यवस्था और सूचना व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए UNO के मंच से तृतीय विश्व के लोगों को संगठित किया।

बोध प्रश्न – जनता सरकार

1. जनता सरकार 1977–1980 के दौरान भारतीय विदेश–नीति का मुख्य तत्व गुटनिरपेक्षता ही रहा। उसके साथ कोई छेड़–छाड़ नहीं की गई। लेकिन जनता सरकार विदेश मंत्री श्री बाजपेयी ने भारतीय विदेश–नीति को "विशुद्ध गुटनिरपेक्ष" का नाम दिया। वे श्रीमती गाँधी के शासनकाल में सोवियत यूनियन से आए निकटता के अलावा जनता शासनकाल में भारतीय विदेश–नीति का एक बहुआयामी स्वरूप प्रस्तुत किया, जिसके तहत उन्होंने अमरीका, चीन तथा पड़ोसी देशों से सम्बन्ध सुधारने का मार्ग खोला।

2. मोरार जी देसाई रूढ़िवादी तथा दक्षिणपंथी थे। उन्होंने भारत का पलड़ा अमरीका की ओर झुका दिया।

भारत–अमरीका समझौता जनता एवं कार्टर प्रशासन की देन है। जनता काल में मोरार जी तथा बाजपेयी ने अमरीका की यात्रा की तथा जिमी कार्टर ने 1977 में भारत की यात्रा की।

3. एक ही साल के अन्दर जनता शासन में मोरार जी ने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया तथा चौधरी चरण सिंह ने कुर्सी सम्हाली, लेकिन उन्होंने भी गुटनिरपेक्ष नीति को तोड़ने–मरोड़ने का प्रयास नहीं किया। इस काल के दो प्रमुख घटनाएँ सोवियत संघ का अफगानिस्तान में हस्तक्षेप तथा 1979 का हवाना गुटनिरपेक्ष सम्मेलन–दोनों के प्रति चौधरी चरण सिंह का रुख स्पष्ट था। विदेश–नीति में ज्यादा दखल न रखने के कारण उन्होंने हवाना सम्मेलन में सहभागिता नहीं की तथा भारत के दरवाज़े पर महाशक्तियों के युद्ध के खतरे को रोकने के लिए उन्होंने स्पष्ट रूप से सोवियत संघ को अफगानिस्तान से अपनी सेना हटा लेने का आग्रह किया।

4. जनता काल में भारत सरकार परमाणु कार्यक्रम को जारी रखने के पक्ष में थी तथा NPT एवं CTBT पर हस्ताक्षर करने का पूरा विरोध किया। लेकिन अंत में अमरीका के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए श्री बाजपेयी CTBT पर हस्ताक्षर करने के पक्ष में हो गए। जबकि श्रीमती गाँधी ने शान्तिपूर्ण प्रयोगों के लिए तथा राष्ट्रहित में 0र्जा के स्त्रोत को बढ़ाने के लिए परमाणु कार्यक्रम जारी रखने की नीति अपनायी। वे चीन, पाक तथा पश्चिम देशों के दबाव में बिल्कुल भी नहीं आई। जनता काल को परमाणु नीति आगे बढ़ाने का समय नहीं मिला जबकि श्रीमती गाँधी ने अपने दोनों पारियों में निरस्त्रीकरण, शान्ति का क्षेत्र, नीति अपनाने के बावजूद अपने परमाणु कार्यक्रम से पीछे नहीं हटीं।

5. श्रीमती गाँधी के दूसरे कार्यकाल में कम से कम समय में, ज्यादा से ज्यादा देशों से सम्पर्क बनाकर भारत के लिए नए दोस्त पैदा करना तथा पड़ोसियों से शत्रुता कम करना विदेश–नीति का लक्ष्य था। श्रीमती गाँधी ने अपने पहले काल में मित्र बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार एक महाशक्ति सोवियत संघ से मित्रवत रहते हुए उन्होंने दूसरी महाशक्ति अमरीका से सम्बन्ध बढ़ाया। रिपब्लिकन पार्टी के राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के साथ वार्ता के लिए श्रीमती गाँधी ने मास्को यात्रा रद्द कर दी। वे 11 वर्षों बाद जुलाई 1981 को अमरीका यात्रा पर गईं। श्रीमती गाँधी मात्र सोवियत संघ के उपग्रह के रूप में भारत को देखना नहीं चाहती थीं। उन्होंने सोवियत संघ के अफगान–हस्तक्षेप का समर्थन नहीं किया तथा दिल्ली–वाशिंगटन सम्बन्ध सुधारने के लिए उन्होंने वरिष्ठ भारतीय राजनयिकों जैसे वी.के. नेहरु, जी. पार्थ सारथी को वाशिंगटन भेजा। अक्तूबर, 1981 में श्रीमती गाँधी ने मेक्सिको के कैनकुन में विश्व आर्थिक सम्मेलन में राष्ट्रपति रीगन से द्विपक्षीय वार्ता की जिससे भारत–अमरीका सम्बन्ध में नया मोड़ आ गया।

6. श्रीमती गाँधी की दूसरी पारी के शासनकाल में भारतीय विदेश–नीति की निम्न विशेषताएँ –

i) छोटे पड़ोसी देशों से सम्बन्धों में सुधार लाना,

ii) दक्षिण–एशियाई क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक विकासका आधार तलाशना। दक्षिण–दक्षिण संवाद को बढ़ावा।

iii) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को पुर्नजीवन प्रदान करना। अफ्रीकी देशों से मिलकर UNO के आर्थिक पुनर्रचना का प्रयास करना।

iv) अफ्रो–एशियाई देशों का UNO में एक सशक्त लॉबी तैयार करना।

v) 1982–एशियाई खेल, 1983 गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन, 1983 कॉमनवेल्थ शिखर सम्मेलनों द्वारा सक्रिय गुटनिरपेक्ष नीति की स्थापना।

vi) अमरीका तथा सोवियत संघ से बराबर की दूरी (Equidistance) की नीति अपनाना।

vii) आसियान (Association of South-East Asian Nations) से सम्पर्क शुरु करना एवं खाड़ी देशों से सम्बन्ध स्थापित करना।

viii) श्रीलंकाई तमिल, भारतीय तमिल एवं भारत में श्रीलंकाई तमिल शरणार्थी के आगमन से अपने समस्या को भारतीय विदेश मंत्री श्री नरसिम्हा राव एवं श्री जी. पार्थसारथी को श्रीलंका भेजकर यह संदेश

भेजा कि भारत श्रीलंका का कतई बँटवारा नहीं चाहता। बल्कि वह इसे श्रीलंका का आंतरिक मामला समझता है। उन्होंने भारत–श्रीलंका में जयवर्धने के साथ हस्तांतरण पैकेज पर भी सहमति बनाई। कुल मिला कर 1980–1984 अक्टूबर के चार साल की अवधि में श्रीमती गाँधी की विदेश–नीति काफी गतिशील एवं महत्वपूर्ण रही।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

* भारतीय विदेश नीति, जे.एन. दीक्षित, नई दिल्ली, 1999
* Two Decades of Non-alignment – Documents of the Gatherings of Non-aligned Countries, 1961-1982, Ministry of External Affairs, New Delhi, 1983
* Michael Brecher, The New States of Africa: A Political Analysis, London, 1963
* G.H. Jansen, Afro Asian and Non-aligned, London, 1966
* K.P. Karunakaran, Outside the Contest, New Delhi, 1963
* Rikhi Jaipal, Nonalignment: Origins, Growth and Potentials for World Peace, New Delhi, 1983
* भारतीय विदेश नीतिः नये आयाम, पुष्पेश तंत तथा श्रीपाल जैन, मेरठ, 1994
* भारतीय विदेश नीति, यू. आर. घई, जालन्धर, 1991
* अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, बी.एल. फड़िया, आगरा, 1996
* भारत की विदेश नीति, पी.डी. कौशिक, 2001
* India's Foreign Policy and Non-alignment, S.B. Jain, New Delhi, 2000
* India and the Non-aligned Summits: Belgrade to Jakarta, Renu Srivastava, New Delhi, 1995
* समकालीन भारतीय विदेश नीति, शीला ओझा, जयपुर, 2005

इकाई–7 भारत और भूटान संबंध

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 भारत–भूटान संबंध

7.3.1 ऐतिहासिक पृष्टभूमि

7.3.2 आर्थिक सहयोग

7.3.2.1 पंचवर्षीय योजनाओं मे सहयोग

7.3.2.2 द्विपक्षीय व्यापार

7.3.2.3 पन बिजली परियोजनाओं में सहयोग

7.3.2.4 रेल मार्गों के विकास में सहयोग

7.3.3 राजनैतिक सहयोग

7.3.3.1 राजनैतिक नेतृत्व के बीच सांमजस्य

7.3.3.2 मित्रता व सहयोग की संधियां

7.3.3.3 अर्न्तराष्ट्रीय मंचो पर सहयोग

7.3.4 सामरिक सहयोग

7.3.5 शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सहयोग

7.3.5.1 शैक्षणिक आदान प्रदान

7.3.5.2 भारत–भूटान फाऊँडेशन

7.3.5.3 भूटान में भारतीय समुदाय

7.3.6 चुनौतियाँ एवं भविष्य

7.4 सारांश

7.5 प्रश्नावली

7.6 सन्दर्भ सूची

7.1 प्रस्तावना

भारत व भूटान पड़ोसी राज्य है अतः दोनों के मध्य संबंध अनिवार्य है। दोनों राज्यो की सांझी सीमा के साथ–साथ भूटान की भू–सामरिक स्थिति इस प्रकार से है कि यह भारत की विदेश नीति का अत्यन्त संवेदनशील पहलू बन गया है। ऐतिहासिक रूप से भी अग्रंजी साम्राज्य के अधिन भारत व भूटान के मध्य संबंधों के महत्व व निरन्तरता को देखा जा सकता है। भूटान की भू–बद्ध स्थिति भी इसे भारत हेतु एक महत्वपूर्ण राज्य की स्थिति मे स्थापित कर देता है। दोनों देशों के मध्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सामरिक धरातल पर भी एक दूसरे के पूरक के रूप में देखा जा सकता है। समसामयिक संदर्भ में भूटान में आये आन्तरिक बदलावों एवं भूमण्डलीकरण के दौर में ऊपजी बाध्यताओं के कारण भी दोनों के मध्य गहन संबंध बन पड़े हैं। अतः भारत की पड़ोस नीति के सामान्य संदर्भ में तथा भारत–भूटान द्विपक्षीय संबंधो के विशेष संदर्भ में दोनों देशों के मध्य संबंधों का अध्ययन न केवल आवश्यक अपितु अनिवार्य बन गया है। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं संबंधों के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करेंगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को भारत की पड़ोसियों से संबंध के बाद में अवगत कराना है। इसके साथ भारत व भूटान के मध्य द्विपक्षीय संबंधों की समीक्षा करना है। इस विश्लेषण के अर्न्तगत भारत व भूटान के सामरिक, राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक संबंधो की विस्तृत जानकारी प्रदान करना है। दोनों देशों के मध्य शीतयुद्धोन्तर विश्व में आये बदलावों के परिणामस्वरूप पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन करना है। इन संबंधों के अध्ययन के द्वारा दोनों देशों के मध्य परस्पर हितों की बाध्यताएं एवं एक दूसरे के पूरक होने की क्षमताओं का अध्ययन करना भी है। इसके अतिरिक्त दोनों देशों के मध्य स्थापित चुनौतियों का भी विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करना है। उपरोक्त सम्पूर्ण अध्ययन के माध्यम से दोनों देशों के भविष्य की सम्भावनाओं पर भी प्रकाश डालना है।

7.3 भारत–भूटान संबंध

7.3.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत व भूटान के संबंध भारत में अंग्रेजी विरासत से जुड़े हुए हैं। स्वतन्त्र भारत का भूटान से संबंधों क इतिहास अंग्रेजी काल की दो प्रमुख संधियों से जुड़ा हुआ हैं। सन् 1865 में ब्रिटिश सरकार व भूटान के मध्य हुई सिनचुला की संधि को दोनों देशों के मध्य संबंधों का आधार माना जा सकता है। बाद में सन् 1910 की पूनरवा की संधि के द्वारा इन संबंधों ने और सुदृढ़ता प्राप्त की। स्वतन्त्र भारत में दोनों के संबंधों के ढ़ाचे के रूप मे 4 अगस्त 1949 की "चिरस्थाई शांति व मित्रता" के आश्वासन वाली द्विपक्षीय संधि को माना जा सकता है। इस सन्धि के द्वारा दोनों देशों के मध्य मित्रता एवं सुरक्षा संबंधों को प्रगाढ़ करने के प्रयास किए गए। इस सन्धि में प्रावधान किए गए कि भूटान अपने विदेशिक मामलों के निर्वाहन हेतु भारत सरकार से मार्ग दर्शन प्राप्त करेगा। इसके साथ–साथ भूटान बाह्य स्त्रोतों से हथियारों की खरीद भारत की संतुष्टि के बाद ही कर सकेगा। इस प्रकार के प्रावधान द्वारा दोनों के मध्य सुरक्षा को सुदृढ़ करने हेतु किए गए। वर्तमान में बदली हुई आन्तरिक व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिणामस्वरूप पुरानी सन्धि का स्थान 8 फरवरी 2007 की नई सन्धि ने ले लिया। इसके माध्यम से आज दोनों देश एक दूसरे के "मित्रतापूर्वक सहयोगी" की संज्ञा वाले राष्ट्र बन गए है। इस प्रकार 19वीं सदी की अंग्रेजी सन्धि तक का दोनों का सफर मित्रतापूर्ण व सहयोगी राष्ट्र का रहा है। इसी वजह से दोनों के संबंधों को एक क्षेत्रीय शक्ति व छोटे राज्य के मध्य आदर्श संबंधों वाले राज्यों की संज्ञा दी जाती है। इस स्थिति का स्पष्ट चित्रण दोनों के विविध पहलूओं के सहयोग के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट होगा, जो निम्न प्रकार से है:–

7.3.2 आर्थिक सहयोग

भारत–भूटान आर्थिक संबंध दोनों देशों के बीच विविध प्रकार के सहयोग से स्पष्ट होता है। दोनों देशों के मध्य निम्न क्षेत्रों मे हुए आदान प्रदान के आधार पर घनिष्ट आर्थिक संबंध विकसित हूए है:–

7.3.2.1 पंचवर्षीय योजनाओं मे सहयोग

प्रारम्भ से लेकर आज तक भारत ने भूटान की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में बहुत उदार रूप से आर्थिक सहायता प्रदान की है। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगा कि भारत के उदार आर्थिक सहयोग के अभाव में भूटान द्वारा इन योजनाओं को सफल बनाना मुश्किल ही नहीं अपितु नामुमकिन था। भारत ने भूटान की सनृ 1961 में प्रारम्भ पंचवर्षीय योजना हेतू 17.22 करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह राशि बढ़ाकर 20 करोड़ रुपये कर दी गई। तृतीय पंचवर्षीय योजना मे इसे और बढ़ाकर 33 करोड़ रुपये कर दिया गया। मूलतः पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं मे यह राशि भूटान की योजनाओं का 100 प्रतिशत था। तृतीय योजना में भारत ने स्वयं के अतिरिक्त बाकि धन राशि विश्व बैंक एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से एकत्रित करने मे सहायता प्रदान की। आने वाली योजनाओं हेतु भी भारत का सहयोग जारी रहा। उदाहरणस्वरूप भारत ने भूटान की छटी पंचवर्षीय योजना हेतु 3000 मिलियन रुपये तथा सातवीं पंचवर्षीय हेतु 7500 मिलियन रुपये का अंशदान दिया। वर्तमान में 2013 में समाप्त दसवीं पंचवर्षीय योजना हेतु भारत ने भूटान को 5000 करोड़ रुपये से भी अधिक धन राशि प्रदान की। इस समय भूटान की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2013–2018) में भी इस प्रकार का सहयोग जारी रखते हूए भारत भूटान को लगभग 45 बिलियन रुपये का अनुदान देगा, जिसमे से 40 विभिन्न प्रोजेक्ट हेतु 818.53 करोड़

रुपये तथा 59 छोटे विकास योजनाओं हेतु 183.53 करोड़ रुपये खर्च किए जायेगें।

इस प्रकार भूटान के विकास व आधुनिकीकरण हेतु भारत ने संचार, मूलभूत ढ़ांचे, पनबिजली परियोजना, तेल भण्डारण, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, कृषि, खनिज उत्पादन, शक्ति, लघु उद्योग आदि क्षेत्रों में भरपूर सहायता उपलब्ध कराई है। भारत ने अभी डीयांग मे पेट्रोल भण्डारण हेतु एक परियोजना हेतु भूटान को आर्थिक मदद दी है। भारत की ही आर्थिक मदद से चलाई जा रही 'दन्तक' योजना के अर्न्तगत भारत भूटान मे सड़क निर्माण, पारो हवाई अड्डे को माइक्रोवेव से दुनिया से जोड़ना, रेडियो स्टेशन, चुखा परियोजना, स्वस्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं आदि हेतु धन उपलब्ध करा रहा है। सन् 1993 में भारत ने भूटान को कुटीचु पनबिजली योजना हेतु 2500 मिलियन पोंड की आर्थिक सहायता दी थी। 'दन्तक योजना' राशि भी 100 मिलियन पौंड से बढ़ाकर 250 मिलियन पौंड कर दी थी। सन् 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी यात्रा के दौरान 793.5 मिलियन पौंड की भारतीय सहायता राशि से बने सर्वोच्य न्यायलय के भवन का उद्‌घाटन किया। समय–समय पर दोनों देशों के मध्य हुए द्विपक्षीय समझौतों के अर्न्तगत भी भूटान की काफी धनराशि दी गई है। उदाहरण स्वरूप सन् 1949 की संधि के अर्न्तगत वार्षिक रूप से 5 लाख रुपये राशि देना आरम्भ किया। सन् 1959 मे फिर 15 करोड़ की राशि जलगांव से पारो व थिम्पू तक सड़क निर्माण हेतु प्रदान की। सन् 1960 मे पूर्व स्वीकृत 5 लाख वार्षिक राशि का बढाकर 7 लाख रुपये कर दिया गया था। भूटान–पश्चिमी बंगाल सीमा पर निर्मित जलढ़ाका बिजली परियोजना हेतु भी भारत ने भूटान को 5 करोड़ की राशि अनुगृहित की थी। वर्तमान पंचवर्षीय योजना (2013–2018) के अर्न्तगत भारत ने भूटान हेतु एक विशेष उधार व्यवस्था (स्टैंडबाई क्रेडिट फेसिलीटी) के रूप में 1000 करोड़ रुपये की उपलब्धता न होने पर प्रयोग करने की व्यवस्था की है। इस धन राशि पर विशेष छूट के रूप में केवल 5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज देना पड़ेगा तथा यह 5 वर्षों तक मान्य रहेगी।

7.3.2.2 द्विपक्षीय व्यापार

भारत विकास हेतु ही नही बल्कि व्यापार के लिए भी भूटान का एक प्रमुख केन्द्र है। दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार संबन्धित समझौते की शुरूआत सन् 1972 से हुई। सन 2006 में दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार के समझौते को अगले 10 वर्षों हेतु पुनः नवीनीकृत कर दिया गया है।

दोनों देशों के बीच आयात–निर्यात की व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप से कारगार है। भूटान इस श्रृखंला में भारत को प्रमुख रूप से बिजली, फेरो–ऐलोए, कारबाईड, बार एवं रोड़, ताम्बे की तारें, डोलामाईट, जिप्सम, कृषि उत्पाद आदि निर्यात करता है। भारत भूटान को मुख्य रूप से हाई स्पीड डीजल, फेरेस उत्पाद, मोटर स्प्रीट, हवाई जहाज पेट्रोल, ताम्बे की तारें, चावल, चारकोल, पम्पस, मशीनरी, कोयला, सोया तेल, दुग्ध पा0डर आदि निर्यात करता है।

भूटान की भू–बद्धता को ध्यान मे रखते हुए भारत ने इसे कई सीमाक्षेत्रों से भारत व अन्य देशों के साथ (हवाई व जलमार्गों) से व्यापार करने की सुविधा प्रदान की हुई है। मुख्य रूप से भारत ने भूटान को व्यापार हेतु निम्न 16 सीमाक्षेत्रों से व्यापार की सुविधाएं प्रदान की हूई है– जलगांव, चामुर्ची, उल्टा पानी, हाथीसर, दरंगा, कोलकत्ता, हल्दिया, धूबरी, रक्सौल, पानीटंकी, धगराबंद, फूलबारी, डावकी, नई दिल्ली, चैन्नई, एवं मुम्बई। इनमे से कोलकत्ता, हल्दिया, चैन्नई व मुम्बई समुद्री व्यापार मार्ग है। रक्सौल रेलमार्ग है। नई दिल्ली, चैन्नई, मुम्बई एवं कोलकत्ता हवाई मार्ग है तथा बाकि सभी सड़क व्यापार मार्ग है। इनके अतिरिक्त सन् 2011 में भारत सरकार ने पश्चिमी बंगाल व आसाम तक व्यापार हेतु आगम/निर्गम मार्ग भी खोल दिए है– अप्पर खोगला व बीपारा (पश्चिमी बंगाल मे) बोकाजुली व रंगपानी (आसाम में)। इसके अतिरिक्त भूटान के औद्योगिक क्षेत्रों से जोड़ने के दो मार्ग भी खोल दिए है। इस प्रकार भारत भूटान को न केवल यहां बल्कि अन्य देशों के साथ भी व्यापार करने हेतु उपयुक्त अवसर प्रदान करता है।

दोनों देशों के मध्य व्यापार यद्यपि बहुत अधिक मात्रा मे नही है, परन्तु फिर भी निरन्तर अग्रसर हो रहा है। दोनों देशों के मध्य बढ़ते व्यापार की स्थिति निम्न तालिका (9.1) से स्पष्ट हो जाती है–

तालिका 9.1

<u>भारत–भूटान द्विपक्षीय व्यापार, 2007–2012</u>

(बिलियन रुपये में)

क्रमांक	वर्ष	आयात	निर्यात	कुल व्यापार
1	2007	22.72	15.09	37.81
2	2008	21.48	17.33	38.81
3	2009	20.50	22.33	43.83
4	2010	26.00	29.30	55.30
5	2011	26.40	35.20	61.60
6	2012	26.60	41.70	68.30

7.3.2.3 पन बिजली परियोजनाओं में सहयोग

भारत व भूटान के बीच उर्जा विकास एक महत्वपूर्ण पहलू है। दोनों देशों के मध्य पनबिजली परियोजानाओं मे सहयोग एक महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में स्थित है। इसीलिए भारत ने प्रारम्भ से ही भूटान मे पनबिजली सयन्त्र लगाने को प्राथमिकता दी है। इससे जहां एक ओर भूटान अपने निर्यात देय राशि उपलब्ध कराने मे सक्षम बनेगा वहीं भारत अपनी जरूरत हेतु बड़ी मात्रा में बिजली की पूर्ति करने में सफल होगा। भूटान मे आज भारत की आर्थिक सहायता से तीन प्रमुख पनबिजली परियोजनायें–तल्ला पनबिजली परियोजना (1029 मैगावाट), चुखा पनबिजली परियोजना (336 मैगावाट) तथा कुरिचु पनबिजली परियोजना (60 मैगावाट)–कार्यरत है। इसके अतिरिक्त दोनों देशों के बीच 10 अन्य इसी प्रकार की परियोजनाओं पर सहमति हो चुकी है। इन 10 परियोजनाओं मे से तीन पर कार्य शुरू हो गया है। वे हैं – पुनातसंगचु–1, पनातसंगचु–11 एवं मेंगुदेचु। बाकि सात में से छः–खोलांग्चु, बुनाखा, अमोचु, चमखारचु–1, वांग्चु एवं संकोश–परियोजनाओं को स्वीकृति मिल चुकी है। सातवीं परियोजना–कुरी–गोंगदी–की जिम्मेवारी वापको कम्पनी को दे दी गई है। इसके अतिरिक्त दोनों देशों के मध्य अन्य चार परियोजनाओं पर भी अन्तः सरकारों की सहमति बन गई है। से चार परियोजनाएं हैं–खोलोंग्चु, वांग्चु, बुनाखा एवं चमरवारचु। भारत के तत्कालिन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपनी मई 2009 की यात्रा के दौरान न केवल तल्ला पनबिजली परियोजना को भूटान को समर्पित किया बल्कि दो नई परियोजनाओं–पुनातसनगेहू एवं मंगदेचू को भी स्वीकृति प्रदान की। इसके साथ–साथ चार अन्य परियोजनाओं की रिपोर्ट को भी स्वीकृति प्रदान कर दी। सन् 2014 में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भूटान यात्रा के दौरान खोलांग्चु पनबिजली परियोजना का शिलान्यास किया जो भारत की एस.जे.बी.एन.एल तथा भूटान के सार्वजनिक उपक्रम ड्रूक ग्रीन पॉवर कोरपोरेशन के संयुक्त उद्यम के अर्न्तगत बन रहा है। उपरोक्त परियोजनाओं द्वारा भूटान अनुमानतः सन् 2020 तक लगभग 5000 मैगावाट बिजली निर्यात करने मे सक्षम हो जायेगा। सन् 2014 की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की यात्रा के दौरान यह लक्ष्य बढ़ा कर 10,000 मैगावाट तय किया गया है। इससे भारत एवं भूटान के संबंधों के और घनिष्ट होंगे, क्योंकि भारत जैसी उभरती शक्ति को भविष्य में उर्जा की अत्याधिक आवश्यकता पड़ेगी जिसके लिए शुद्ध उर्जा स्त्रोत के रूप में भूटान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

7.3.2.4 रेल मार्गो के विकास में सहयोग

भारत ने भूटान मे रेल मार्गों के विकास के माध्यम से जहां एक ओर भूटान में सीमावर्ती इलाकों में ढांचागत स्थिति में सुधार किया वहीं दूसरी ओर भारत व भूटान के बीच आवागमन को सरल बनाकर दोनों देशों के सीमावर्ती क्षेत्रों को जोड़ने का काम किया है। सन् 2005 में दोनों देशों के मध्य पांच प्रमुख रेलमार्गों के विकास पर सहमति बन गई थी। ये पांच रेलमार्ग है– (i) 18 किलोमीटर लम्बा इसीमाए से फुर्टसोलीन तक, (ii) 70 किलोमीटर लम्बा कोकराझार से ग्लेफू तक, (iii) 40 किलोमीटर लम्बा पाथसाला से नंगलाम तक, (iv) 60 किलोमीटर लम्बा रांगला से

दांरगा होते हुए समदरुपजोंखर तक तथा (V) 16 किलोमीटर लम्बा बनारहार से सामत्से तक। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपनी सन् 2009 की यात्रा के दौरान भूटान में हाशीमार से फूतसोलिंग तक गोल्डन जुबली रेल लाईन निर्माण की भी धोषणा की। अतः दोनों देशों में बढ़ता रेललाईन निर्माण इनके भावी संबंधों को सुदृढ़ता प्रदान करेगा।

7.3.3 राजनैतिक सहयोग

भारत व भूटान राजनैतिक रूप से दोनों देशों के मध्य सहयोग का अनुठा उदाहरण है, क्योंकि दोनों के संबंधों मे मुश्किल से ही किसी मुद्दे पर राजनैतिक मतभेद रहा है। इनका अनुठा सहयोग निम्न क्षेत्रों में संबंधों से परिलक्षित होता है–

7.3.3.1.राजनैतिक नेतृत्व के बीच सामंजस्य

दोनों देशों के नेताओं ने एक दूसरे को समझने हेतु परस्पर देशों की समय–समय पर की गई यात्राओं द्वारा नेतृत्व के बीच समझ उत्पन्न करने को काम किया है। भारत प्रारम्भ से ही भूटान के महत्व को समझता था, इसीलिए आजादी के प्रारम्भिक वर्षों मे जवाहारलाल नेहरू ने सन् 1958 में भूटान की यात्रा की। इसी प्रकार सन् 1967 मे भूटान के महाराजा ने भारत की यात्रा की। सन् 1970 में भारत के राष्ट्रपति वी.वी. गिरी व विदेश मंत्री दिनेश सिंह ने भूटान की यात्रा की। सन् 1978 में भूटान के नरेश ने नई दिल्ली की यात्रा की। दोनों के संबंधों को अति मधुर बनाने के दृष्टि से कुछ–कुछ समय बाद भारत के नेतृत्व द्वारा उच्च स्तरीय यात्राएं की गई। इनमे प्रमुख रूप से भारत के विभिन्न प्रधानमंत्रियों की सद्भावना यात्राओं को सम्मिलित किया जा सकता है– राजीव गांधी (1985), नरसिम्हा राव (1993), मनमोहन सिंह (2009) एवं नरेंन्द्र मोदी (2014)। इसी प्रकार की उच्च स्तरीय यात्राएं भूटान के राजा व नरेश द्वारा अलग–अलग समय पर की गई। इन यात्राओं से दोनों देशों के नेतृत्व द्वारा परस्पर दृष्टिकोण एवं हितों को समझने का मौका मिला तथा दोनों देशों के बीच किसी प्रकार की गलतफहमियों को जन्म देने से दूर रखा।

7.3.3.2 मित्रता व सहयोग की संधियां

दोनों देशों के मध्य संबंधों को समझने हेतु दोनों के बीच हुई मित्रता व सहयोग की सन्धियों के ढ़ांचागत प्रारूप से समझा जा सकता है। दोनों राज्यों के मध्य प्रथम सन् 1949 में संधि हुई जिसे बाद मे 2007 में संशोधित रूप मे संधि की गई, जिन्होंने दोनों के संबंधों को मधुर बनाया। दोनों देशों के मध्य पहली संधि 8 अगस्त 1949 को हुई जिसके आधार पर दोनों ने परस्पर मित्रता एवं सहयोग के साथ–साथ एक दूसरे के मामले में हस्ताक्षेप न करने पर स्वीकृति दी। लेकिन इस सन्धि के माध्यम से भूटान ने अपने रक्षा एवं विदेश मामलों हेतु भारत के मार्गदर्शन को स्वीकार किया। इस संधि के द्वारा दोनों देशों ने परस्पर मुक्त व्यापार एवं अपराधियों को एक दूसरों को सौंपने पर भी स्वीकृति दी। परन्तु 1970 के दशक से कुछ अशों को लेकर भूटान के आपत्ति करने पर नवीन संधि सन् 2007 मे हुई। इस संधि द्वारा दोनों ने अपने को 'मित्रतापूर्ण सहयोगी' बताया। इसके साथ–साथ अब भूटान भारत के अतिरिक्त अन्य देशों से 'गैर–घातक हथियार' खरीदने हेतु स्वतन्त्र होगा। प्रत्यर्पण धारा को भी ओर स्पष्ट करते हुए इसमें भारत विरोधी उल्फा उग्रवदियों को भारत को सौंपने का भूटान ने वादा किया। परन्तु दोनों ही संधियों द्वारा भूटान की प्रभुसत्ता सम्पन्नता का सम्मान स्थापित बना रहा। अतः इन संधियों ने दोनों देशों के मध्य सहयोग हेतु साकारात्मक ढ़ांचागत व्यवस्था का निर्माण किया।

7.3.3.3 अर्न्तराष्ट्रीय मंचो पर सहयोग

भारत व भूटान के मध्य राजनैतिक सहयोग का एक बिन्दू दोनों द्वारा परस्पर अर्न्तराष्ट्रीय मंचों पर एक दूसरे का साथ देना रहा है। सर्वप्रथम प्रारम्भिक वर्षों में भारत ने भूटान की ओर से बाह्य जगत में इसकी भूमिका निभाई। इसके विदेश व रक्षा संबन्धित निर्णयों पर अपनी छाप बनाये रखी। 1970 के दशक से भारत ने भूटान के स्वतन्त्र भागीदारी हेतु सहयोग कर उसे सयुक्त राष्ट्र संघ एवं गुट निरपेक्ष आन्दोलन का सदस्य बनाने में मदद की। 1980 के दशक मे दक्षेस की स्थापना मे भूटान की क्षेत्रीय सहयोग विकसित करने मे मदद की। इसके बाद अर्न्तराष्ट्रीय मंचों पर दोनों देशों ने परस्पर एक जुट होकर भूमिका निभाई है। 1990 के दशक मे व्यापक परमाणु परिक्षण संधि पर जब सम्पूर्ण विश्व भारत के विरूद्ध खड़ा था तब केवल भूटान ही ऐसा एक मात्र देश था जो भारत के पक्ष में था। इस प्रकार दोनों देशों ने सभी अर्न्तराष्ट्रीय मंचों पर सहयोग से परस्पर मित्रतापूर्ण संबंधों को और सृदृढ़ बनाया।

7.3.4 सामरिक सहयोग

भारत व भूटान सामरिक दृष्टि से भी एक दूसरे के पूरक ही नहीं बल्कि जरूरत है। भूटान की भू–सामरिक स्थिति उसे न केवल भूबद्ध राष्ट्र की मजबुरियों में बांधता है, बल्कि उसे दो बड़ी शक्तियों मे मध्य गम्भीर स्थिति में पाता है। दूसरी ओर भारत के लिए भी भूटान की सामरिक स्थिति अति महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत के चीन के साथ सीमा विवाद के कारण भूटान से रिश्तों में सामंजस्य अति महत्वपूर्ण बन जाता है। इसीलिए प्रारम्भ से ही भारत भूटान की सीमाओं को अपनी सीमाओं जितना ही महत्वपूर्ण मानता रहा है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में आंतकवाद को लेकर भी दोनों के विचारों में समानता बनी हुई है। यह स्थिति केवल द्विपक्षीय आधार पर ही नही, अपितु दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय स्वरूप पर भी लागू होती है। समसामयिक संदर्भ में मादक द्रव्यों की तस्करी भी दोनों के मध्य सहयोग का प्रमुख बिन्दू हैं। वर्तमान समय मे उल्फा की गतिविधियां रोकने में भी भूटान ने भारत के प्रति बड़ा साकारात्मक रूख अपनाया है। अतः सामरिक दृष्टि से दोनों देश एक दूसरे के सहायक है तथा दोनों ने हमेशा एक दूसरे के प्रति सहयोगात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

7.3.5 शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सहयोग

दोनों देशों के मध्य निम्न पहलूओं के माध्यम से शैक्षिणक एवं सांस्कृतिक सहयोग परिलक्षित होता हैः–

7.3.5.1 शैक्षणिक आदान प्रदान

भारत सरकार भूटान के विद्यार्थियों के शिक्षा हेतु स्नातक एवं स्नाकोत्तर स्तर पर विभिन्न छात्रवृत्तियो प्रदान करता है। इन योजनाओं का लाभ उठाकर बहुत से भूटान के नागरिक भारत में शिक्षा ग्रहण कर रहें हैं। सन् 2010 से इन छात्रों हेतु 10 मिलियन रुपये की वार्षिक नेहरू–वांचुक छात्रवृतिया प्रदान की जाती हैं। 2014 की नरेन्द्र मोदी की यात्रा के दौरान इसकी राशि दो गुणी करके 20 मिलियन रुपये वार्षिक कर दी गई है। इसी प्रकार सन् 2012 से भारतीय सांस्कृतिक संबंधों की परिषद् (आई.सी.सी.आर.) के अर्न्तगत भूटान के छात्रों को भारत मे पढ़ने हेतु छात्रवृतियां प्रदान की जाती है। इसी तरह से कुछ भूटानी छात्रों को राजदूत द्वारा भी छात्रवृतियां प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त भारत के सैनिक स्कूलों में 10 भूटानी छात्रों को छटी कक्षा से बारहवीं कक्षा तक मुफ्त शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। इसी प्रकार कोलम्बों प्लान के तहत् तकनीकी शिक्षा में सहयोग की व्यवस्था भी की गई है। भूटान के रॉयल विश्वविद्यालय में पढ़ाने हेतु विदेश मन्त्रालय के माध्यम से कुछ शिक्षक भी मनोनीत किए जाते है। प्रधानमंत्री मोदी ने सन् 2014 की यात्रा के दौरान भूटान को सूचना प्रौद्योगिकी में सहयोग के साथ–साथ भूटान के सभी 20 जिलों में एक ई–लाईब्रेरी खोलने हेतु सहायता का आश्वासन दिया है। इस प्रकार भूटान व भारत के बीच विभिन्न स्तरों पर शैक्षिणक आदान–प्रदान की व्यापक व्यवस्था उपलब्ध है।

7.3.5.2 भारत–भूटान फाऊँडेशन

दोनों देशों के मध्य जनमानस से जनमानस के बीच सम्पर्क स्थापना हेतु सन् 2003 में भारत–भूटान फाऊँडेशन की स्थापना की गई। इसके द्वारा शिक्षा, संस्कृति व पर्यावरण सुरक्षा हेतु लोगों के परस्पर आवागमन को बढ़ावा दिया जाता है। दोनों देशों के राजदूत इसके सहअध्यक्ष है। इसकी जमा पूंजी 10 करोड़ रुपये दोनों देशों ने समान रूप से जुटाई है। इस राशि पर अर्जित व्याज से विभिन्न कार्यक्रमों को आयोजित किया जाता है। भूटान स्थित नेहरू–वाचुक केन्द्र वर्ष भर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है। इसके साथ–साथ भूटान हर वर्ष 'पहाड़ो की गूंज' नामक एक साहित्यिक कार्यक्रम भी आयोजित करता है।

7.3.5.3 भूटान में भारतीय समुदाय

वैसे तो भारतीय मूल के लोग दुनिया के लगभग 110 देशों मे विद्यमान है, परन्तु भूटान जैसे छोटे देश में भी इनकी भूमिका को नकारा नही जा सकता। भूटान में लगभग 37000 विदेशी नागरिक/मजदूर रहते हैं। उनमें से अधिकतर भारतीय नागरिक है। इनमें से 7000 लगभग दैनिक मजदूरों की संख्या है। अतः भारतीय व भूटानी नागरिकों के आपसी संबंध गहन सामजस्य व तालमेल के परिचायक है। इस प्रकार की व्यवस्था से राजनम-II की शृखंला के माध्यम से दोनो देशों में मधुर संबंध रहें हैं।

7.3.6 चुनौतियाँ एवं भविष्य

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं दोनों देशों के मध्य स्थापित सौहार्द को देखते हूए द्विपक्षीय संबंधों मे चिंता नजर नहीं आती। परन्तु कुछ समसामयिक आन्तरिक व बाह्य परिवर्तनों के संदर्भ में भारत को सजग अवश्य रहना पड़ेगा। यद्यपि भूटान से भारत को निकट भविष्य या दूरगामी स्तरों पर सुरक्षा या अन्य प्रमुख चिन्ताएं नहीं रहेगीं, परन्तु कुछ चुनौतियां अवश्य रहेगी। जिन्हें नीति निर्माताओं को ध्यान में रखना होगा।

क सर्वप्रथम, **भूटान अभी तक राजतंत्र के अधीन था जिसमें विदेश नीति के फैसला लेना सीमित व सरल था। इससे विदेशी संबंध भी सरल व एकल केन्द्रित रहे। परन्तु अभी–अभी भूटान प्रजातांत्रिक देश हो गया जहां आगे चलकर विभिन्न समुदाओं या राजनैतिक घटकों के उत्पति की सम्भावनाओं को नहीं नकारा जा सकता। अतः भारतीय विदेश नीति निर्माताओं को भी बहुविकल्पों एवं विभिन्न घटकों या विचारों से सामंजस्य की विदेश नीति अपनानी होगी।**

ख द्वितीय, **अभी तक भूटान की विदेश नीति न्यूनतम स्तर को अपनाने वाली रही है, जो मूलतः भारत केन्द्रित प्रारूप वाली थी। वर्तमान प्रजातांत्रिक भूटान अपने महत्व को बढ़ाने वाली या विभिन्नीकरण के विदेश नीति के विकल्पों की सोच सकता है। इसके अतिरिक्त चीन का दक्षिण एशिया में बढ़ता प्रभाव भी उसकी विदेश नीति में कोई परिवर्तन ला सकता है। भारत को इस प्रकार की दूरगामी सोच से निपटने वाली नीतियों का प्रावधान भी रखना होगा।**

ग तृतीय, **यद्यपि आर्थिक रूप से भारत भूटान का एकमात्र एवं सर्वाधिक मददगार देश रहा है, परन्तु इस बदलते आर्थिक परिवेश में शायद भूटान इस प्रक्रिया को शोषणकारी मानता है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में भूटान अपने को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र व आत्मनिर्भर बनाना पसन्द करेगा, न कि निरन्तर भारत पर निर्भरता वाला देश। अतः उसे यह दृष्टिकोण बदलाना होगा तथा अपने स्वाम्लबन हेतु कार्य करना पड़ेगा। इस हेतु भूटान के घरेलू क्षेत्र को विकास कर उसकी निर्यात क्षमता को बढ़ाना होगा। इसके अतिरिक्त, व्यापार में संतुलन बनाना तथा निर्यात विभिन्नीकरण भी करना पड़ेगा ताकि भूटान स्वयं को आर्थिक रूप से समानता के आधार पर कार्य कर सके।**

घ चतुर्थ, **उर्जा क्षेत्र में भारत द्वारा पनबिजली परियोजनाओं के विकास हेतु भूटान को अत्याधिक आर्थिक मदद् की है। वहां पर ज्यादातर परियोजनाएं भारत के सहयोग से चल रही हैं तथा भारत अन्य एक दर्जन ऐसी योजनाओं को आर्थिक मदद् हेतु तैयार है ताकि भाविष्य मे लगभग 10,000 मैगावाट बिजली आयात कर सके। आर्थिक मुद्दे के साथ–साथ इन परियोजनाओं के प्रबंधन, रखरखाव, बिजली उत्पादन क्षमता व निर्यात आदि को लेकर भी दोनों के बीच विभेद हो सकते है। इसके अतिरिक्त, भूटान की पनबिजली उत्पादन की सम्भावना 24000 मैगावाट की है। इस दृष्टि से भूटान अन्य विकल्पों पर भी सोच सकता है। इस दृष्टि से भारत को भूटान की इन चिन्ताओं के प्रति भविष्य ने अधिक संवेदनशील होना होगा।**

ङ अन्ततः, **सामरिक रूप से भूटान चीन व भारत के बीच बफर राज्य ही नहीं है, अपितु आन्तरिक स्थिति मे भी उग्रवादी गतिविधियों के समाधान में सहायक है। परन्तु वर्तमान में भूटान व चीन के मध्य सीमा विवाद को हल करना उसके लिए अहम् चुनौती है। वही दूसरी ओर भारत–चीन सीमा विवाद भी कठिन परिस्थितियों में है। इस प्रकार भारत के चीन से बढ़ते व्यापार की दृष्टि से भूटान को चीन से दूरी बनाये रखना भारत के लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय रहेगा। क्योंकि इन परिस्थितियों मे भारत भूटान पर चीन के रिश्तें न सुधारने पर दबाव नहीं डाल सकता तथा न ही स्वयं अपने व भूटान के संदर्भ में दोहरे माप दण्ड अपना सकता है।**

7.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से आज तक भारत–भूटान संबंध अत्यन्त प्रगाढ़ व मित्रतापूर्ण रहे हैं। प्रारम्भ में इसका कारण अंग्रेजी विरासत रही तो बाद मे सन् 1949 की संधि द्वारा भूटान की सुरक्षा गारन्टी से जुड़ा होने से सुखद रिस्ते बने रहें। बाद के दशकों में भूटान का सम्पूर्ण विकास व आधुनिकरण भी भारत के योगदान से ही सम्भव हुआ। भारत आर्थिक, राजनैतिक, सामरिक व शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भूटान का एक अग्रणीय सहायक देश रहा है। छुट–पुट विवादों को छोड़कर दोनों के मध्य कोई प्रमुख विवादास्पद बिन्दू नहीं रहा। भूटान की आन्तरिक परिस्थितियों व अर्न्तराष्ट्रीय परिवर्तनों के दौर में भी दोनों ने एक दूसरे के पूरक की

भूमिकाओं को सहजता से निभाया है। वर्तमान सरकार की प्राथमिकताओं के परिणामस्वरूप भी दोनों के संबंध मधुर रहने की संभावनाए व्यापत है। यद्यपि भारत हेतु कुछ राजनैतिक, आर्थिक व सामरिक चुनौतियां अवश्य विद्यमान है, परन्तु ये चुनौतियां अधिक मुश्किल नही हैं। दोनों देशों के मध्य परिपक्व राजनैतिक समझ एवं महत्वपूर्ण आर्थिक सहयोग ने इन्हें मित्रता की परिकाष्ठा पर पहूंचा दिया है। इन दोनों के तनावमुक्त संबंधों ने द्विपक्षीय संबंधों को एक बड़े राज्य/क्षेत्रीय शक्ति के छोटे राज्य से संबंधों की एक आदर्श श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

7.5 प्रश्नावली

क भारत–भूटान के आर्थिक संबंधों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

ख राजनैतिक व सामरिक दृष्टि से भारत व भूटान के संबंधों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

ग भारत व भूटान के सहयोगात्मक संबंधों में प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण कीजिए।

घ बताइए किस आधार पर भारत–भूटान संबंधों को मित्रतापूर्ण संबंधों का आदर्श स्वरूप माना जा सकता है।

ङ शीतयुद्धोत्तर युग मे भारत–भूटान संबंधों को निरन्तरता या परिवर्तनशील किस श्रेणी में रखा जा सकता है? टिप्पणी कीजिए।

च बताइए किस प्रकार से दक्षिण एशिया में भूटान भारत का सबसे घनिष्ट पड़ोसी राष्ट्र है।

7.6 सन्दर्भ सूची

1 आर.एस. यादव, भारत की विदेश नीति, पीयरसन, नई दिल्ली, 2013।

2 पी. स्तोबदान, इंडिया एंड भूटानः द स्ट्रेटेजिक इम्प्रेटिव, आई.डी.एस.ए., नई दिल्ली, 2014 (ओकेजनल पेपर संख्या 36)।

3 रवि वर्मा, इंडियॉज रोल इन द अमरजैंस ऑव कंटम्प्रेरी भूटान, नई दिल्ली, 1988।

4 मनोरमा कोहली, फ्राम डिपेंडेसः ए स्टडी ऑव इंडो–भूटान रिलेसंज, नई दिल्ली, 1993।

5 बी.एस. जैन, इंडिया एंड भूटानः सिक्योरटी एंड स्ट्रेटेजिक डायमैंसंज, स्ट्रेटेजिक एनेलिसिस, 18 (6), सितम्बर 1995।

6 पदूमजा मूर्ति, इंडो–भूटान रिलेसंजः सर्विंग मुचुवल इंटरेस्ट्स, स्ट्रेटेजिक एनेलिसिस, 23 (1), 1999।

7 बी.एस.दास, भूटान, सतीश कुमार, सम्पा., ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1989, नई दिल्ली, सेज, 1991।

इकाई–8 भारत–पाकिस्तान संबंध

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 भारत–पाकिस्तान द्विपक्षीय संबंध

8.3.1 प्रथम चरणः तनाव व संघर्षपूर्ण संबंधों का दौर

8.3.1.1 विभाजन की विरास्त

8.3.1.2 कश्मीर विवाद

8.3.1.3 शीतयुद्ध की राजनीति

8.3.1.4 विरोधी विदेश नीतियाँ

8.3.1.5 राज्यों का विरोधी स्वरूप

8.3.1.6 विभाजन की स्वीकृति, परन्तु सिद्धांतों की नहीं

8.3.1.7 दोनो के मध्य युद्ध होना

8.3.2 द्वितीय चरणः तनाव शैथिल्य का दौर

8.3.2.1 आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन

8.3.2.2. बाह्य स्थिति में परिवर्तन

8.3.2.3 शिमला समझौता

8.3.3 तृतीय चरणः पुनः विवादास्पद संबंधों का दौर

8.3.3.1. नव–शीतयुद्ध

8.3.3.2 आतकंवादी गतिविधियों का समर्थन

8.3.3.3 परमाणु प्रतिस्पर्धा

8.3.3.4 सियाचिन ग्लेशियर विवाद

8.3.3.5 कट्टरवादी गतिविधियां

8.3.3.6 कारगिल युद्ध

8.3.4 चतुर्थ चरणः यथास्थिति बरकरार

8.4 सारांश

8.5 प्रश्नावली

8.6 सन्दर्भ सूची

8.1 प्रस्तावना

भारत व पाकिस्तान न केवल दो पड़ोसी राष्ट्र है, बल्कि दक्षिण एशिया की बड़ी शक्तियां भी हैं। दोनों के मध्य ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक सामीप्य तथा आर्थिक अन्तः निर्भरता होते हुए भी संबंधों में ज्यादातर समय कटुता बनी रही है। यह अत्याधिक विचित्र बात है कि दोनों के लम्बे समय तक औपनिवेशिक नियंत्रण में रहने के बावजुद भी संबंधों में मित्रता नही पनप सकी। शीतयुद्धोत्तर युग में जहां दुनियां के सभी क्षेत्रों में विवादों

की समाप्ति के बाद नये युग की शुरूआत हो रही है, वहीं भारत–पाकिस्तान संबंध इसका अपवाद बने हुए हैं। इन दोनों देशों के बीच संबंध संघर्ष से शान्ति प्रयासों और इसके बाद पुनः संघर्ष पर पहुंच जाते है, शान्ति की ओर अग्रसर नहीं होते। अतः दोनों के संबंध कई अर्थों में विचित्र एवं स्थापित स्थितियों से बिल्कुल अलग प्रवृति के रहें हैं। इसलिए इस इकाई में इन बदलती प्रवृतियों के अध्ययन द्वारा भारत–पाकिस्तान रिश्तों में आए उतार–चढ़ावों को समझने का प्रयास किया जायेगा। इसके साथ–साथ उनके रिश्तों में संघर्ष के इस स्थाई स्थिति को समझने के प्रयास किया जायेगा। यह भी समझने का प्रयास होगा कि किस प्रकार दोनों देशों के आन्तरिक व बाह्य कारकों के परिणाम स्वरूप दोनों के रिश्ते बदलते रहें है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मूलरूप से छः से भी अधिक दशकों के भारत–पाकिस्तान संबंधों का अध्ययन करना है। इस अध्ययन में दोनों के मध्य विवादास्पद मुद्दों एवं उनके कारकों का विश्लेषण किया जायेगा। इसके साथ दोनों के मध्य समय–समय पर स्थापित सहयोग प्रक्रियाओं अथवा सम्भावनाओं का अध्ययन भी करना है। इस इकाई में इनके द्विपक्षीय संबंधों से जुड़े क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का अध्ययन करना भी है, जिनके प्रभाव स्वरूप इनमें मित्रता एवं शत्रुता पनपती है। यहां यह भी प्रयास किया जायेगा कि शीतयुद्ध की राजनीति ने इनके रिश्ते को किस प्रकार नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। इसके साथ–साथ यह भी प्रयास होगा कि शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश ने इनके लिए किन–किन सकारात्मक संदर्भों को जन्म दिया है जिससे इनके संबंधों मे सुधार हो सके। यहां यह भी जानने का प्रयास होगा कि क्षेत्रीय सहयोग संगठन दक्षेस की स्थापना ने इनके संबंधों को किस प्रकार प्रभावित किया है। अध्ययन का एक बिन्दू दोनों के मध्य चार युद्धों के कारकों एवं उनसे होने वाले प्रभावों का अध्ययन भी होगा। अतः इस इकाई का उद्देश्य दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों के सभी आयामों का समग्र रूप से अध्ययन करना होगा। जिससे अपने पड़ौसी के साथ भविष्य में संबंधों का आंकलन किया जा सके।

8.3 भारत–पाकिस्तान द्विपक्षीय संबंध

1947 से लेकर आज तक भारत–पाकिस्तान संबंध मुख्तः तनाव व संघर्ष पूर्ण रहे हैं। इनकी संघर्ष की पराकाष्ठा का अनुमान इनके मध्य हुए चार युद्धों से भी लगाया जा सकता है। इनके छः दशकों से भी अधिक द्विपक्षीय संबंधों का अध्ययन मुख्य रूप से इनके बीच आये उतार–चढ़ावों के निम्न प्रमुख चरणों के घटनाक्रम से लगाया जा सकता है।

8.3.1 प्रथम चरणः तनाव व संघर्षपूर्ण संबंधों का दौर

भारत व पाकिस्तान के रिश्ते 1947 से 1971 तक के दौर में अति संघर्ष एवं तनावपूर्ण रहे, जिसके परिणामस्वरूप दोनों के बीच तीन युद्धों – 1947–48, 1965 व 1971 – की परिणिति हुई। इस प्रकार के रिश्तों के लिए निम्न कारक उत्तरदायी रहे :–

8.3.1.1 विभाजन की विरासत

भारत व पाकिस्तान का बटवारा सौहाद्रपूर्ण वातावरण में नही हुआ बल्कि दोनों के बीच वैचारिक कटुता के साथ–साथ व्यापक साम्प्रदायिक नरसंहार भी हुआ। इसी कारण विभाजन के दौरान कई मुद्दों पर आम सहमति बनाना भी कठीन रहा तथा दोनों देशों ने अपनी–अपनी बात मनवाने हेतु दबाव की राजनीति की। इन विभेद के मुद्दों में कुछ महत्वपूर्ण विषय निम्न रहे –

- क. अल्पसंख्यकों की देखभाल
- ख. सिंधु नदी का जल बटवारा
- ग. विस्थापितों की सम्पति विवाद
- घ. सीमा की घटनाएँ
- ड़. सैन्य सामान का बटवारा
- च. मुद्रा विभाजन आदि।

यद्यपि 1960 तक आते–आते लगभग इन सभी विवादों का हल निकाल लिया गया, परन्तु दोनों के मध्य वैमनस्य व कटुता बनी रही। सभी विवादों पर पूर्ण सहमति नहीं थी, बल्कि कई विवादों के हल हेतु मध्यस्थ का सहारा भी लेना पड़ा। उदाहरण स्वरूप सिंधु नदी जल विवाद विश्व बैंक की सहायता के बाद ही हल हो सका। अतः दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों की शुरूआत साकारात्मक न होकर नकारात्मक पहलुओं से हुई जिससे इनके रिश्तों में गर्मजोशी की बजाय तनाव की स्थिति बनी रही।

8.3.1.2 कश्मीर विवाद

दोनों देशों के मध्य कश्मीर आज भी वैमनस्य का सबसे बड़ा कारण है। विभाजन के समय अंग्रेजों ने स्वतन्त्र रियासतों को भारत या पाकिस्तान किसी भी राज्य का हिस्सा होने की छूट दी थी। कश्मीर एक ऐसा ही राज्य था जो तुरन्त यह फैसला नही ले सका। इसी दौरान तत्कालीन पाकिस्तान सरकार ने कबीलाई वेश मे अपनी सेना भेजकर कश्मीर पर कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया। इस खतरे से निपटने हेतु कश्मीर के शासक राजा हरिसिंह ने रियासत का विलय 26 अक्टूबर 1947 को भारत के पक्ष में कर दिया। परन्तु जब तक कश्मीर के लगभग आधे भाग पर पाकिस्तान का कब्जा हो चुका था, जो आज भी उसके पास है, जिसे हम पाक अधिकृत कश्मीर (पी.ओ.के.) के नाम से जानते है। भारत ने विरोध स्वरूप इस मुद्दे को सयुंक्त राष्ट्र में उठाया। इसके परिणाम स्वरूप 1 जनवरी 1949 से दोनों देशों के मध्य युद्ध विराम तो हो गया लेकिन विवादास्पद भूमि पर कब्जे का निपटारा नहीं हो सका। सयुंक्त राष्ट्र ने इसका हल जनमत संग्रह द्वारा कराने का फैसला किया जिसे भारत ने भी स्वीकार किया। परन्तु उसी समय पाकिस्तान द्वारा अमेरिका के साथ सैन्य गठबंधन करने से स्थिति बदल गई तथा भारत ने जनमत संग्रह से इंकार कर दिया। तभी से लेकर आजतक कश्मीर दानों देशों के रिश्तों मे बहुत दर्द है, जिस पर दोनों ही समझौता करना नहीं चाहते। अतः 1947–48 के युद्ध द्वारा उत्पन्न इस समस्या का हल 1965 व 1971 के युद्धों से भी नहीं हो सका। अतः कश्मीर आज भी द्विपक्षीय संबंधों में रुकावट की बड़ी वजह हे जिसका समाधान निकट भविष्य में होता नजर नही आ रहा है।

8.3.1.3 शीतयुद्ध की राजनीति

यद्यपि शीतयुद्ध उस समय की दो महाशाक्तियों – अमेरिका एवं सोवियत संघ के मध्य था, परन्तु, भारत व पाकिस्तान के वैमनस्य भरे संबंधों ने इन्हें भी शीतयुद्ध में शामिल कर दिया। कश्मीर विवाद न सुलझने के कारण दोनों ही संयुक्त राष्ट्र में एक–दूसरे के विरूद्ध बन गये। प्रत्येक देश कश्मीर पर संयुक्त राष्ट्र मे वीटो हेतु इन शाक्तियों के सम्पर्क मे आये जहां से दोनों ही अप्रत्यक्ष रूप से शीतयुद्ध की चपेट मे आ गए। इसके अतिरिक्त, शीतयुद्ध में अमेरिका की विदेश नीति का प्रमुख बिन्दू था – 'साम्यवाद का प्रतिरोधन'। इस उद्देश्य हेतु सोवियत संघ की सीमाओं के साथ–साथ सैन्य गुटबन्दी बनाने की रणनीति अपनाई। इसके अन्तर्गत जहां यूरोप मे नॉटो तथा एशिया मे सैंटो एवं सीएटों जैसे गठबन्धनों का प्रारूप सामने आया। इन गठबन्धनों में पाकिस्तान के शामिल होने से (सैन्टो एवं सीएटो), भारत स्वभाविक रूप से शीतयुद्ध का हिस्सा बन गया। इसके परिणाम स्वरूप भारत की निकटता तत्कालीन सोवियत संघ से हो गई। अतः महाशाक्तियों की शीतयुद्ध की राजनीति का सीधा असर दक्षिण एशिया के इन दोनों देशों पर भी पड़ा और परिणाम स्वरूप इनके संबंधों में मित्रता होना और भी कठीन हो गया।

8.3.1.4 विरोधी विदेश नीतियाँ

स्वतन्त्रता के बाद दोनों देशों ने अपनी–अपनी विदेश नीतियां भी विरोधाभाषपूर्ण अपनाई, जिससे दोनों में तनाव की स्थिति बनी रही। भारत ने अपने हितों की पूर्ति हेतु गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई। इसका मूल उद्देश्य स्वतन्त्र सोच वाली सैन्य गठबन्धनों से मुक्त विदेश नीति था। क्योंकि भारत का मानना था कि जब–जब सैन्य गठबन्धनों की व्यवस्था बनी है तब–तब को युद्धों को जन्म दिया है। इसके साथ–साथ भारत अपने को युद्धों से अलग करके आर्थिक विकास करना चाहता था। अतः वह किसी भी प्रकार की युद्ध की सम्भावनाओं को नकारना चाहता था। दूसरी ओर पाकिस्तान प्रारम्भ से ही अपने को भारत के समकक्ष रखने की नीति की ओर अग्रसर रहा है। अतः उसने अपने को भारत के विरूद्ध शाक्तिशाली होने के लिए सैन्य गठबन्धनों का सहारा लिया। उसने द्विपक्षीय स्तर पर अमेरिका से सैन्य समझौता किया तथा बहुपक्षीय स्तर पर सैन्टो व सियटो जैसे गठबन्धनों की सदस्यता प्राप्त की। इस तरह से दोनों की विरोधी विदेश नीतियों के कारण एक दूसरे के बीच मित्रतापूर्ण संबंध विकसित नही हो सके।

8.3.1.5 राज्यों का विरोधी स्वरूप

भारत व पाकिस्तान यद्यपि संयुक्त रूप से लगभग 200 वर्षों तक ओपनिवेशिक ताकतों के अधीन रहे, परन्तु

स्वतन्त्र देश बनने के बाद दोनों ने विभिन्न राज्य व्यवस्था को अपनाया। भारत में प्रजातांत्रिक गणतन्त्र की स्थापना हुई तो पाकिस्तान ने इस्लामिक राज्य को अपनाया। इसके परिणामस्वरूप भारत–पाकिस्तान के मध्य विभाजन संबंधी साम्प्रदायिक तनाव समाप्त होने की बजाय जारी रहा। दूसरा अब पाकिस्तान अपनी समस्याओं के समाधान हेतु दक्षिण एशिया में अपने पड़ौसी भारत की ओर देखने के बजाय पश्चिमी एशिया के मुस्लिम देशों की ओर देखने लगा। अतः दोनों के बीच वर्षों पुरानी समानताओं को छोड़ पाकिस्तान अपनी विदेश नीति के सरोकारों को पश्चिमी एशिया से जोड़ने लगा। इसी कारण पाकिस्तान ने न केवल रूढ़िवादी व्यवस्था को अपनाया बल्कि भारतीय प्रजातांत्रिक प्रणाली का विरोध भी किया। इसी विरोध के कारण हमेशा भारत से खतरे की कल्पना को भी सचेत रखा, जिसे बाद में सैनिक सत्ताधारियों ने प्रयोग किया। इसके कारण मित्रता की बजाय वैमनस्य की प्रवृतियों को ही बढ़ावा मिला।

8.3.1.6 विभाजन की स्वीकृति, परन्तु सिद्धांतों की नहीं

भारत व पाकिस्तान विभाजन होकर दो राष्ट्र के रूप मे अवश्य स्थापित हो गए थे, लेकिन भारत के विभाजन तो स्वीकार कर लिया था, परन्तु विभाजन के सिद्धांत को नही स्वीकृत किया। पाकिस्तान ने जहां अलग राज्य की स्थापना हेतु धर्म के आधार पर मांग की थी, वहीं भारत इसे केवल एक भौगोलिक विभाजन ही मानता था। भारत का मानना था कि कभी भी धर्म के नाम पर राष्ट्र की स्थापना नहीं की जा सकती, क्योंकि वर्तमान में भारत मे भी काफी संख्या में मुस्लिम समुदाय के लोग रहते हैं। परन्तु पाकिस्तान दोनों समुदायों को धार्मिकता के आधार पर अलग मानने के कारण हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को समाप्त नही कर सका। इसके परिणाम स्वरूप दोनों देशों के संबंध ज्यादातर समय सामान्य नहीं हो सके। यद्यपि पाकिस्तान अपने मत का कठोरता से समर्थन करता रहा, लेकिन 1971 मे पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान के मतभेद व उसके उपरान्त बांग्लादेश की उत्पति ने भारत की बात को सत्य साबित कर दिया। परन्तु पाकिस्तान द्वारा इसकी स्वीकारोक्ति न होने से दोनों के मध्य तनाव बना रहा।

8.3.1.7 दोनो के मध्य युद्ध होना

भारत–पाकिस्तान के मध्य तनाव केवल शीतयुद्ध तक सीमित न होकर सन् 1965 व 1971 में प्रत्यक्ष युद्ध के रूप में सामने आया। यद्यपि दोनों के मध्य कश्मीर को लेकर सीमा विवाद प्रारम्भ से ही था, परन्तु इसको गहन युद्ध के रूप में 1965 में देखने को मिला। पाकिस्तान पहले भी सन् 1947–48 में जम्मू–कश्मीर का आधा भाग अपने कब्जे मे कर चुका था तथा बाकि भाग पर भी आधिपत्य जमाना चाहता था। सन् 1962 में भारत की चीन के साथ पराजय से पाकिस्तान ने आकंलन किया कि भारत की सामरिक स्थिति कमजोर है, अतः इसका लाभ उठाना चाहिए। दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद भारत में राजनैतिक नेतृत्व को भी शायद कमजोर आंका गया। तीसरे सन् 1963 में पाकिस्तान ने अपने कब्जे वाले कश्मीर का बड़ा भाग चीन को हस्तांतरित कर दिया था, अतः चीन से सहयोग की भी अपेक्षा थी। परन्तु 1965 की लड़ाई में पाकिस्तान की भारी हार हुई। यद्यपि क्षेत्र की दृष्टि से 1966 के ताशकंद समझौते के अन्तर्गत भारत को पाकिस्तान का विजित क्षेत्र वापिस लौटान पड़ा। इसी प्रकार 1970 में पाकिस्तान–चीन–अमेरिका के त्रिगुट के गठन के बाद भारत पर आक्रमण किया। परन्तु इस बार भारत की स्पष्ट जीत हुई व पर्वी पाकिस्तान एक अलग राज्य के रूप में स्थापित हुआ। अतः यह सम्पूर्ण काल तनाव व युद्धों से ग्रसित रहा जिससे दोनों देशों के मध्य मधुर संबंधों का अभाव रहा।

8.3.2 द्वितीय चरणः तनाव शैथिल्य का दौर

सन् 1971 के भारत–पाक युद्ध के कारण पहली बार दोनों देशों के रिश्तों में एक नया मोड़ आया। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप दक्षिण एशिया व इन राज्यों में आये आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में बदलाव ने दोनों के मध्य तनाव शैथिल्य के दौर का प्रारम्भ हुआ जो लगभग एक दशक अर्थात् नव–शीतयुद्ध के आरम्भ तक चला।

8.3.2.1 आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन

1971 के युद्ध ने भारत व पाकिस्तान में विभिन्न बदलाव लाए जिसके परिणाम स्वरूप दोनों मे कटुता कम हो गइ। इस युद्ध जहां भारत दक्षिण एशिया की एक प्रमुख शाक्ति के रूप में उभर कर आया, वहीं इसकी वैचारिक नीति की भी विजय हुई। दूसरे अब पाकिस्तान का क्षेत्र कम होने से भारत की सर्वोचता पूर्ण रूप से स्थापित हो गई। तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय राजनय के स्तर पर भी भारत ने पाकिस्तान को अपना लोहा मनवा लिया। पाकिस्तान भी इस युद्ध के बाद क्षेत्रीय स्तर पर स्वाभाविक भौगोलिक राष्ट्र बन गया। अब इसे दूसरे क्षेत्र को जोड़ने हेतु धार्मिक बाध्यता की आवश्यकता नहीं रही। द्वितीय अब पाकिस्तान में सैन्य शासक की जगह प्रजातांत्रिक सरकार का गठन हो गया।

तीसरे पंजाब व सिंध में हो रहे अलगावादी आन्दोलनों के कारण अब भारतीय सीमा पर शान्ति अनिवार्य बन गई। इस प्रकार दोनों देशों की बदली हुई आन्तरिक स्थितियों का द्विपक्षीय संबंधों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

8.3.2.2.बाह्य स्थिति में परिवर्तन

इस युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत व पाकिस्तान के बाह्य परिवेश मे भी असाधारण परिवर्तन हुए, जिसके कारण दोनों के रिश्ते मधुर बने। इस युद्ध के बाद दक्षिण एशिया में जहां भारत व सोवियत संघ के रिश्ते मजबुत हुए, वहीं इस क्षेत्र में चीन व अमेरिका जैसी ताकतों के हस्ताक्षेप की सम्भावनाएं समाप्त हो गई। भारत–सोवियत मित्रता व सहयोग संधि दोनों देशों के मध्य सैद्धांतिक ही नहीं, बल्कि व्यवहारिक स्तर पर अति कारगर सिद्ध हुई। चीन व अमेरिका द्वारा सोवियत संघ के साथ सीधे युद्ध की सम्भावनाओं के कारण अब इन दोनों शक्तियां ने पाकिस्तान से नजदीकियों के बावजुद भारत से युद्ध में दूरी बनाये रखी। इसने पाकिस्तान की गलतफहमियों को निरस्त कर दिया तथा भारत से संबंध सुधारने पर बाध्य किया। अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के अतिरिक्त क्षेत्रीय शक्ति ईरान का रूख भी भारत के पक्ष में होने के कारण पाकिस्तान का इस्लामिक कार्ड भी काम नहीं आया। इस ढांचागत परिवर्तन ने जहां भारत को इस क्षेत्र की एकमात्र शक्ति स्थापित कर दिया, वहीं इन दोनों देशों मे बाह्य शक्तियों के हस्ताक्षेप की सम्भावना को निरस्त कर नजदीक आने का अवसर प्रदान किया।

8.3.2.3 शिमला समझौता

उपरोक्त आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों में बदलाव स्वरूप भुट्टो ने भारत के साथ वार्ता करने की पहल की। इसके परिणाम स्वरूप 3 जूलाई 1972 को दोनों देशों के बीच 'शिमला समझौता' हो गया, जिसमें निम्न विषयों पर सहमति बनीः–

क. दोनों देशों ने परस्पर क्षेत्रीय अखण्डता एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता के विरूद्ध धमकी न देने या हथियारों का प्रयोग न करने की वचनबद्धता अपनाई।

ख. दोनों देशों ने सहमति की कि भविष्य में आपसी मतभेद के मुद्दों को द्विपक्षीय बातचीत से हल करेगें।

ग. दोनों द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ाने हेतु – A. डाक, तार, वायु, समुद्र व थल संबंध बनायेगें, B. दोनों नागरिकों को यात्रा की सुविधा प्रदान करेगें, C. दोनों आपसी आर्थिक व व्यापारिक संबंध विकसित करेगें, तथा D. दोनों वैज्ञानिक व आर्थिक आदान प्रदान को बढ़ावा देगें।

घ. दोनो 30 दिन के अन्दर अपनी सेनाओं की वापसी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक वापस कर लेगे। यहां सीमा से अभिप्राय 17 दिसम्बर 1971 के युद्ध विराम की नियन्त्रण रेखा से होगा।

'शिमला समझौते' द्वारा शान्ति स्थापना के बाद पाकिस्तान ने बांग्लादेश को मान्यता प्रदान कर दी। इसके बाद 9 अप्रैल 1974 को भारत, पाकिस्तान व बाग्लादेश के मन्त्रियों की दिल्ली में त्रिपक्षीय बैठक के बाद हुए समझौते के आधार पर युद्ध बन्दियों की रिहाई पर भी सहमति हो गई। एक अन्य समझौते के अन्तर्गत भारत व पाक की जेलों में बन्द अन्य कैदियों को भी रिहा कर दिया। अतः इन समझौतों ने दोनों देशों के बीच स्थाई शान्ति की स्थापना की।

8.3.3 तृतीय चरणः पुनः विवादास्पद संबंधों का दौर

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर घटनाक्रमों के कारण दोनों देशों के बीच पुनः विवादास्पद संबंधों का दौर शुरू हो गई। इस स्थिति हेतु निम्न कारक उत्तरदायी रहें :–

8.3.3.1.नव–शीतयुद्ध

सन् 1979 में सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में सैन्य हस्ताक्षेप ने नव– शीतयुद्ध की शुरूआत कर दी। इस शीतयुद्ध का प्रभाव केवल दो महाशक्तियों तक ही सीमित नहीं था, अपितु इसका व्यापक प्रभाव भारत व पाकिस्तान के रिश्तों पर भी दिखाई पड़ा। सोवियत संघ के इस सैन्य हस्ताक्षेप के विरूद्ध अमेरिका द्वारा कार्यवाही करना आवश्यक था। इस कार्यवाही हेतु भूबद्ध अफगानिस्तान में अमेरिका के पास केवल पाकिस्तान ही केवल मात्र विकल्प उपलब्ध था। इस दृष्टि से पाकिस्तान अमेरिका की इस रणनीति का अग्रणी राज्य बन गया। परिणामस्वरूप अमेरिका ने पाक को बहुत सी आर्थिक सहायता व हथियार उपलब्ध कराये। परन्तु अमेरिका ने जब–जब पाकिस्तान को हथियार दिए है, तब उसने उन्हें भारत के विरूद्ध प्रयुक्त किया है। इस समय भी यही हुआ। पाकिस्तान की इस भूमिका को दोनों

के बीच वैमनस्य एवं प्रतिद्वंदिता को बढ़ा दिया है। इस प्रकार इस नव–शीतयुद्ध से भारत व पाकिस्तान में भी तनाव शैथिल्य का दौर समाप्त हो गया तथा दोबारा तनाव व संघर्ष भरे रिश्तों की शुरूआत हो गई।

8.3.3.2 आतकंवादी गतिविधियों का समर्थन

पाकिस्तान द्वारा पंजाब व कश्मीर में आंतकवादी गतिविधियों का समर्थन भी दोनों के मध्य विवाद का एक प्रमुख कारण रहा। एक अनुमान के अनुसार पंजाब के सिख उग्रवादियों को प्रशिक्षण व हथियार पाकिस्तान द्वारा उपलब्ध कराये गये। इस उद्देश्य हेतु पाक ने कसूर, काहूटा, एमीनाबाद व मियांवाली में चार प्रशिक्षण केन्द्र चलाये हुए थे। बाद में इन केन्द्रों को स्वात, बानु तथा कोयटा में हस्तांतरित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त भारत से बाहर इंग्लैंड व कनाडा में बसे खालिस्तान व कश्मीर अलगाववाद के समर्थकों को भी पाकिस्तान साथ देता रहा है। दूसरी ओर पाकिस्तान भी भारत पर भी पाक विरोधी ताकतों का समर्थन देने के आरोप लगाता रहा है। पाकिस्तान का मानना है कि भारत भी इसके सिंध व बलुचिस्तान प्रान्त में 'प्रजातंत्र बहाली के आंदोलन (मूवमेंट फॉर रेस्टोरेशन ऑव डेमोक्रेसी) का समर्थन करता रहा है। भारत द्वारा फ्रंटीयर गांधी अबदुल गफार खान के स्वास्थ्य संबंधित जानकारी लेने को भी शंका पाक द्वारा की नजर से देखा गया है। अतः दोनों देश आंतकवाद के मुद्दे पर एकजुट होने की बजाय आरोप प्रत्यारोप में उलझे रहे हैं, जिस कारण दोनों के संबंधों में कटुता बनी रही।

8.3.3.3 परमाणु प्रतिस्पर्धा

दोनों देशों द्वारा अपनी–अपनी परमाणु क्षमताओं का विकास करना भी इसके संघर्ष पूर्ण संबंधों का कारण रहा है। यद्यपि यह स्थिति भारत द्वारा 1974 में पोखरण–1 शान्तिपूर्ण विस्फोट से ही प्रारम्भ हो गई थी, परन्तु इसका मुखर स्वरुप 1980 के दशक में उजागर हुआ। इस स्थिति को पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने अपनी आत्मकथा में उजागर किया था जब उन्होंने कहा कि पाकिस्तान चाहे घास से तिनके खाये परन्तु बम बनायेगा। अपनी इस इच्छापूर्ति हेतु धन जुटाने हेतु पश्चिम एशियाई राष्ट्रों की मदद हेतु इसका नाम इस्लामिक बम बताया। इसके साथ–साथ पाक के परमाणु वैज्ञाानिक अब्दुल कादिर खान को विदेशों से परमाणु तकनीक जानने का जिम्मा लगाया। खान ने यूरोप के विभिन्न देशों से परमाणु तकनीक की जानकारी जुटा कर काहुटा में एक प्रयोगशाला स्थापित की। इसके साथ–साथ चीन से अपने मधुर संबंधों का लाभ उठा कर कुछ परमाणु तकनीक हासिल की। इन सबके परिणामस्वरूप पाकिस्तान ने सन् 1984 में परमाणु संबर्द्धन तथा 1987 में परमाणु बम्ब की क्षमता हासिल कर ली। यद्यपि 1974 के बाद भारत ने परमाणु विस्फोट तो नही किया, परन्तु 1983 से 1988 तक पांच प्रमुख प्रक्षेपास्त्र – अग्नि, पृथ्वी, त्रिशुल, नाग व आकाश – बनाने हेतु एकीकृत दिशानिर्दिष्ट प्रक्षेपास्त्रों के विकसित करने का विस्तृत कार्यक्रम बनाया। पाकिस्तान ने भी इन प्रक्षेपास्त्रों की समकक्षता हेतु चीन व उत्तरी कोरिया से प्रक्षेपात्र प्राप्त किए। अतः दोनों देशों की परमाणु प्रतिस्पर्धा ने भी इनके संबंधों मे कटुता व संघर्ष बनाए रखा, जिससे इनके संबंध सामान्य नही हो सके।

8.3.3.4 सियाचिन ग्लेशियर विवाद

इसी घटनाक्रम के दौर में 1983 से 1986 के बीच दोनों के बीच सियाचीन ग्लेशियर पर आधिपप्त को लेकर विवाद हुआ। भारत–पाकिस्तान का सीमाकंन कश्मीर से चीन की ओर एन.जे. 9842 चोटी तक किया गया। उसके उपरान्त के दुर्गम बर्फीले क्षेत्र के बारे में कोई निशानदेही नही हुई। परन्तु यह क्षेत्र किसी भी युद्ध या शान्ति के समय दोनों देशों के मध्य विवादास्पद नहीं बना। क्योंकि यह क्षेत्र काराकोरम की पहाड़ियों से 0पर बहुत दुर्गम स्थान पर स्थित है। परन्तु इस क्षेत्र की पाक द्वारा 1963 की संधि के आधार पर हस्तांरित 'पाक अधिकृत कश्मीर' के समीप स्थित होने से अत्याधिक सामरिक महत्व का है। यह क्षेत्र विवाद मे तब आया जब अचानक 1983 में पाकिस्तान ने इस पर कब्जा करने का प्रयास किया। पाकिस्तान ने अपनी आपति इस आधार पर जताई कि यह उसके द्वारा अधिकृत कश्मीर का हिस्सा है। पाकिस्तान ने इसके साथ–साथ इस ग्लेशियर की ओर जाने वाले दर्रों को रोकने की भी कोशिश की, परन्तु खराब मौसम के कारण ऐसा करने में विफल रहा। पाकिस्तान के इरादों को निरस्त करने हेतु भारत ने अप्रैल 1984 मे एक बटालियन को वहां तैनात किया। दोनों के बीच दो वर्षों तक संघर्ष चला, जिसमें दोनों को काफी जान–माल की हानि सहन करनी पड़ी। 1989 से 1992 तक दोनों के मध्य बातचीत से इसका हल तलाशने के प्रयास भी हुए, परन्तु वे असफल रहे। इसलिए आज भी दोनों के मध्य यह विषय शान्तिपूर्ण संबंधों के विकास मे एक महत्वपूर्ण रूकावट बना हुआ है।

8.3.3.5 कट्टरवादी गतिविधियां

1990 के दशक में दोनों के मध्य दो महत्वपूर्ण आंतकवादी गतिविधियों ने संबंधों में कड़वाहट पैदा कर दी। ये घटनाएं थी – 1992 मे बाबरी मस्जिद का विध्वंस एवं मुम्बई बम विस्फोट। 6 दिसम्बर 1992 को हिन्दूत्व समर्थक लोगों ने अयोध्या में 15वीं शताब्दी में निर्मित बाबरी मस्जिद का ध्वंस कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बदले में पाकिस्तान में भी कई मंदिरों को नष्ट कर दिया गया। जिसकी भारत में कड़ी भृत्सना की गई। इस घटनाक्रम से दोनों के मध्य 'द्वि–राष्ट्रीय सिद्धांत' व 'धर्मनिरपेक्षता' का विभेद दोबारा जीवन्त हो गया। इसके बाद मुम्बई में हुई दूसरी घटना ने इसमें और गम्भीरता पैदा कर दी। 12 मार्च 1993 में मुम्बई के कई स्थानों पर बम्ब विस्फोट हुए जिसमें लगभग 250 व्यक्ति मारे गए तथा 1500 घायल हो गये। भारत की रक्षा ऐजेसिंयों ने इसे बाबरी मस्जिद के बदले के रूप में पाक खुफिया ऐजैंसी आई.एस.आई. की साजिश करार दिया। इसका प्रमाण इस बात से लगाया जा सकता है कि इन बम्ब धमाकों के सरगना दा0द इब्राहिम जैसे आंतकवादी को पाकिस्तान ने संरक्षण प्रदान किया हुआ है। आज भी भारत उन आंतकवादियों के पत्यार्पण की मांग कर रहा है। परन्तु पाकिस्तान इसे नही मानता है। अतः इन कट्टरवादी गतिविधियों ने भी रिश्तों मे एक प्रमुख अवरोध का कार्य किया है।

8.3.3.6 कारगिल युद्ध

सन् 1998 के अन्तिम व 1999 के प्रारम्भ में पाकिस्तान ने भारतीय नियन्त्रण रेखा के 150 से 200 किलोमीटर अन्दर तक कारगिल–द्रास–बटालिक क्षेत्र मे अपने घुसपैठिये, कट्टरवादी व सेना को तैनात कर दिया। पाकिस्तान ने इस दौरान भारत की 15000 से 17000 फुट की ऊँचाई वाली कुछ प्रमुख चोटियों पर कब्जा भी कर लिया। भारत ने इससे निपटने हेतु 25 मई से 26 जुलाई 1999 तक 'अपरेशन विजय' चलाया, जिसके अन्तर्गत दोनों देशों के मध्य युद्ध हुआ। यद्यपि भारत अपने कब्जे वाले क्षेत्रों को मुक्त कराने मे सफल रहा परन्तु इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। दूसरी ओर दोनों देशों के रिस्ते पुनः कड़वाहट की स्थिति मे पहुंच गए। पाकिस्तान में भी इस युद्ध के बाद वहां असैनिक सरकार का तख्ता पलट कर 12 अक्टूबर 1999 में तत्कालिन सेनाप्रमुख जनरल परवेज मुर्शरफ ने सत्ता संभाल ली। इस बदलाव से भारत–पाक संबंध और खराब हो गए। इसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान ने भारत में उग्रवादी संगठनों की गतिविधियों को तेज कर दिया। इसी कारण से 1999 मे लाल किले पर हमला, 1 अक्टूबर को जम्मू कशमीर विधानसभा पर हमला तथा दिसम्बर में भारतीय विमान IC-814 का अपहरण करके कन्धार ले जाया गया। अतः सन् 2000 तक दोनों देशों के मध्य रिस्ते अति तनावपूर्ण एवं कड़वाहट भरे रहे।

इस चरण मे मूलतः संबंध विवादस्पद ही रहे, लेकिन कहीं–कहीं एक–दो बिन्दूओं को लेकर साकारात्मक पहल भी हुई। इस दृष्टि से तीन बातें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है–प्रथम, दोनों देश 1985 मे क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने हेतु दक्षेस सगंठन के सदस्य बने। यद्यपि यह बहुपक्षीय सगंठन है, प्रमुख इनके सम्मेलनों के समय दोनों देशों के राजनेताओं के बीच द्विपक्षीय बातचीत का मौका भी मिल जाता है। द्वितीय, दिसम्बर 1988 में पाकिस्तान में बेनजीर भुट्टों की चुनी हुई सरकार व भारत में राजीव गांधी की सरकार के द्वारा परमाणु क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण पहल की जो आज भी कार्यरत है। दोनों देशों ने एक समझौते द्वारा एक–दूसरे के परमाणु सयंत्रों पर हमला न करने पर सहमति जताई जो आज भी लागू है। इस संदर्भ मे दोनों देश 1 जनवरी को प्रतिवर्ष अपने यहां परमाणु सयंत्रों की जानकारी का आदान–प्रदान करते हैं। इससे परमाणु युद्ध के खतरों की सम्भावनाओं कम होती है। तृतीय, 20 फरवरी 1999 का प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की लाहौर बस यात्रा भी दोनों देशों के मध्य सौहार्द बढ़ाने हेतु बड़ा कदम था। जिससे दोनों देशों के बीच बातचीत की पृष्टिभूमि तैयार हुई। लेकिन मुख्यतः इस चरण मे विवादों की पराकाष्ठा अधिक रही जिसके कारण से साकारात्मक पहल अधिक प्रभाव नहीं डाल सकी।

8.3.4 चतुर्थ चरणः यथास्थिति बरकरार

सन् 2000 से आज तक के भारत–पाक संबंधों में पूर्व की तरह यथास्थिति बनी हुई है। निम्न धटनाओं के उतार–चढ़ाव के दौर के बाद भी दानों देशों के संबंध मित्रता पूर्ण नही बन सके। यद्यपि इस दृष्टि से कई प्रयास हुए जो निम्न प्रकार से हैं– प्रथम, कारगिल युद्ध की कड़वाहट को समाप्त करने व नये सैन्य नेतृत्व से विचार विमर्श हेतु 14 से 16 जुलाई 2001 मे आगरा शिखर वार्ता का आयोजन हुआ जो बिल्कुल विफल रहा। दानों देशों द्वारा शिखर वार्ता के बाद कोई संयुक्त विज्ञप्ति भी जारी नही हो सकी। द्वितीय, 13 दिसम्बर 2001 को पाक समर्थित आंतकवादियों द्वारा भारतीय संसद पर हुए हमले ने स्थिति को और कठीन कर दिया। इस घटना ने दोनों देशों को युद्ध की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया जो बहुत मुश्किल से टला। तृतीय, सन् 2003 में प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी की पहल पर

फिर से विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों (सी.बी.एमज.) की शुरूआत हुई। दोनों के बीच सैन्य व असैनिक क्षेत्रों में कई कदमों की घोषणाएं, परन्तु जमीनी रूप से दोनों के रिस्तों में मित्रता नही हुई।

वर्तमान नरेन्द्र मोदी की सरकार ने भी साकारात्मक पहल करते हुए मई 2014 मे प्रधानमंत्री मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में अन्य दक्षेस देशों के राष्ट्राध्यक्षों के साथ नवाज शरीफ को भी आमन्त्रित किया। इसके बाद दोनों देशों के मध्य विदेश सचिव स्तर की वार्ताओं की घोषणा की गई। परन्तु भारत में स्थित पाकिस्तानी उच्चायुक्त ने ऐन मौके पर हुर्रियत के नेताओं को भारत के मना करने के बाद भी बातचीत हेतु बुलाया, इससे भारत ने यह बातचीत स्थागित कर दी। इसके बाद क्रिकेट विश्व कप के मौके पर नरेन्द्र मोदी ने नबाज शरीफ को टेलीफोन पर शुभकामनाएं देकर फिर से रिस्तों को सामान्य करने का प्रयास किया है। बाद में पाकिस्तान दिवस समारोह में भी विदेश राज्यमंत्री जनरल वी.के. सिंह ने पाकिस्तान उच्चायोग जाकर इस कड़ी को आगे बढ़ाया है। परन्तु इन प्रयासों के साकारात्मक नतीजे आयेगें या नहीं यह केवल समय ही बताएगा?

8.4 सारांश

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भारत व पाकिस्तान के संबंध एक विशिष्ट प्रकार के रहे है जिनमें संघर्ष, शान्ति के प्रयास व फिर संघर्ष की स्थिति रही है। यह कभी भी पूर्ण शान्ति व सौहार्द पूर्ण नही रहें। इसका मूल कारण दोनों के विभाजन का इतिहास व उससे जुड़ी नकारात्मक धटनाक्रम व साम्प्रदायिक हिंसा रहा है। इसके साथ–साथ बाह्य शक्तियों, विशेषकर शीतयुद्ध युग में, का योगदान भी नकारात्मक रहा है। इसके साथ–साथ पाकिस्तान का आन्तरिक घटनाक्रम तथा वहां प्रजातांत्रिक शाक्तियों का न पनपना भी दोनों देशों के मध्य मित्रता विकसित न होने का कारण रहा है। बाद के वर्षो ने आतंकवादी गतिविधियों का मजबुत होना व पाकिस्तान में सरकारों का कमजोर स्थिति ने भी इसे नकारात्मक रूप से ही प्रभावित किया है। कश्मीर जैसे सीमा से जुड़े मुद्दे का लम्बे समय तक हल न होने की प्रक्रिया ने भी दोनों देशों के संबंधों में कटुता को ही जन्म दिया है। आज भी दोनों देशों के नेतृत्व के बीच विश्वसनीयता का अभाव है, इसलिए दोनों के बीच वार्ताओं हेतु उचित माहौल नहीं बन पा रहा है। वर्तमान समय मे दोनों के बीच परमाणु सम्पन्नता एवं प्रक्षेपास्त्रों के विकास ने भी इस स्थिति को और जटिल बना दिया है। यद्यपि भूमण्डलीकरण व शीतयुद्ध की समाप्ति ने विभिन्न देशों को कटुता भूला कर मित्रतापूर्ण संबंधों को विकसित करने हेतु प्रेरित किया है। परन्तु भारत व पाकिस्तान इस स्थिति का अपवाद रहे हैं। अतः दोनों देशों की विरासतों, वर्तमान विश्व व्यवस्था, पाकिस्तान की आन्तरिक स्थिति को देखते हुए वर्तमान भारतीय सरकार की पहल के साकारात्मक परिणाम निकलेगे, ऐसी आशा कम प्रतीत होती है। बाकि आने वाला समय ही बताएगा।

8.5 बोध प्रश्न

क भारत–पाकिस्तान संबंधों के प्रारम्भिक दशकों मे विवादास्पद कारणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

ख भारत–पाकिस्तान ने मध्य तनाव शैथिल्य के दौर का आलोचनात्मक वर्णन करें।

ग भारत–पाकिस्तान संबंधों मे कश्मीर समस्या का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

घ भारत–पाकिस्तान संबंधों मे बाह्य शक्ति की भूमिका का आंकलन कीजिए।

ड़ शीतयुद्धोत्तर युग मे भारत–पाकिस्तान संबंधों में आये बदलावों का वर्णन कीजिए।

च भारत–पाकिस्तान संबंधों में विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों की पृष्टभुमि तथा इनकी असफलताओं के कारकों का वर्णन किजिए।

छ भारत–पाकिस्तान संबंधों में शान्ति स्थापित करने वाले उपायों का वर्णन कीजिए।

8.6 सन्दर्भ सूची

1 आर.एस. यादव, भारत की विदेश नीति, पीयरसन, नई दिल्ली, 2013

2 आर.एस. यादव एवं सुरेश ढांडा, सम्पा., इंडियाज फॉरेन पालिसीः कन्टम्प्रेरी ट्रेंडज, शिप्रा, नई दिल्ली, 2009

3 **कान्ति बाजपेयी एवं हर्ष वी. पंत, सम्पा.,** इंडियाज फॉरेन पालिसीः ए रीडर, **ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली, 2013**

4 **ललित मानसिंह एवं अन्य, सम्पा.,** इंडियाज फॉरेन पालिसीः एजेंडा फॉर टूवंटीफस्ट सेचुंरी, **कोणार्क, नई दिल्ली, 1998 (2 बाल्यूम)**

5 **रमेश ठाकुर,** दॉ पालिटिक्स एंड इकोनोमिक्स ऑफ इंडियाज फॉरेन पालिसी, **ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली, 1994**

6 **सी. राजा मोहन,** क्रोसिंग दॉ रूबिकोनः दॉ शेपिंग ऑव इंडियाज न्यू फॉरेन पालिसी, **पेंग्वीन, नई दिल्ली, 2003**

इकाई–9 भारतीय विदेश नीति के बदलते आयाम

इकाई की रुपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 विदेशनीति मे परिवर्तन कब और क्यों आते हैं?

9.3 भारतीय विदेशनीति में स्थाई परिवर्तन लाने वाले घरेलू कारक

9.4 भारतीय विदेशीनीति में स्थई परिवर्तन लाने वाले बाह्य कारक

9.5 शीत युद्धोत्तर काल में भारतीय विदेशनीति में अभि प्रमुख परिवर्तन

9.6 सारांश

9.7 प्रमुख शब्द

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- उन कारकों को समझ सकेंगे जिनकी वजह से किसी देश की विदेशनीति में स्थाई परिवर्तन आते हैं।
- भारतीय विदेशनीति में निर्णायक परिवर्तन लाने वाले आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के बारे में जान सकेंगे।
- शीत युद्धोत्तर काल में भारतीय विदेशनीति में आये प्रमुख परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

9.1 परिचय

इस इकाई के अंतर्गत आप इस बात का अध्ययन करेंगे कि किसी भी देश की विदेश नीति में स्थाई एवं निर्णायक परिवर्तन कब और क्यों आते हैं। इस इकाई में आप उन आन्तरिक एवं बाह्य कारकों एवं परिस्थितियों का भी अध्ययन करेंगे जिन्होंने भारत की विदेशनीति में स्थाई एवं टिका0 बदलाव उत्पन्न किया तथा इसके साथ ही साथ शीतयुद्धोत्तर काल में भारतीय विदेश नीति में आये परिवर्तनों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9.2 विदेशनीति में परिवर्तन कब और क्यों आते हैं?

1990 का दशक भारतीय विदेश नीति के लिए एक संक्रमण काल रहा है। 1990 के दशक में भारतीय नीति निर्माताओं ने भारत की विदेश नीति को शीतयुद्धोत्तर कालीन विश्व व्यवस्था के अनुरूप ढालने का प्रयास किया, जिसकी वजह से भारतीय विदेश नीति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। वैसे परिवर्तन की यह प्रक्रिया 1985 से, अर्थात राजीव गाँधी के शासन काल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी, परन्तु 1991 से विश्व राजनीति में आये क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने भारतीय विदेश नीति में आ रहे बदलावों की गति को और अधिक तीव्र कर दिया। सी0 राजामोहन ने अपनी पुस्तक 'क्रासिंग द रूबिकान' में लिखा है कि "1990 के दशक के उत्तरार्ध में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार के अधीन भारतीय विदेश नीति में आ रहे परिवर्तन निश्चित रूप से त्वरित हुए हैं । वैसे इन परिवर्तनों का प्रारम्भ 1980 के दशक के मध्य से हो चुका था और इन परिवर्तनों को भारतवर्ष के हर रंग के राजनीतिक दल ने समर्थन देकर वैश्विक मामलों में नई दिल्ली के बिल्कुल भिन्न उपागम की पृष्ठ भूमि तैयार की है।"

सी0 राजामोहन का मत है कि "राज्य अपनी विदेश नीति के प्रति प्रायरू रूढ़िवादी होते हैं। विदेश नीति में मूलभूत परिवर्तन प्रायरू तभी आते हैं जबकि या तो राष्ट्र के भीतर या राष्ट्र के बाहर क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हों।

1991 में भारतवर्ष के समक्ष ठीक ऐसी ही परिस्थिति थी, राष्ट्र के भीतर पुरानी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था ढह चुकी थी, और राष्ट्र के बाहर शीतयुद्ध की समाप्ति ने उन सारे मील के पत्थरों को उखाड़ दिया था जो भारत की विदेश नीति का पथ प्रदर्शन किया करते थे।"

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही उत्तर लिखें।

2) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) किसी भी देश की विदेश नीति में स्थाई परिवर्तन कब और क्यों आते हैं?

....
....
....
....
....
....
....
....
....

9.3 भारतीय विदेश नीति में स्थाई परिवर्तन लाने वाले घरेलू कारक

घरेलू राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में आये जिन परिवर्तनों की ओर सी0 राजामोहन नं संकेत किया है, वे निम्नवत् है –

1. केन्द्र में एक दलीय शासन को गठबंधन सरकारों के शासन ने प्रतिस्थापित कर दिया है अर्थात् केन्द्र में एक दलीय शासन के स्थान पर साझा (ण्दलूंगदह) सरकारों का शासन स्थापित हो चुका हैय
2. भारतीय राजनीति में उच्च जातियों के वर्चस्व को दलित वर्गों एवं निम्न जातियों द्वारा चुनौती दे दी गयी है। और अब उच्च जातियाँ, निम्न जातियों एवं दलितों को समायोजित करने के लिए बाध्य हो गयी हैंय
3. धर्म निरपेक्षता की अवधारणा को पुनरू परिभाषित करने के प्रयास किये जा रहे हैंय
4. आर्थिक क्षेत्र में राज्य नियंत्रित समाजवाद पीछे हट रहा है। और उसका स्थान उदारवादी पूँजीवाद ले रहा है।

बोध प्रश्न २

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

2) अध्याय के अंत में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भारत की विदेश नीति में शीत युद्धोत्तर काल में स्थाई परिवर्तन लाने वाले प्रमुख कारकों वड्ढा उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

9.4 भारतीय विदेश नीति में स्थाई परिवर्तन लाने वाले बाह्य कारक

वे प्रमुख वाह्य परिवर्तन जिन्होंने भारतीय विदेश नीति को संक्रमण एवं परिवर्तन के लिए बाध्य किया है, निम्नवत् है –

1. सोवियत संघ का विघटन एवं शीत युद्ध का अंतय

2. संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व की एक मात्र सर्वोच्च शक्ति एवं वैश्विक पुलिस मैन के रूप में उदयय

3. आर्थिक वैश्वीकरण की लहरय

इन आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्तनों की वजह से 1980 के दशक के मध्य से ही भारतीय विदेश नीति में धीमे परन्तु निश्चित एवं स्थायी परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गये थे और इन परिवर्तनों में 1990 के दशक से गति प्राप्त कर ली है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

1) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भारत की विदेश नीति में स्थाई परिवर्तन लाने वाली अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

9.5 शीत युद्धोत्तर काल में भारतीय विदेश नीति में आये प्रमुख परिवर्तन

भारतीय विदेश नीति में प्रथम संक्रमण यह देखने को मिलता है कि अब भारत में एक समाजवादी समाज बनाने के स्थान पर एक आधुनिक पूँजीवादी समाज के निर्माण पर राष्ट्रीय आम सहमति बन गयी है। 1970 के दशक में भारतीय राजनीतिक विमर्श में समाजवादी आदर्श इतना हावी था कि 1976 में 42वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान के आमुख में 'समाजवादी' शब्द जोड़ा गया। परन्तु 1991 में समाजवाद के सबसे बड़े प्रतीक, पथप्रदर्शक एवं प्रेरक सोवियत संघ का विघटन हो गया और इस वजह से भारतीय मानस भी समाजवाद पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य हो गया। तत्पश्चात् वैश्वीकरण की प्रवृत्तियों के प्रभाव में आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण भारत का प्रमुख राष्ट्रीय उद्देश्य बन गया ।

इस महत्वपूर्ण आन्तरिक परिवर्तन ने भारतीय विदेश नीति को मौलिक रूप से प्रभावित किया और भारत की सोवियत संघ और समाजवादी गुट से नजदीकियाँ कम होने लगी तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ कदम मिलाकर चलना एवं पाश्चात्य पूँजीवादी देशों से दूरियाँ कम करना भारतीय विदेश नीति की सफलता की कसौटी बन गया। इन परिस्थितियों में भारत का अमेरिका की ओर झुकाव स्वाभाविक था। भारतीय विदेश नीति निर्माताओं ने अमेरिका के साथ सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने की राजनयिक मुहिम छेड़ दी। 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका के विशव व्यापार केन्द्र' पर आतंकवादी हमले के पशचात भारत सरकार द्वारा अमेरिका को आतंकवादियों पर हमला करने के लिए सैन्य अड्डे एवं सुविधाएं देने की पेशकश एवं इसके पूर्व 1 मई 2001 को भारत सरकार द्वारा बुश प्रशासन द्वारा घोषित

विवादास्पद 'राष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र प्रतिरक्षा' कार्यक्रम को समर्थन देने की घोषणा भारतीय विदेश नीति के पाश्चात्यमुखी होने के ठोस प्रमाण हैं। तत्पश्चात जुलाई २००5 में हुए भारत–अमेरिका परमाणु समझौते का अंततोगत्वा अक्टूबर २००8 में भारत–अमेरिकी 'असैनिक परमाणु संधि' में तबदील हो जाना भारतीय विदेश नीति के पाश्चात्य देशों की ओर झुकाव का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

भारतीय विदेश नीति में शीतयुद्धोत्तर काल में आया दूसरा प्रमुख परिवर्तन भी प्रथम परिवर्तन से संबंधित है। 1991 से पूर्व भारतीय विदेश नीति के निर्माण में राजनीतिक तत्वों का वर्चस्व रहता था। परन्तु 1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति के निर्माण में आर्थिक तत्व पर ज्यादा जोर दिखाई देता है। 1990 के दशक में भारत ने यह महसूस किया कि वह चीन सहित एशियाई देशों की तुलना में आर्थिक विकास के क्षेत्र में बहुत पिछड़ गया है। भूतकाल में समाजवादी आदर्श का अनुसरण करने की वजह से भारतीय राजनयिकों ने वाणिज्यिक राजनय की उपेक्षा की । वर्तमान समय में भारतीय राजनयिकों द्वारा भारत को एक उभरते हुए बाजार तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक महाशक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। समाजवादी पूर्वाग्रह के समाप्त हो जाने के पशचात अब भारतवर्ष उभरती हुई बाजार व्यवसायों के साथ प्रतियोगिता करने का प्रयास कर रहा है। पूर्व में भारतीय राजनय विदेशी वित्तीय संस्थाओं के समक्ष आर्थिक सहायता की भिक्षा के लिए प्रयासरत था। इसके स्थान पर अब भारतवर्ष विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश तथा विकसित देशों के बाजार में अपनी पैठ बनाने के लिए भरसक राजनयिक प्रयास कर रहा है। दूसरे शब्दों में, वर्तमान समय में भारतीय विदेशनीति की प्राथमिकता 'ट्रेड' है। 'एड' नहीं।

भारतीय विदेश नीति में तीसरा परिवर्तन यह आया है कि भारत ने अब तृतीय विश्व के साथ भाईचारे की नीति अर्थात 'तृतीय विश्ववाद' की नीति का परित्याग करके अपने व्यक्तिगत हित का प्रोत्साहन करने की नीति का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया है। भारतवर्ष द्वारा अमेरिका के साथ सहयोग की नीति अपनाकर ईरान के नाभिकीय प्रचुरण मामले में ईरान के विरुद्ध मत देने का निर्णय भारत द्वारा 'तृतीय विश्ववाद' का त्याग करने का ठोस उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि अब भारत तृतीय विश्व के व्यापार संघ का नायक बनने के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रबंध तंत्र का हिस्सा बनना चाहता है।

पाश्चात्य विरोधी चिंतन का परित्याग भारतीय विदेश नीति में आया चौथा प्रमुख बदलाव है। यूरोपीय अटलांटिक समुदाय के बाहर विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र के रूप में भारत ही पाश्चात्य राजनीतिक मूल्यों के प्रति सबसे अधिक वचनबद्ध रहा है, फिर भी शीत युद्ध के दौरान और अपने उपनिवेशवादी शोषण के अनुभव की वजह से भारत नवउपनिवेशवादी राष्ट्रों का सबसे मुखर विरोधी रहा है।

सी0 राजामोहन ने अपनी पुस्तक ''क्रासिंग द रुबिकान' में लिखा है कि '' 1980 के दशक में संयुक्त राष्ट्र के भीतर एवं बाहर भारत सोवियत संघ से अधिक बार अमेरिका के विरुद्ध मत दे रहा था।'' परन्तु शीतयुद्धोत्तर काल में अर्थात 1991 के पश्चात भारत ने अमेरिका के विरुद्ध मत देने की जगह उसका समर्थन करने की नीति अपना ली। इसका एक प्रमुख कारण 1991 में भारत के मित्र सोवियत संघ का विघटन हो जाना तथा उसके उत्तराधिकारी रूस का 'सुपर पावर' न रह जाना है।

1990 के दशक में भारत की विदेश नीति में आया पाँचवाँ और अंतिम परिवर्तन यह है कि अब भारतीय विदेश नीति में आदर्शवाद के स्थान पर प्रयोजनवाद हावी होने लगा है। भारत की विदेश नीति 1947 से 1991 तक असंलग्नता , पंचशील, शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व, नस्लवाद का विरोध जैसे आदर्शवादी उद्देश्यों से ओत–प्रोत रही है। स्वतंत्र भारत के राजनेताओं में 'शक्ति की राजनीति' के प्रति उपेक्षा का भाव रहा है। दूसरे राष्ट्रों में, 1947 से 1991 तक भारत 'सिद्धान्तों की शक्ति' पर अधिक विशवास करता रहा है। परन्तु अब शीतयुद्धोत्तर काल में भारत 'शक्ति के सिद्धान्त' की ओर स्पष्ट रूप से प्रवृत्त हो रहा है। मई 1998 में किये गये शक्ति नाभिकीय परीक्षण इसका पुष्ट प्रमाण है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखें।

२) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) शीतयुद्धोत्तर काल में भारतीय विदेशनीति में आये प्रमुख परिवर्तनों का विवेचन कीजिए।

....

....

....
....
....
....
....
....
....

9.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शीत युद्धोत्तर काल में भारतीय विदेश नीति ने आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर संक्रमण किया है। अर्थात भारत ने अपनी विदेश नीति को पूर्णरूपेण राष्ट्रीय हित पर आधारित करने और नयी विश्व व्यवस्था के अनुरूप इसे ढालने के लिए अटल कदम उठा लिये हैं।

9.7 प्रमुख शब्द

डब्लू.टी.ओ. : वर्ल्ड ट्रेड आर्गनाइजेशन या विश्व व्यापार संगङ्गन

एन.एम.डी. : नेशनल मिसाइल डिफेन्स अथवा राष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र प्रतिरक्षा

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सी. राजा मोहन : क्रासिंग दि रुबिकॉन : दि शेपिंग ऑफ इंडियाज न्यू फॉरेन पॉलिसी

यू.आर. घई : भारतीय विदेश नीति

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

देखिए भाग 9.२

बोध प्रश्न २

देखिए भाग 9.3

बोध प्रश्न 3

देखिए भाग 9.4

बोध प्रश्न 4

देखिए भाग 9.5

इकाई 10 गुटनिरपेक्षता : उपलब्धियाँ एवं प्रासंगिकता

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 उद्भव, विकास एवं उद्देश्य

10.3 उपलब्धियाँ

10.4 प्रासंगिकता

10.5 भारत और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन

10.6 सारांश

10.7 प्रमुख शब्द

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पाढने के बाद आप

- उन वैश्विक परिस्थितियों को समझ सकेंगे जिनके कारण एवं जिनके अंतर्गत गुटनिरपेक्षता की नीति एवं गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का उदय हुआ।
- गुट निरपेक्षता की अवधारणा, उसके उद्भव एवं विकास तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के उद्देश्यों के बारे में जान सकेंगे।
- गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियों को समझ सकेंगे।
- शीत युद्धोत्तर काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन प्रासंगिक है अथवा नहीं, इस विषय में जान सकेंगे। तथा
- भारत और गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सम्बन्ध को और गुट निरपेक्षता की नीति एवं गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्भव एवं विकास में भारत की भूमिका को समझ सकेंगे।

10.1 परिचय

इस इकाई में आप गुट निरपेक्षता के अर्थ एवं अवधारणा का अध्ययन करेंगे। गुट निरपेक्षता की नीति एवं गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्भव तथा विकास की ऐतिहासिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के उद्देश्यों एवं उपलब्धियों के बारे में जानेंगे। यहाँ आप यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि शीत युद्धोत्तर कालीन परिस्थितियों में गुट–निरपेक्ष आन्दोलन प्रासंगिक है अथवा नहीं। इस इकाई के अन्त में आप गुट निरपेक्षता की नीति एवं गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्भव एवं विकास में भारत की भूमिका का अध्ययन करेंगे तथा भारत और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सह–सम्बन्ध को भी समझ सकेंगे।

10.2 उद्भव, विकास एवं उद्देश्य

गुटनिरपेक्षता की नीति के मूल द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल की उस विश्व राजनीति में निहित हैं जो पश्चिम यूरोपीय साम्राज्यवादी व्यवस्था के ढाहने के फलस्वरूप विकसित हुई थी। पाश्चात्य देशों की औपनिवेशिक व्यवस्था का विघटन 1946 में प्रारम्भ हुआ और 1960 के दशक में अफ्रीका तक पैहल गया। इस विउपनिवेशीकरण के फलस्वरूप सहसा अनेकों ऐसे स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ जो राजनीतिक और आर्थिक विकास की जिम्मेदारियों और

चुनौतियों से जूझ रहे थे। ये सारे राष्ट्र उपनिवेशवादी शोषण के शिकार रह चुके थे, जिसने इन राष्ट्रों की एकता और संस्कृतिक विरासत को छिन्न–भिन्न कर दिया था। उपनिवेशवाद ने इन देशों की जनता में सर्वातोमुखी पत्तन उत्पन्न किया और उनकी राष्ट्रीय भावना को क्षीण कर दिया था। अतरू नवोदित राष्ट्रों के समक्ष अपने उपनिवेशवादी भूतकाल के अवशेषों पर राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण का दुर्गम कार्य उपस्थित था।

द्वितीय विश्व युद्धोत्तरकाल का विश्व 1950 के दशक में वैचारिक समूहों और सैन्य गुटों में विभक्त हो चुका था। नाटो, वार्सा पैक्ट, सेन्टो (Central Treaty Organization = CENTO) सियाटो (South East Asian Treaty Organization = SEATO) आदि सैन्य गुटों के निर्माण के फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोपीय एवं एशियाई विश्व सैन्य गुटों में विभक्त हो चुका था। वार्सा पैक्ट के अतिरिक्त अन्य सारे सैन्य मोर्चों के रूप में स्थापित किए गए थे। वार्सा पैक्ट का उद्देश्य अमेरिकी नेतृत्व वाले सैन्य गुटों के प्रतिरोध का सामना करना था। इस प्रकार की विखण्डित विश्व व्यवस्था में ऐफ्रो–एशियाई और लैटिन अमेरिकी देशों के समक्ष मात्र दो विकल्प थे : किसी न किसी सैन्य गुट में सम्मिलित होकर शीत युद्ध का प्रतिभागी बन जाना, या गुट निरपेक्ष रहकर स्वतंत्र एवं स्वायत्त विदेश नीति एवं अर्थनीति का अनुगमन करते हुए आपसी सहयोग के माध्यम से आर्थिक विकास करना और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना। प्रथम विकल्प में पुनः नव–उपनिवेशवाद और नव–साम्राज्यवाद का शिकार होकर अपनी विदेश नीति को अमेरिकी या सोवियत हितों के अधीन कर देने के खतरे निहित थे। उपनिवेशवाद द्वारा शोषित कोई भी राष्ट्र हर कीमत पर इस विकल्प से बचना चाहता था और सैन्य गुटों की राजनीति में फँसकर शीत युद्ध का शिकार नहीं होना चाहता था। अतः इस प्रकार की परिस्थितियों में ऐफ्रो एशियाई और लैटिन अमेरिकी देशों के लिए दूसरा विकल्प अर्थात् निर्गुट रहकर आपसी सहयोग द्वारा अपना विकास सुनिश्चित करना ही उपयुक्त था। इस प्रकार भारत जैसे तमाम विकासशील देशों के लिए जो सैन्य गुटों (Military Blocs) की प्रतिद्वंद्विता और उनकी टकराव की नीति में उलझे बिना राष्ट्रीय विकास सुनिश्चित करना चाहते थे, गुटनिरपेक्षता की नीति उनकी विदेश नीति का आधार बन गयी क्योंकि गुटनिरपेक्षता की नीति विदेश नीति के संचालन में स्वायत्तता और सम्प्रभुता के आग्रह का प्रतीक थी।

गुटनिरपेक्षता की अवधारणा के बीच जवाहर लाल नेहरू के उस भाषण में खोजे जा सकते हैं जो उन्होंने 7 सितम्बर 1946 को वायसराय की कार्यकारी परिषद् के उपाध्यक्ष के रूप में रेडियो के माध्यम से प्रसारित किया गया था। इस रेडियो प्रसारण में नेहरू ने घोषित किया था कि "जहाँ तक सम्भव हो सके, हम उन समूहों की शक्ति–राजनीति से दूर रहने का प्रस्ताव रखते हैं जो एक–दूसरे के विरूद्ध संगठित किए गए हैं और जिन्होंने भूतकाल में दो विश्व युद्धों को जन्म दिया है और भविष्य में पुनः इससे भी बड़ी महाविपत्ति को जन्म दे सकते हैं।" अपनी इस अवधारणा की व्याख्या आगे चलकर नेहरू ने 8 मार्च 1948 को अपने संविधान सभा के भाषण के दौरान की। नेहरू ने कहा कि "गुटनिरपेक्षता की नीति का आरम्भ भारतीय राष्ट्रीय हितों एवं भारतीय सुरक्षा की रक्षा करने वाली नीति के रूप में किया गया था।" जैसे–जैसे विश्व के तमाम विउपनिवेशीकरण हुआ, उन्होंने सैन्य गुटों में सम्मिलित होने के बजाय गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाने को अपने हितों के अधिक अनुकूल समझा।

गुटनिरपेक्षता की नीति को एक आंदोलन में परिवर्तित करने के उद्देश्य से यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो, मिस्र के गमल अब्दुल नासिर और भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू (Big three of NAM) ने जुलाई 1956 में यूगोस्लाविया के बिआनी द्वीप पर एक बैठक की जिसमें गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने वाले राष्ट्रों का एक सम्मेलन आयोजित करने की सम्भावना पर चर्चा की गयी। बिआनी सम्मेलन के पश्चात् गुटनिरपेक्षता एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन बन गयी। अप्रैल 1961 में टीटो और नासिर ने एकबार फिर मिलकर गुटनिरपेक्ष देशों का आन्दोलन बुलाने हेतु अन्य गुटनिरपेक्षों राष्ट्रों को अगाह करने का निश्चिय किया। इस प्रकार नेहरू, नासिर, टीटो के प्रयासों के फलस्वरूप सितम्बर 1961 में प्रथम गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में आयोजित किया गया जिसमें 25 देशों ने भाग लिया। इसके 28 वर्ष पश्चात् 1989 में ब्रेलग्रेड में ही नौवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें 101 देशों ने प्रतिभागिता की आज गुटनिरपेक्ष देशों की संख्या लगभग 120 है और इसका 14वाँ सम्मेलन सितम्बर 2006 में क्यूबा की राजधानी में हवाना में सम्पन्न हो चुका है तथा 17वाँ निर्गुट सम्मेलन 2016 में वेनेजुएला में सम्पन्न होने वाला है। गुटनिरपेक्षता को मूलतः शीत युद्ध से असम्बद्धता (dissociation from cold war) के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। जार्ज श्वार्जन बर्जर के अनुसार गुटनिरपेक्षता सैन्य संगठनों से पृथक रहने की नीति है। गुटनिरपेक्षता शब्द की व्युत्पत्ति के बावजूद इस नीति के अर्थ में शीत युद्ध, सैन्य संगठनों अथवा वैश्विक समूहों से पृथक रहना मात्र ही सम्मिलित नहीं है। सैन्य और वैचारिक गुटों से पृथक रहना गुट निरपेक्ष आन्दोलन का अपने आप में एक साध्य नहीं था बल्कि यह कुछ अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक परम आवश्यकता एवं पूर्व शर्त थी।

सैन्य एवं वैचारिक गुटों से पृथक रहते हुए गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने व्यापक और पूर्ण निःशस्त्रीकरण की मांग की, उपनिवेशवाद और नस्लवाद के विरूद्‌ध आवाज उठाई तथा इसके अन्त के लिए अपना ध्यान केन्द्रित किया तथा साथ ही में यह आन्दोलन आतंकावाद, मादकद्रव्यों की तस्करी तथा पर्यावरणीय मुद्‌दों को अपने उद्देश्यों की सूची में सम्मिलित कर चुका है। भारतीय स्त्रातेजिक विचारक के. सुब्रहम्ण्यम के शब्दों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का मूल उद्देश्य विश्व समुदाय को एक विश्व की अवधारणा के करीब ले जाना है। अतः स्पष्ट है कि वैश्विक सहयोग और विश्व शान्ति गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के आधारभूत उद्देश्य हैं। क्योंकि इनके बिना 'एक विश्व' का सपना साकार नहीं किया जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों से भिन्न नहीं है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही उत्तर लिखें।

२) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्‌भव, विकास एवं उद्देश्यों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

10.3 उपलब्धियाँ

1960, 70 और 80 के दशकों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व राजनीति की सबसे प्रधान प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान रहा। एक विश्वव्यापी घटना के रूप में इस दौरान गुट निरपेक्ष आन्दोलन ध्रुवीयकृत और गुटों की विश्वव्यापी राजनीति के विरूद्‌ध एक सामूहिक आन्दोलन सिद्‌ध हुआ। इस आन्दोलन में द्वितीय विश्व युद्‌धोत्तर कालीन युग में दो प्रतिद्वंद्वी ध्रुवों में विभाजित विश्व को एक तीसरा संतुलक ध्रुव प्रदान किया जिसने नाटो एवं वार्सा पैक्ट के दोनों सैन्य गुटों से समदुरस्थता बनाये हुए शीत युद्‌ध से विषाक्त विश्व राजनीति में एक सामंजस्य कर्ता समूह की भूमिका निभाई और विश्व को तीसरे विश्व युद्‌ध की विभीषिका से बचाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न किया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अस्तित्व में आने के पश्चात् उभरी विश्व व्यवस्था उस समद्विबाहु त्रिभुज की भांति हो गई जिसका आधार शीत युद्‌ध की राजनीति से निर्मित था और आधार के दोनों शीर्षों पर नाटो और वार्सा पैक्ट के सैन्य गुट विद्यमान थे जो कि शीत युद्‌ध जनित प्रतिद्वंद्विता से जुड़े हुए थे तथा इस त्रिभुज के शीर्ष पर गुटनिरपेक्ष देशों का समूह विद्यमान था। इस प्रकार की विशेष व्यवस्था को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

1960, 70 और 80 के दशकों के दौरान गुटनिरपेक्ष आन्दोलन पूर्ववर्ती उपनिवेशों की आर्थिक विषमता, सामाजिक, राजनीति अन्याय और औद्योगिक तथा औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा रंगभेद और नस्लभेद पर आधारित अन्याय और भेदभाव पूर्ण व्यवहार के प्रति विरोध की अभिव्यक्ति थी। दूसरे शब्दों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विभिन्न प्रकार के दमन, प्राधन्य (Hegemony), अधीनता और नवउपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोध की अभिव्यक्ति रहा है। इसके साथ ही साथ गुटनिरपेक्ष देशों के समूह ने संयुक्त राष्ट्र के भीतर एक 'बारगेनिंग काउन्टर' (Bargaining Counter) या गरीब देशों (Havenots states) के 'विश्वव्यापी व्यापार संघ' (Global Trade Union) की भूमिका निभाई है। वैश्विक मामलों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन प्रधानतः उन नवस्वतंत्र एवं नवोदित राष्ट्रों के मध्य बंधुत्व और भाई–चारे का आन्दोलन (Solidarity Movement) रहा है ये देश अल्पविकास (Underdevelopment) और कुविकास (Maldevelopment) की चिरकालिक समस्याओं से घिरे रहते हुए एक अत्यधिक अन्तर्निर्भरता वाले विश्व में स्वतंत्रा और

समानता की स्थिति एवं संस्तर को प्राप्त करने का प्रयास करते रहे हैं। संघर्षशील लोगों के आन्दोलन (Movement of the People in struggle) के रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन पाँच प्रमुख वैश्विक चुनौतियों से जूझता रहा है। जिन्हें इस आन्दोलन की पाँच जिम्मेदारियाँ या फाइव डीज ऑफ नैम (5 D's of NAM) भी कहा गया है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उन पाँच चुनौतियों को डिकोलोनाइजेशन (उपनिवेशीकरण), देतान्त (तनाव शैथिल्य), डिवेलपमेन्ट (विकास), डिर्जामेन्ट (निःशस्त्रीकरण) और डेमोक्रेटाइजेशन (प्रजातंत्रिकरण) के नाम से जाना जाता रहा है।

उपरोक्त चुनौतियों के विरुद्ध एक आन्दोलन के अतिरिक्त गुटनिरपेक्षता की नीति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों को उनके गुण दोषों के आधार पर निर्णीत करने की क्षमता की अभिव्यक्ति भी है। इस प्रकार की क्षमता का एक स्वाभाविक निष्कर्ष शीत युद्ध से असम्बद्ध रहना रहा है क्योंकि शीत युद्ध गुटीय राजनीति से असम्बद्ध रहने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर निष्पक्ष निर्णय लिया जा सकता है। इस प्रकार गुटनिरपेक्षता विदेश नीति की स्वतंत्रा और स्वायत्तता का आग्रह करती है और साथ ही साथ यह विश्व राजनीति में विविधता को मान्यता देते हुए हर प्रकार की वैश्विक विविधता (World's diversity) के समपोषण (Sustenance) एवं संरक्षण (Preservation) की स्त्रातेजी है।

अतः स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्षता द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कालीन विश्व व्यवस्था के दौरान उभरी एक ऐसी क्रान्तिकारी और अनूठी नीति थी जिसने सैन्य एवं वैचारिक गुटों में विभाजित शीत युद्धकालीन विश्व में उपनिवेशवाद से शोषित, अविकसित एवं अल्पविकसित राष्ट्रों को राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए आपसी सहयोग पर आधारित एक विकल्प प्रस्तुत किया और साथ ही साथ गुटों की की प्रतिद्वन्द्विता और शीत युद्ध, नवउपनिवेशवाद और नवसाम्राज्यवाद से निपटने हेतु एक सशक्त स्त्रातेजी प्रदान की। शीत युद्धोत्तर कालीन विश्व व्यवस्था, द्वितीय विश्व युद्धोत्तर कालीन विखण्डित विश्व व्यवस्था के विपरीत एक भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था है जिसमें गुटनिरपेक्षता की नीति एवं गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर विचार करने की महती आवश्यकता है।

बोध प्रश्न २

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

२) अध्याय के अंत में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

10.4 प्रासंगिकता

1960, 70 तथा 80 के दशकों में नाटो और वार्सा पैक्ट नामक दो वैचारिक और सैन्य गुटों की राजनीति से प्रभावित विश्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एक समदूरस्थ सन्तुलक (Equdistant Balancer) के रूप में अपनी भूमिका निभाता रहा। उपरोक्त दशकों के दौरान नाटो और वार्सा पैक्ट शीत युद्ध से असम्बद्ध और तटस्थ रहते हुए शीत युद्ध जनित प्रतिद्वन्दिता और कटुता कम करने वाली नीति थी। इस प्रकार गुटनिरपेक्ष देशों का समूह नाटो और वार्सा पैक्ट से समदूरस्थ और शीत युद्ध से असम्बद्ध विश्व राजनीति का एक तीसरा ध्रुव था। इस प्रकार की विश्व व्यवस्था को निम्न समद्विबाहु त्रिभुज द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

1960 के दशक में विभिन्न शस्त्र परिसीमन एवं निःशस्त्रीकरण के समझौतों के फलस्वरूप अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य तनाव शैथिल्य उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात 1980 के दशक के अन्त होते–होते शीत युद्ध की प्रतीक स्वरूप बर्लिन वाल ढह गई तथा 1991 में सोवियत संघ का विघटन हो गया और शीघ्र ही वार्सा पैक्ट का विघटन कर दियाप गया। 1990 के दशक में पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों का प्रजातन्त्रीकरण हो गया और सम्पूर्ण यूरोप यूरोपीय

संघ नामक एक आर्थिक इकाई में तब्दील हो गया। इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विश्व राजनीति से शीत युद्ध का विलोपन हो गया और सार्वत्रिक प्रजातन्त्रीकरण के फलस्वरूप वैचारिक प्रतिद्वन्द्विता का भी लोप हो गया। इसके साथ ही साथ विश्व में सूचना प्रौद्योगिकी की क्रान्ति (IT Revolution) और आर्थिक एकीकरण (Economic Integration) के फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्धोत्तर कालीन ध्रुवीय, गुटीय और विखण्डित विश्व व्यवस्था का विघटन हो गया और इसके स्थान पर एक भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था (Globalized world order) का प्रादुर्भाव हुआ। इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों के फलस्वरूपों विश्व राजनीति का ध्रुवीकरण (Polarization of world politics) समाप्त हो गया और विश्व राजनीति का भूमण्डलीकरण (Globalization of world politics) हो गया। दूसरे शब्दों में उपर निर्मित त्रिभुज द्वारा प्रदर्शित विश्व व्यवस्था का अन्त हो गया और इसका स्थान एक भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था ने ले लिया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 1990 के दषक में उन तमाम वैश्विक परिस्थितियों का विलोपन हो गया जिनकी प्रतिक्रिया स्वरूप द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल में गुटनिरपेक्षता की नीति और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। अतः वर्तमान भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था में गुटनिरपेक्षता की नीति और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उपादेयता और प्रासंगिकता (Utility and Relevance) पर प्रश्न चिन्ह लगने प्रारम्भ हो गये। इन परिस्थितियों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता पर एक विमर्श (Discourse) छिड़ गया और इस पर विचार करना स्वाभाविक एवं आवश्यक हो गया।

चूँकि निर्गुटता और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन वैचारिक और सैन्य गुटों से और गुटों की राजनीति से पृथक रहने की नीति रही है अत: CENTO, CEATO और वार्सा पैक्ट के विघटन के पश्चात् यह प्रश्न उठाया जाने लगा कि गुटों से विहीन विश्व में निर्गुटता की नीति प्रासंगिक कैसे प्रासंगिक हो सकती है। चूँकि गुट निरपेक्षता की नीति शीत युद्ध से सम्बद्ध और तटस्थ रहने की नीति थी। अत: आज जब शीत युद्ध का अन्त हो चुका है तो इस शीत युद्धोत्तर काल में गुटनिरपेक्षता की नीति कैसे हो सकती है। चूँकि गुटनिरपेक्षता की नीति का अभ्युदय और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का आविर्भाव द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल के गुटों से विकीर्ण और गुटों में विभाजित एक विखण्डित विश्व व्यवस्था के परिणामस्वरूप हुआ था अतः शीत युद्धोत्तर काल की गुटविहीन और भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था में गुटनिरपेक्षता की नीति की क्या उपादेयता हो सकती है? चूँकि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विउपनिवेशीकरण के के लिए छेड़ा गया एक आन्दोलन था अत: पूर्णरूपेण विउपनिवेशित विश्व से इस आन्दोलन की क्या प्रासंगिकता है? चूँकि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व के प्रजातन्त्रीकरण (Democratization of the world) के लिए एक आन्दोलन रहा है अतः शीत युद्धोत्तर कालीन सार्वत्रिक प्रजातंत्रीकरण (Universal Democratization) के इस काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता अवश्य कम हुई है? चूँकि यह आन्दोलन नस्लवाद के विरुद्ध एक आन्दोलन रहा है और आज के विश्व में नस्लवादी व्यवहार लगभग विलुप्त हो चुका है अतः निर्गुट आन्दोलन की उपयोगिता अवश्य कम हुई है।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और गुटनिरपेक्षता की नीति की प्रासंगिकता पर उठाये गये उपरोक्त सभी प्रश्न काफी हद तक उचित प्रतीत होते हैं। परन्तु गुट निरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका एवं उपादेयता को केवल उपरोक्त मुद्दों के सन्दर्भ में ही आँकना उचित नहीं होगा क्योंकि यह इस आन्दोलन को और इसकी उपयोगिता को बहुत ही सीमित दायरे में बाँधने के तुल्य होगा। CENTO, SEATO और वार्सा पैक्ट जैसे सैन्य गुटों का विघटन भले ही हो गया हो परन्तु इस प्रकार के गुटों का पुनः प्रादुर्भाव हो सकता है। नाटो नामक सैन्य समूह आज भी विद्यमान है। शायद इन्हीं बातों को ध्यान में रखते पूर्व प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने 1992 में में जकार्ता में हुए निर्गुट शिखर सम्मेलन के दौरान कहा था कि "विश्व में आज भले ही केवल एक सैन्य गुट शेष बचा हो, हम उससे भी निर्गुट रह सकते हैं।" ठीक 10 वर्ष पश्चात् फरवरी 2003 में मलेशिया की राजधानी क्वालालमपुर में हुए निर्गुट शिखर सम्मेलन के पूर्व जनवरी 2003 के अन्तिम सप्ताह में क्यूबा के उपविदेश मंत्री, अबेलार्डो मोरनो ने फ्रंटलाइन मैग्जीन को दिए गये अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि "हमें इस बात में अब कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि हम अब एक ध्रुवीय विश्व में रह रहे हैं और कुछ देशों की (अमेरिका) वैश्विक मामलों में बढ़ती एकपक्षीयता या दादागीरी (Unilateralism) के तथ्य से हम सुपरिचित हैं। अत: हमें आज इस एकपक्षीयता के विरुद्ध गुटनिरपेक्ष देशों को और अधिक संगठित करने की आवश्यकता है। कुछ देशों द्वारा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को अप्रासंगिक और कालातीत (Irrelevant and Out-Dated) सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु गुटनिरपेक्ष आन्दोलन पहले से भी अधिक प्रासंगिक हो गया है जितना कि वह दो दशक पहले था।" मोरनो ने आगे कहा कि "निर्गुट देशों को अपनी आन्तरिक कानून व्यवस्था की प्रतिरक्षा हेतु एक मजबूत आन्दोलन छेड़ देना चाहिए। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन शान्ति को सम्पोषित करने के लिए सीपित किया गया था और शान्ति एक सतत मूल्य है।" मोरनो ने यह भी कहा कि "गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को नवउदारवादी वैश्वीकरण (Neo-liberal Globalization) के शेष विश्व में पड़ने वाले प्रभाव पर चर्चा करने के लिए कुछ समय देना

चाहिए।" दूसरे शब्दों में में मोरनों ने यह कहा कि गुटनिरपेक्ष देशों को सम्प्रभु और स्वतंत्र देशों पर पाश्चात्य देशों की आक्रमक नीतियों और उनके बाध्यकारी व्यवहार के प्रभाव के विषय में चर्चा करनी चाहिए। मोरनो ने यह भी भी कहा कि "दक्षिण–दक्षिण सहयोग" (South-South Cooperation) पर निर्गुट आन्दोलन के मंच पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है।" इस प्रकार क्यूबा के उपविदेशमंत्री ने उन तमाम मुद्दों पर प्रकाश डाला जो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को वर्तमान समय में प्रासंगिकता प्रदान करते हैं।

गुट निरपेक्ष आन्दोलन विश्व के अधिक से अधिक प्रजातन्त्रीकरण के लिए एक आन्दोलन रहा है। शीत युद्धोत्तर काल में साम्यवादी शासन पद्धति के अवश्विसनीय सिद्ध हो जाने के पश्चात् विश्व में प्रजातंत्र की एक नई लहर अवश्य आई है परन्तु यह मान लेना भ्रामक होगा कि बिना प्रयास किए प्रजातन्त्र का विकास होता रहेगा। प्रजातन्त्र विरोधी प्रवृत्तियाँ सदैव पनपती रहेंगी और प्रजातन्त्रीकरण के लिए सतत प्रयास जारी रखना होगा। नेपाल और लैटिन अमेरिका में माओवादियों की विजय इस बात का प्रमाणह" और इस बात की याद दिलाती है कि प्रजातन्त्र के लिए संघर्ष अभी खत्म नहीं हुआ है। अतः विश्व के अधिक से अधिक प्रजातन्त्रीकरण के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज भी प्रांसगिक हैं। इसी प्रकार आपसी सहयोग के द्वारा विकास को बढ़ावा देने के एक मंच के रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज भी प्रासंगिक हैं। मोरनो जब दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर नये सिरे से विचार करने की बात करते हैं तो उनका संकेत इसी ओर है।

नाभिकीय निःशस्त्रीकरण की समस्या आज भी जैसी की तैसी बनी हुई है। अतः नाभिकीय निःशस्त्रीकरण के एक आन्दोलन के रूप में निर्गुट आन्दोलन आज भी प्रासंगिक है। इसी प्रकार नस्लवादी नीतियों और नस्लवादी व्यवहार में भले ही कमी आई हो परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वैश्विक समाज से नस्लवाद का उन्मूलन हो चुका है। पश्चिम एशिया और यूरोप के क्षेत्रों में यत्र–तत्र आज भी नस्लवाद विद्यमान है। अतः नस्लवाद के विरुद्ध एक आन्दोलन के रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज भी प्रासंगिक है।

आज का विश्व आतंकवाद से जूझ रहा है और मादक द्रव्यों की तस्करी से प्राप्त धन द्वारा आतंकवाद को भौतिक समर्थन दिया जा रहा है। अतः आतंकवाद और मादक द्रव्यों की तस्करी के विरुद्ध गुटनिरपेक्ष देशों को एकजुट होकर एक सशक्त कार्यवाही करने की आवश्यकता है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंचों पर कई बार आतंकवाद के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किये जा चुके हैं परन्तु इस समस्या के समाधान हेतु एक लम्बी लड़ाई की आवश्यकता है। अतः आतंकवाद और मादक द्रव्यों की तस्करी के विरुद्ध एक आन्दोलन के रूप में निर्गुट आन्दोलन आज भी प्रासंगिक है।

नार्वे की भूतपूर्व प्रधानमंत्री गो ब्रन्ट लैण्ड ने एक बार कहा था कि पृथ्वी के र्प्यावरण को जो खतरा उत्पन्न हो गया है वह विश्वव्यापी नाभिकीय युद्ध के खतरे के बाद सबसे बड़ा खतरा है। अतः पृथ्वी ग्रह के पर्यावरण के संरक्षण हेतु गुटनिरपेक्ष देशों के एकजुट होकर प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि पृथ्वी के पर्यावरण की रक्षा के लिए एक आन्दोलन के रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज भी प्रासंगिक है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

२) अध्याय के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) शीत युद्धोत्तर काल में गुट निरपेक्ष आन्दोलन प्रासंगिक है अथवा नहीं। अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

10.5 भारत और गुट निरपेक्ष आन्दोलन

द्वितीय विश्व युद्धोत्तर कालीन विश्व राजनीति को भारतीय क्रान्ति (Indian Revolution) या स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी देन गुटनिरपेक्षता की अवधारणा का प्रत्ययीकरण (Conceptualisation), स्पष्टीकरण (Articulation) और प्रोत्साहन (Promotion) रही है। विदेश नीति के एक आधारभूत तत्व के रूप में वैश्विक मामलों को भारत द्वारा उपहार स्वरूप रूप प्रदत्त इस गुटनिरपेक्षता की नीति ने विउपनिवेशीकृत और नवस्वतन्त्र राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधने और उनके मध्य बंधुत्व के विकास हेतु एक सर्वोत्तम साधन का कार्य किया। स्वतन्त्रता के प्राम्भिक दिनों से ही भारत को गुटनिरपेक्षता की नीति के जनक के रूप में देखा जाता रहा है और किसी भी देश का नाम गुटनिरपेक्षता की अवधारणा के साथ इतना निकट से नहीं जुड़ा हुआ है जितना की भारतवर्ष का नाम। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि लगभग 1980 के दशक के अंत तक गुट निरपेक्षता की नीति भारतीय विदेश नीति का सबसे मजबूत स्तम्भ और सबसे प्रमुख स्वर रही है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के निर्माण में और इसको एक दिशा प्रदान करने एवं स्थायित्व देने में भारत की एक अहम एवं अग्रिम भूमिका रही है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के प्रमुख शिल्पी और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता की नीति के प्रत्ययीकरण और स्पष्टीकरण तथा तत्पश्चात् गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के निर्माण में मिस्र के अब्दुल नासिर और युगोस्लाविया के मार्शल टीटो के साथ मिलकर एक बहुत ही सक्रिय भूमिका निभाई है। 1947–1955 के मध्य गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के पुरोगामी (Precursor) के रूप में, 1955 से 1961 के मध्य इस आन्दोलन के जन्मदाता (Progenitor) के रूप में और तत्पश्चात 1961 से 1964 के मध्य निर्गुट आन्दोलन के प्रमुख नायक और अगुवा (Pioneer) के रूप में श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस आन्दोलन में सर्वोपरि भूमिका अदा की है।

यद्यपि जवाहरलाल नेहरू ने कभी भी यह दावा नहीं कि वे गुटनिरपेक्षता की विचारधारा के एकमात्र सृजनकर्ता थे फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समकालीन विश्व में गुटनिरपेक्षता के प्रत्ययीकरण एवं प्रोत्साहन में उनका महानतम योगदान था। अतः यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त विश्व राजनीति, विश्व शान्ति और सुरक्षा को दिया गया नेहरू का सबसे बड़ा योगदान रहा है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बंगलौर अधिवेषन में भाषण देते समय नेहरू ने कहा था कि "स्वतंत्रता के परवर्ती वर्षों में वह सबसे प्रमुख चीज जिसने विश्व का ध्यान भारत की ओर आकृष्ट किया है, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के प्रति हमारा व्यापक उपागम, विशेष करके गुटनिरपेक्षता की नीति रही है।" [J.L. Nehru, India's Foreign Policy Select Speeches, Ministry of Information and Broadcasting]. नेहरू ने गुटनिरपेक्षता की विचारधारा के उद्भव एवं उद्गम का श्रेय भारत की अप्रतिम और अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत (Unique cultural Heritage of India) को दिया है। जैसाकि 1955 में कुछ रूसी नेताओं के लिए आयोजित प्रीतिभोज के समय दिए गए भाषण में नेहरू ने कहा था कि "हजारों वर्षों में भारत का एक बहुत ही शक्तिशाली व्यक्तित्व रहा है। हमारा अपना एक मानस है, अपनी एक आत्मा और भावना है।" इसी भाषण में नेहरू ने आगे कहा कि "अतः यह सोचना कि इस बात का विचार हम क्या हैं, हम स्वयं को इस या उस समूह के साथ बाँध देंगे, पूर्णरूपेण इस बात की नासमझी प्रतीत होती है कि भारत भूतकाल में क्या था और भविष्य में क्या होने जा रहा है।" (Cited in Atulanand Chakarbarti, Nehru : His Democracy and India; 1961).

दूसरे शब्दों में, नेहरू यह दावा कर रहे थे कि गुट निरपेक्षता उनकी कल्पना की उपज नहीं थी बल्कि यह भारतवर्ष की नैतिक विरासत (Moral heritage) से उपजा हुआ सिद्धान्त था। इसकी व्याख्या करते हुए एक बार उन्होंने कहा था कि "मैने इसे (गुटनिरपेक्षता को) उत्पन्न नहीं किया है। यह एक ऐसी नीति है जो भारत की परिस्थितियों में निहित है। भारत की ऐतिहासिक सोच में निहित है, भारत के सम्पूर्ण मानसिक दृष्टिकोण में निहित है और स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान जो भारतवर्ष का मानस निर्माण हुआ (Conditioning of mind) उसमें निहित है। तथा साथ ही साथ यह वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में निहित है। मैं तो मात्र एक संयोगवश इस नीति के निर्माण से सम्बद्ध हो गया क्योंकि इन कुछ वर्षों में विदेश मंत्री के रूप में मैने इस नीति का प्रतिनिधित्व किया है।" (Nehru : India's Foreign Policy Select Speeches, Ministry of I & B, 1971)

वह भारतीय नैतिक विरासत जिससे गुटनिरपेक्षता की नीति का उद्भव हुआ और जिसकी ओर नेहरू जी संकेत कर रहे थे, उसमें महात्मा बुद्ध के मध्यम मार्ग अथवा बौद्धिक मार्ग (Path of Wisdom) का उपदेश, गीता का अनासक्ति अथवा निष्काम कर्म (Selfless action) का उपदेश और जैन धर्म का स्यादवाद (जो कि यह बताता है कि सभी सिद्धान्त समान रूप से सत्य हैं अथवा सभी सिद्धान्त आंशिक रूप से सत्य हैं और किसी में भी पूर्ण सत्यनिहित

नहीं हैं।) आदि सम्मिलित हैं। इस तरह की सांस्कृतिक और नैतिक विरासत के होते हुए भारत के लिए यह विश्वास करना असम्भव था कि सम्पूर्ण सत्य साम्यवादी विचारधारा में निहित है अथवा पूँजीवादी में निहित है। गुटनिरपेक्षता की उदघोषणा के माध्यम से नेहरू जी ने नवस्वतंत्र राष्ट्रों के लिए अपना सत्य निर्धारित करने और अपने लिए एक स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण करने का अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। नेहरू जी ने यह स्वीकार करने से इंकार कर दिया कि "वर्तमान विश्व में कार्य करने के केवल दो ही तरीके हैं और हर किसी को आवश्यक रूप से इसमें से एक तरीका चुनना है ...... यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि आज हमारे समक्ष केवल दो ही विकल्प हैं तो हम भले ही किसी सैन्य गुट में सम्मिलित न हों परन्तु हमें शीत युद्ध में अवश्य सम्मिलित होना पड़ेगा। मुझे यह समझ में नहीं आता कि महान सैन्य शक्ति अथवा महान आर्थिक शक्ति पर अधिकार होने मात्र से किस प्रकार उचित निर्णय लेने की क्षमता अथवा उचित मानसिक दृष्टिकोण रखने की क्षमता प्राप्त हो जाती है......। किसी देश के विदेश मंत्री के रूप में तो दूर मैं एक व्यक्ति के रूप में भी दूसरे देशों में रह रहे किसी व्यक्ति को अपने स्वतन्त्र निर्णय लेने के अधिकार को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं हूँ, यही हमारी गुटनिरपेक्षता की नीति का सार है।" (Nehru : India's Foreign Policy Select Speeches, Ministry of I & B, 1971; page 80)

बेलग्रेड में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रथम शिखर सम्मेलन के दौरान भाषण देते हुए नेहरू ने नाभिकीय युद्ध के बढ़ते हुए खतरे के मद्देनजर शान्ति और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की प्राथमिकता पर बल दिया था और यह कहा था कि यह वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती है। उन्होंने ने चेतावनी दी थी कि "यदि युद्ध शुरू हुआ तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा।" (If War comes all is doomed) और "घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में जनकल्याण सुनिश्चित करने हेतु शान्ति की वांछनीयतापर बल दिया था।" अपनी मृत्यु के लगभग एक वर्ष पूर्व, अप्रैल 1963 में Foreign Affairs, (NewYork) में प्रकाशित अपने लेख में नेहरू ने लिखा था कि ".....गुटनिरपेक्षता संक्षेप में सभी ऐसे राष्ट्रों के प्रति मित्रता की नीति है जिन्होंने सैन्य गुटों में सम्मिलित होने के दबाव के साथ कभी भी समझौता नहीं किया..... सारांशतः गुटनिरपेक्षता 'कार्य की स्वतंत्रता' (Freedom of Action) है जो कि स्वतंत्रता काएक भाग है....... अब गुटनिरपेक्षता अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था (International Pattern) का एक अभिभाष्य अंग बन चुकी है। और विशेष कर के नवोदित ऐफ्रो-एशियाई राष्ट्रों के लिए यह एक व्यापक और वैध नीति है।" यह कथन गुटनिरपेक्षता और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के विषय में नेहरू जी का अन्तिम चिन्तन माना जाता है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखें।

२) अध्याय के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्‌भव एवं विकास में भारत की भूमिका का विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

10.6 सारांश

उपरोक्त विवेचना को ध्यान में रखते हुए, निः सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि विश्व राजनीति की एक प्रत्यय के रूप में, विदेश नीति के एक आधारभूत सिद्धान्त के रूप में और नव स्वतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों के प्रतिरक्षण की एक स्त्रातेजी के रूप में, गुटनिरपेक्षता की नीति आधुनिक और समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए भारत का एक बड़ा और महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

शीत युद्धोत्तर कालीन भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था में गुट निरपेक्ष आन्दोलन अनुपयोगी और अप्रासंगिक नहीं

हुआ है बल्कि उन संदर्भों में परिवर्तन हुआ है जिनके लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का निर्माण किया गया था। दूसरे शब्दों में, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के ध्येय में परिवर्तन अवश्य हुआ है परन्तु इसकी उपयोगिता में कमी नहीं आई है। आज निर्गुट देशों के इस मंच को अप्रासंगिक सिद्ध करने के प्रयास से कहीं अधिक इसे नई दिशा देने की आवश्यकता है और इसे समकालीन समस्याओं के समाधान एवं निराकरण हेतु एक नई ऊर्जा से कार्य करने वाला आन्दोलन बनाने की आवश्यकता है।

10.7 प्रमुख शब्द

सैन्य गुट : द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अमेरिका एवं सोवियत संघ के नेतृत्व में बनाये गये सैन्य संगठन जैसे कि नाटो, वार्सा पैक्ट, सेन्टो, सियारो आदि।

विउपनिवेशीकरण : उपनिवेशवाद के अन्त और ऐफ्रो–एशियाई देशों की उपनिवेशवादी शासन से मुक्ति को विउपनिवेशीकरण (डिकालोनाइजेशन) कहा जाता है।

बिग थ्री ऑफ नैम (एन.ए.एम.) : भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू, मिस्र के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल नासिर और यूगोस्लाविया के पूर्व राष्ट्रपति, मार्शल टीटो को बिग थ्री ऑफ नैम कहा जाता है।

बोध प्रश्न

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यू.आर. घई : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं व्यवहार)

वी.एस. खन्ना : भारत की विदेशनीति

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

देखिए भाग 10.२

बोध प्रश्न २

देखिए भाग 10.3

बोध प्रश्न 3

देखिए भाग 10.4

बोध प्रश्न 4

देखिए भाग 10.5

इकाई 11 भारतीय परमाणु नीति

इकाई की रुपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 भारतीय परमाणु नीति के निर्धारक, उद्भव एवं विकास

11.3 भारतीय परमाणु नीति का प्रथम चरण : 1947–1974

11.4 भारतीय परमाणु नीति का द्वितीय चरण : 1974–1998

11.5 भारतीय परमाणु नीति का तृतीय चरण : 1998 से आगे

11.6 एन.पी.टी. एवं सी.टी.बी.टी. के प्रति भारत का दृष्टिकोण

11.7 सारांश

11.8 प्रमुख शब्द

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- उन वैश्विक परिस्थितियों को जान सकेंगे जो भारत के नाभिकीय कार्यक्रम के प्रारम्भ के लिए उत्तरदायी रही हैं।
- भारतीय नाभिकीय नीति के निर्धारक तत्वों को समझ सकेंगे।
- भारतीय नाभिकीय नीति के विभिन्न चरणों को समझ सकेंगे।

11.1 परिचय

इस इकाई में आप भारतीय नाभिकीय नीति के उद्भव, विकास एवं निर्धारक तत्वों का अध्ययन करेंगे तथा भारत की नाभिकीय नीति के विभिन्न चरणों का विश्लेषण एवं विवेचन पढ़ेंगे।

11.2 भारतीय परमाणु नीति के निर्धारक उद्भव एवं विकास

भारत की नाभिकीय नीति के दो घटक है :

(1) भारत के घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम का गतिविज्ञान तथा

(२) वैश्विक नाभिकीय प्रचुरण पर भारत का दृष्टिकोण।

भारत के घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम और भारत के वैश्विक नाभिकीय प्रचुरण के प्रति दृष्टिकोण के मध्य एक गहन अन्तर्सम्बन्ध है क्योंकि दोनों एक दूसरे को स्वरूपित करते हैं अर्थात भारत का घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम वैश्विक नाभिकीय प्रकरण और इसके साथ ही साथ वैश्विक नाभिकीय प्रकरण पर भारत का दृष्टिकोण उसके घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम से प्रभावित होता है भारत में नाभिकीय अनुसंधान का प्रारम्भ लगभग उसी समय हुआ जब विश्व में नाभिकीय आयुधों का आगमन हुआ। 1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने सर्वप्रथम नाभिकीय परीक्षण किए और तत्पश्चात अगस्त 1945 में ही हिरोशिमा और नागासाकी पर अणु बम का प्रयोग किया। तत्पश्चात 1949 में सोवियत संघ ने नाभिकीय परीक्षण किए और इसी दौरान 1948 में स्वतंन्त्र भारत ने परमाणु 0र्जा आयोग की स्थापना की। अतरू स्पष्ट है कि भारत का घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम वैश्विक नाभिकीय विकासों से प्रभावित होता रहा है और इसके साथ ही साथ

वैश्विक नाभिकीय विकास के प्रति भारत का दृष्टिकोण उसके घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम की दशा एवं दिशा से प्रभावित होता रहा है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही उत्तर लिखें।

२) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) भारत की नाभिकीय नीति के उद्‌भव, विकास एवं निर्धरक तत्वों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

11.3 भारतीय परमाणु नीति का प्रथम चरण : 1947—1974

भारत के घरेलू नाभिकीय विकास को तीन स्पष्ट चरणों में विभाजित किया जा सकता है : 1947 से 1974 तक य 1974 से 1998 तकय 1998 से अब तक। 1947 से 1974 तक भारत का नाभिकीय कार्यक्रम एवं अनुसंधान नेहरू की 'शान्ति के माध्यम से सुरक्षा' (Security through peace) की आदर्शवादी नीति से प्रभावित रहा है। मई 1964 में नेहरू की मृत्यु के पश्चात मई 1974 के पूर्व के दिनों में श्री लाल बहादुर शास्त्री तथा श्रीमती गाँधी के शासनकाल में भारत के घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम पर नेहरू की आदर्शवादी नीति की स्पष्ट छाप मिलती है। कुल मिलाकर 1947 से 1974 तक भारत पूर्णरूपेण व्यापक और वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण का समर्थक रहा है और इस दौरान उसने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच के माध्यम से वैश्विक नाभिकीय नियशस्त्रीकरण के लिए भरसक प्रयास भी किया। इसी दौरान 1954 में नहरू ने संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध के लिए एक सन्धि के निर्माण को भी पेशकश की थी। नेहरू के उपरान्त भी भारत ने वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण की मंशा से नाभिकीय अप्रयुरण संन्धि (NPT) के निर्माण हेतु संयुक्त राष्ट्र महासभा में पारित प्रस्ताव २०२८ का समर्थन किया था। ये सारे उदाहरण भारत के वैश्विक नाभिकीय निरूास्त्रीकरण के प्रति प्रतिबद्धता एवं प्रयासों के पुष्ट प्रमाण है। परन्तु भारत के इन पुरजोर प्रयासों के बावजूद विश्व नाभिकीय निशस्त्रीकरण के बजाय नाभिकीय शस्त्रीकरण की दिशा में बढ़ रहा था। 1960 और 196२ में क्रमशरू ब्रिटेन और प्रह्रांस ने नाभिकीय परीक्षण किए। 1964 में चीन ने नाभिकीय परीक्षण करके भारत के घरेलू नाभिकीय कार्यक्रम की दशा एवं दिशा को बहुत महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया। 5 मार्च 1970 को जो NPT प्रभाव में आई वह त्रुटियों से परिपूर्ण थी और भेदभाव पूर्ण थी तथा नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण के प्रति गम्भीर नहीं थी। नाभिकीय विकास की इन वैश्विक परिस्थितियों के मद्देनजर भारत ने 18 मई 1974 को प्रथम नाभिकीय परीक्षण किया। भारत ने इस नाभिकीय परीक्षण को शान्तिपूर्ण नाभिकीय विस्फोट (PNE=Peaceful Nuclear Explosion) की संज्ञा दी क्योंकि भारत अपनी वैशिवक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण की नीति का परित्याग नहीं करना चाहता था और न ही उसने अभी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण का निर्णय लिया था।

बोध प्रश्न २

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

२) अध्याय के अंत में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर की जाँच कीजिए।

1) भारत की नाभिकीय नीति के विकास के प्रथम चरण का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

11.4 भारतीय परमाणु नीति का द्वितीय चरण : 1974–1998

1974 से 1998 तक भारत ने अपनी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण नहीं किया परन्तु इस दौरान उसने अपना नाभिकीय विकल्प खुला रखने (Keeping the Nuclear option open) की नीति का अनुसरण किया। भारत की इस नीति को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है –

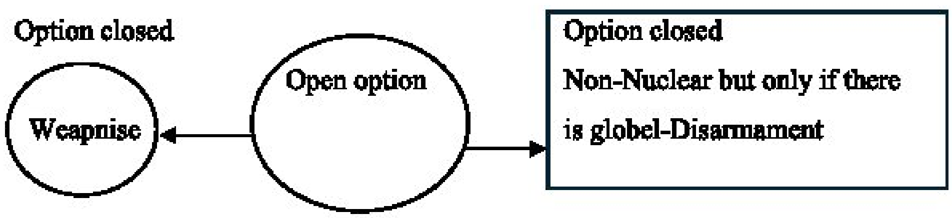

Armament ←——— Restraint ———→ Disarmament

शस्त्रीकरण निग्रह निःशस्त्रीकरण

1974 से 1998 का समय ऐसा समय था जिस दौरान भारत पर उस विश्व समुदाय द्वारा नाभिकीय अप्रचुरण (Nuclear Non-Proliferation) का अत्यधिक दबाव डाला जा रहा था जो कि अंधाधुंध नाभिकीय प्रचुरण कर रहा था और विश्व स्तर पर नाभिकीय प्रचुरण रोकने का पाखण्ड कर रहा था । इन परिस्थितियों में भारत ने अपना नाभिकीय विकल्प खुला रख कर नाभिकीय निग्रह (Nuclear Restraint) की नीति अपनाई । नाभिकीय निग्रह की इस नीति का तात्पर्य यह था कि भारत अब भी वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण का पक्षधर था परन्तु वह आवश्यकता पडने पर "कुछ हफ्तों" में ही (जैसा कि राजीव गाँधी ने 1985 में कहा था) नाभिकीय शस्त्रों का निर्माण कर सकता था। अर्थात भारत के लिए दोनों विकल्प खुले थे और वह किसी भी दिशा में बढ़ सकता था। खुले विकल्प की नीति समकालीन वैश्विक नाभिकीय विकास के मद्देनजर भारत के लिए ऐसी उपयुक्त नाभिकीय स्त्रातेजी (Nuclear Strategy) थी जो कि भारत की सुरक्षा आवश्यकताओं को पूरा करती थी। यह स्त्रातेजी पाकिस्तान तथा चीन जैसे भारत के प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति भारत को पर्याप्त प्रतिरोधकता प्रदान करती थी और साथ ही साथ इस स्त्रातेजी की राजनीतिक और आर्थिक कीमत बहुत कम थी। इतना ही नहीं,इस दौरान भारत वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण के लिए कठिन प्रयास करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा में व्यापक योगदान भी कर रहा था । परन्तु भारत की इस नाभिकीय निर्गुटता (Nuclear Non-Alignment) को पाश्चात्य विश्व या तो समझ नहीं सका या उसके द्वारा इन नीति की उपेक्षा की गयी। ऐसा भी प्रतीत होता था कि भारत की इस नाभिकीय निग्रह की नीति को पाश्चात्य विश्व निर्बलता की नीति (Policy of Weakness) समझता था, जैसे कि प्रूँधों मार्क्स के दर्शन को 'गरीबी का दर्शन' (Philosophy of poverty) मानते थे । जब भारत नाभिकीय निग्रह की नीति पर अडिग था, उस दौरान अमेरिका और चीन जैसे राष्ट्रों ने पाकिस्तान, इजराइल, ईरान, और उत्तर कोरिया जैसे देशों को किसी न किसी रूप में नाभिकीय आयुध शक्ति प्राप्त करने में सहायता करके दोहरे मानदण्डों (Double standards) और नाभिकीय पाखण्ड (Nuclear Hypesisy) का परिचय दिया।

इन परिस्थितियों में भारत ने 1998 में दूसरी बार 'शक्ति परीक्षण' के कूट नाम से पाँच नाभिकीय परीक्षण किए और तत्पश्चात अपनी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण करके नाभिकीय शस्त्रीकरण (Nuclear Armament) का विकल्प अपना लिया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखिए।

२) अध्याय के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) भारतीय परमाणु नीति के विकास के द्वितीय चरण का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

11.5 भारतीय परमाणु नीति का तृतीय चरण : 1998 से आगे

मई 1998 में भारत द्वारा दूसरी बार नाभिकीय परीक्षण करके अपनी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण करने का निर्णय शीत युद्धोत्तरकालीन विश्व व्यवस्था में भारत की राजनीतिक और स्त्रातेजिक हैसियत के सर्वथा अनुरूप है। 1998 में अपनी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण करके और स्वयं को नाभिकीय शस्त्र सम्पन्न राष्ट्र घोषित करके भारत जबरन स्वयं को विश्व के नाभिकीय क्लब (Nuclear Club) का सदस्य घोषित कर दिया। भारत ने 1998 में यह भी घोषित किया कि उसने आत्मरक्षा हेतु (Self defence) अपनी नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण किया है और ऐसा करना अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सर्वथा अनुरूप है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र चार्टर का अनुच्छेद 51 सदस्य राष्ट्रों को आत्मरक्षा का अधिकार प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त 1998 में शक्ति परीक्षण करके भारत ने 1968 की NPT; 1996 के CTBT या अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन नहीं किया है क्योंकि भारत इन उपरोक्त सन्धियों का हस्ताक्षर कर्ता नहीं है। अतरू मई 1998 में शक्ति परीक्षणों के पश्चात नाभिकीय क्षमता का आयुधीकरण करना और स्वयं को नाभिकीय आयुध सम्पन्न राष्ट्र घोषित करना भारत की नाभिकीय नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत है, क्योंकि 1998 से पूर्व भारत का सैन्य नाभिकीय कार्यक्रम एक गुप्त या प्रच्छन्न कार्यक्रम था परन्तु 1998 में इस कार्यक्रम नें एक सार्वजनिक रूप से घोषित एव ज्ञात नाभिकीय कार्यक्रम का स्तर प्राप्त कर लिया। 1998 में भारत की नाभिकीय नीति में आया दूसरा प्रमुख परिवर्तन यह है कि अभी तक भारत व्यापक वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण की पुरजोर वकालत करता था परन्तु 1998 से भारत ने नाभिकीय आक्रमण की पहल न करने (No First Use = NFU) की नीति पर आधारित नाभिकीय प्रतिरोधक (Nuclear Deterent) के निर्माण पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु यहाँ पह यह ध्यान देने योग्य है कि भारत ने 1998 के पश्चात भी वैश्विक नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण के लिए प्रयास करने की नीति का परित्याग नहीं किया है। यह बात और है कि अपनी नाभिकीय क्षमता का शस्त्रीकरण करने की वजह से भारत की नाभिकीय निरूशस्त्रीकरण के समर्थन एवं प्रयास की नीति को`एक नैतिक आघात अवश्य लगा है।

1998 से भारत की नाभिकीय हैसियत (Nuclear status) में बदलाव आने की वजह से अब विश्व की पाँच नाभिकीय शक्तियों का न्यूक्लियर क्लब भारत से अलग तरह की अपेक्षा रखता है। अर्थात भारत को अनमने ढंग से नाभिकीय क्लब में शामिल करने के लिए पाश्चात्य विश्व यह कीमत माँगता है कि भारत अब वैश्विक नाभिकीय प्रचुरण के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल दे और वैश्विक नाभिकीय अप्रचुरण सत्ता (global Nuclear Non Proliferation Regemi) का सक्रिय अंग बन जाये। इसी आधार पर जुलाई २005 से भारत अमेरिकी असैनिक परमाणु सहयोग (Indo-US Civil

Nuclear Cooperation) या भारत अमेरिकी नाभिकीय डील (Indo-US Nuclear Deal) के लिए हो रहे प्रयासों के दौरान अमेरिका भारत से लगातार ईरान के नभिकीय प्रचुरण या यूरेनियम सर्वधन कार्यक्रम के विरुद्ध मत देने का आग्रह करता रहा है। भारत पाश्चात्य देशों की नभिकीय अप्रचुरण सत्ता में सम्मिलित होता नजर आ रहा है। क्योंकि वह जुलाई २007 में 123 समझौता करने से पूर्व ईरान के नाभिकीय कार्यक्रम के विरूद्ध मत व्यक्त कर चुका है। भारत ऐसा पहला देश है जिसके NPT और CTBT का हस्ताक्षरकर्ता न होते हुए भी अमेरिका उसके साथ असैनिक नभिकीय सहयोग सन्धि के लिए प्रयास कर रहा है, जिसके सम्पन्न हो जाने पर भारत की नभिकीय विश्व से पृथकता (isolation) सामान्य हो जायेगी क्योंकि वह विश्व के नभिकीय अपूर्तिकर्ता समूह (NSG=Nuclear Supplier Group) के सदस्य देशों से यूरेनियम जैसे नभिकीय ईंधन का आयात कर सकेगा और विश्व समुदाय के देशों के साथ नभिकीय व्यापार कर सकेगा। परन्तु इन सब परिवर्तनों के बावजूद विश्वभर में बिखरे हुए नभिकीय आयुधों तथा NPT और CTBT जैसी भेदभाव पूर्ण नीतियों के प्रति भारत का दृष्टिकोण कमोबेश पूर्ववत ही है। और भारत आज भी विश्व को नभिकीय दहन से दूर ले जाना चाहता है और वैश्विक नभिकीय निरूशस्त्रीकरण के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए कटिबद्ध है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखें।

२) अध्याय के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) भारतीय परमाणु नीति के विकास के तृतीय चरण का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

11.6 एन.पी.टी. एवं सी.टी.बी.टी. के प्रति भारत का दृष्टिकोण

भारत 19 नवम्बर 1965 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित उस प्रस्ताव संख्या २०२८ का प्रवर्तक एवं सर्मथक था जिसनें अंततोगत्वा NPT को जन्म दिया। इस प्रस्ताव पर हुई चर्चा के दौरान भारत ने NPT के लिए निम्न मानदण्ड प्रस्तुत किए थे – (1) नभिकीय आयुध सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा इस बात की जिम्मेदारी ली जानी चाहिए कि वे दूसरे देशों को नभिकीय आयुध अथवा आयुध निर्माण की तकनीक हस्तांतरित नहीं करेंगे य (२) नभिकीय आयुध सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा इस बात की प्रतिज्ञा की जानी चाहिए कि वे नभिकीय आयुधों से विहीन राष्ट्रों के विरूद्ध नभिकीय आयुधों का प्रयोग नहीं करेंगे य (3) संयुक्त राष्ट्र द्वारा उन राष्ट्रों की सुरक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी ली जानी चाहिए जिन्हें नभिकीय आयुधों से खतरा हैय (4) एक व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध सन्धि (CTBT) का निर्माण किया जाना चाहिए, नभिकीय आयुधों तथा उनके प्रक्षेपण के साधनों के निर्माण पर पूर्णरूपेण रोक लगायी जानी चाहिए और नभिकीय निरूशस्त्रीकरण की दिशा में ठोस प्रगति की जानी चाहिए। (5) नभिकीय आयुध विहीन राष्ट्रों द्वारा यह प्रतिज्ञा पत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि वे न तो नभिकीय आयुधों का परीक्षण करेंगे और न ही उनका निर्माण करेंगे ।

NPT पर भारत का दृष्टिकोण धीरे–धीरे और कठोर होता गया और जब 12 जून 1968 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में इसे 4 के विरूद्ध 95 मतों से पारित एवं स्वीकार किया गया तो भारत ने उसके पक्ष में मत नहीं दिया । NPT के पारित होने के पूर्व हुई चर्चाओं के दौरान 14 मई 1968 को संयुक्त राष्ट्र की प्रथम समिति की 1567वीं बैठक में भारतीय दूत अजीम हुसैन ने NPT पर भारत के दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए निम्न बिन्दुओं पर बल दिया :

(1) यह सन्धि नभिकीय आयुधों के अप्रचुरण को सुनिश्चित नहीं करती बल्कि नभिकीय आयुध विहीन राष्ट्रों तक नभिकीय आयुधों के प्रकीर्णन या पहुँच को ही रोकने का प्रयास करती है तथा इसके साथ ही साथ यह नभिकीय शस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों के आयुधों के नवीनीकरण एवं परिष्करण पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगातीय (२) यह सन्धि नभिकीय आयुध सम्पन्न और नभिकीय आयुध विहीन राष्ट्रों के दायित्वों एवं जिम्मेदारियों के मध्य कोई सन्तुलन स्थापित नहीं करतीय (3) सन्धि का अनुच्छेद 6 नभिकीय निरूशस्त्रीकरण का कोई क्रमिक एवं समय बद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं करता हैय (4) यह सन्धि एक नभिकीय राष्ट्र को दूसरे नभिकीय राष्ट्र के लिए कोई तकनीकी सहायता देने से मना नहीं करता है य (5) सन्धि का अनुच्छेद 6 शीघ्र से शीघ्र नभिकीय शस्त्रों की दौड़ को रोकने हेतु किसी प्रकार के कानूनी प्रतिबन्धों का सृजन नहीं करता हैय (6) यह सन्धि विश्व समुदाय के देशों को सुरक्षा का एक झूठा आश्वासन प्रस्तुत करती हैय (7) नभिकीय विस्फोटों के शान्तिपूर्ण लाभों के सम्बन्ध में भी NPT भेदभावपूर्ण है।य (8) सुरक्षा एवं नियंत्रण व्यवस्था स्थापित करने की दृष्टि से भी NPT भेदभाव पूर्ण है क्योंकि यह सारे नियंत्रण नभिकीय आयुध विहीन राष्ट्रों पर स्थापित करती है। और नभिकीय शास्त्र सम्पन्न राष्ट्रों पर किसी भी प्रकार की नियंत्रण व्यवस्था नहीं स्थापित करती।

5 मार्च 1970 को NPT के प्रभाव में आ जाने के पश्चात भारत पर इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए लगातार दबाव पड़ता रहा है। इस संबंध में 1971 में भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने कहा था कि "चूँकि वर्तमान NPT मूल प्रस्ताव २०२८ के अनुरूप नहीं है। अतरू भारत इस पर हस्ताक्षर नहीं करेगा। यदि महाशक्तियाँ NPT पर भारत के हस्ताक्षर प्राप्त करना चाहती हैं तो उन्हें NPT को उसके मूल मन्तव्य तक लौटने की कीमत चुकानी पड़ेगी। यदि NPT में परिवर्तन किया जाता है और इस पर हस्ताक्षर करना भारत के हित में है तो हम इस पर निश्चित रूप से हस्ताक्षर करेंगे।" वैश्विक नभिकीय अप्रचुरण सत्ता (Global Nuclear Non-Proliferation Regime) के तमाम दबाव के बावजूद भारत ने कभी भी NPT पर हस्ताक्षर नहीं किए और अप्रैल 1995 में जब संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा NPT को अनिश्चितकाल के लिए जीवन दान दिया गया तब भी भारत दूत अरुधती घोष ने उपरोक्त NPT का विरोध किया था और इसके अनिश्चित कालीन विस्तार के विरुद्ध मत दिया था।

जब 10 सितम्बर 1996 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा CTBT को पारित एवं स्वीकार किया गया तब भी भारत ने इस सन्धि के विरूद्ध लगभग NPT जैसा ही रूख अपनाया । CTBT के प्रति भारत की आपत्तियाँ निम्नवत रही हैं : (1) यह सन्धि NPT का ही विस्तार है और विश्व में भेदभाव पूर्ण नभिकीय व्यवस्था बनाए रखने पर तुली हुई हैय (२) NPT की ही तरह CTBT भी नभिकीय आयुध सम्पन्न राष्ट्रों के निरूशस्त्रीकरण के लिए कोई निश्चित समय सारणी नहीं प्रस्तुत करती और इस सन्धि के प्रभाव में आने के पश्चात भी विश्व में २००० नभिकीय परीक्षणों के फलस्वरूप निर्मित लगभग 35,000 नभिकीय आयुध विद्यमान रहेंगे । (3) NPT की तरह CTBT भी तमाम त्रुटियों से परिपूर्ण हैं जो कि सबक्रिटिकल प्रयोगों (अवक्रान्तिक प्रयोगों) और कम्प्यूटर अनुरूपण (Computer similation) द्वारा उन्हें अपने नभिकीय आयुधों के परिसंस्करण का अवसर प्रदान करती हैय (4) CTBT के अनुच्छेद 4 के अन्तर्गत सत्यापन और स्थानीय निरीक्षण की बहुत कठोर व्यवस्था की गई है। जो किसी भी सम्प्रभु राष्ट्र को मुश्किल से स्वीकार होगा। (5) CTBT के अनुच्छेद 14 ने यह व्यवस्था की थी कि यह सन्धि तभी प्रभाव में आयेगी जब २४ सितम्बर 1999 तक भारत और इजराइल इस सन्धि पर हस्ताक्षर कर देंगे। यह अनुच्छेद सीधे–सीधे भारत और इजराइल की सम्प्रभुता पर आघात करता था, भारत ने सन्धि के इस अनुच्छेद का पुरजोर विरोध किया और इसीलिए उसे तृतीय विश्व के देशों में अच्छी ख्याति अर्जित हुई।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : 1) अपना उत्तर नीचे दिये गये रिक्त स्थान में ही लिखें।

२) अध्याय के अन्त में दिये गये उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) एन.पी.टी. एवं सी.टी.बी.टी. के प्रति भारत के दृष्टिकोण को समझाइए।

....

....

....

....

चूँकि CTBT को अमेरिकी सीनेट में अभ्यर्थन नहीं मिला अतैव इस पर हस्ताक्षर करने का भारत का दबाव स्वतः ही कम हो गया, और जब सन २000 में अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन भारत आये तो उन्होंने CTBT पर हस्ताक्षर करने सम्बन्धी कोई भी बात भारत सरकार से नहीं की । 1998 में भारतीय परमाणु परीक्षणों ने NPT और CTBT दोनों को बड़ी चुनौती दे दी। २005 से भारत अमेरिका के साथ असैनिक परमाणु सहयोग की दिशा में बहुत ही तीव्रता से आगे बढ़ रहा है और भारत अमेरिका के मध्य जुलाई २007 में 1२3 समझौता भी हो चुका हैं। भारत– अमेरिकी असैनिक परमाणु सहयोग अब पूर्णरूपेण सम्पन्न हो चुका है और इसने २008 में भारत– अमेरिकी असैनिक परमाणु संधि का रूप ले लिया है। वर्तमान में भारत नाभिकीय आपूर्ति कर्ता समूह (Nuclear Suppliers Group = NSG) का सदस्य बनने का प्रयास कर रहा है। एन.एस.जी.का सदस्य बनते ही भारत वैश्विक नाभिकीय व्यापार में भी निर्बाध रूप से भाग ले सकेगा।

11.7 सारांश

चूँकि CTBT को अमेरिकी सीनेट में अभ्यर्थन नहीं मिला अतैव इस पर हस्ताक्षर करने का भारत का दबाव स्वतः ही कम हो गया, और जब सन २000 में अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन भारत आये तो उन्होंने CTBT पर हस्ताक्षर करने सम्बन्धी कोई भी बात भारत सरकार से नहीं की। 1998 में भारतीय परमाणु परीक्षणों ने NPT और CTBT दोनों को बड़ी चुनौती दे दी। २005 से भारत अमेरिका के साथ असैन्य परमाणु सहयोग की दिशा में बहुत ही तीव्रता से आगे बढ़ रहा है और भारत अमेरिका के मध्य जुलाई २007 में 1२3 समझौता भी हो चुका है। भारत–अमेरिकी असैनिक परमाणु सहयोग अब पूर्णरूपेण सम्पन्न हो चुका है और इसने २008 में भारत–अमेरिकी असैनिक परमाणु संधि का रूप ले लिया है। वर्तमान में भारत नाभिकीय आपूर्ति कर्ता समूह (Nuclear Suppliers Group = NSG) का सदस्य बनने का प्रयास कर रहा है। एन.एस.जी. का सदस्य बनते ही भारत वैश्विक नाभिकीय व्यापार में भी निर्बाध रूप से भाग ले सकेगा।

11.8 प्रमुख शब्द

एन.पी.टी. : न्यूक्लियर नान–प्रॉलिफरेशन ट्रीटी अथवा नाभिकीय अप्रचुरण संधि।

सी.टी.बी.टी. : काम्प्रीहेन्सिव टेस्ट बैन ट्रीटी अथवा व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि।

एन.एस.जी. : न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप अथवा नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

देखिए भाग 11.२

बोध प्रश्न २

देखिए भाग 11.3

बोध प्रश्न 3

देखिए भाग 11.4

बोध प्रश्न 4

देखिए भाग 11.5

बोध प्रश्न 5

देखिए भाग 11.6

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

जसजीत सिंह : न्यूक्लियर इंडिया, नॉलेज वर्ल्ड, 1998

सी. राजा मोहन : क्रासिंग दि रूबिकॉन : दि शेपिंग ऑफ इंडियाज न्यू फारेन पालिसी, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली, २005

इकाई– 12 : दक्षेस राष्ट्रों में भारत की भूमिका

ईकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1–प्रस्तावना

12.2 दक्षिण एशिया का अर्थ

12.3 शीत युद्ध के पश्चात भारत की दक्षिण एशिया नीति

12.4 दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका

12.4.1 सार्क भावना का विकास

12.4.2 बड़े भाई की भूमिका

12.4.3 पड़ोसी प्रथम की नीति

12.5. सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के प्रति भारतीय विदेश नीति एवं भूमिका को शीत युद्ध के पश्चात स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है भारतीय उपमहाद्वीप में भारत की केंद्रीय भूमिका को देखते हुए इस इकाई का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद अध्ययनकर्ता

- दक्षिण एशिया का अर्थ समझ सकेंगे
- शीत युद्ध के बाद भारत की दक्षिण एशिया नीति को जान सकेंगे।
- दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

किसी भी देश की विदेश नीति उसकी आंतरिक परिस्थितियों एवं अंतर्राष्ट्रीय परिवेश को ध्यान में रखकर तय की जाती है भारत ने भी अपनी विदेश नीति में दक्षिण एशिया की अवस्थिति, सामाजिक,आर्थिक, सामरिक व अन्य दृ ष्टिकोणों को ध्यान में रखकर विशेष महत्व दिया है। हिंद महासागर के मध्य में दक्षिण एशिया अवस्थित है जो शीत युद्ध के दौरान राजनीतिक सामरिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था और शीत युद्ध की समाप्ति के बाद वैश्वीकरण के युग में आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गया। चुकी एफ्रो एशियाई आर्थिक संभावनाओं का क्षेत्र है और दक्षिण एशिया जो एशिया व अफ्रीका के केंद्र में है उसका अपने आप महत्व बढ़ जाता है। एफ्रो एशिया के आसपास कोई भी गतिविधि हो इसका असर दक्षिण एशिया पर पड़ता है उसकी अवस्थित के कारण तथा दक्षिण एशिया का मुख्य केंद्र भारत है जो उपरोक्त गतिविधियों से प्रभावित होता है।

दक्षिण एशिया, हिंद महासागर की केन्द्रीय अवस्थित के कारण इस क्षेत्र से होने वाले व्यापार, समुद्री डकैती व तस्करी, प्राकृतिक आपदा आदि सभी गतिविधियों का असर दक्षिण एशिया पर सीधे पड़ता है। गैर क्षेत्रीय शक्तियों की सक्रियता सीधे दक्षिण एशिया में है। दक्षिण एशियाई देशों में आपस के रिश्ते बहुत अच्छे नहीं है। अतः बाहरी

शक्तियों का पैर पसारने का मौका मिल जाता है। चीन व पाकिस्तान, भारत, के भय को दक्षिण एशिया में प्रसारित करते है। भारत के लिए दक्षिण एशिया से अनेक चुनौतियां जैसे प्रत्यायोजित आतंकवाद, विप्लव में वाह्य शक्तियों का समर्थन, तस्करी व अवैध प्रवेश की समस्या, प्राकृतिक आपदा, पड़ोसियों के साथ सीमा विवाद का सामना करना पड़ता है। फिर भी भारत बड़े भाई की की तरह अपनी क्षमता से लाभान्वित करने का प्रयास करता है।

12.3 दक्षिण एशिया का अर्थ

दक्षिण एशिया के अन्तर्गत भारत,पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, अफगानिस्तान, मालदीव, नेपाल व भूटान आते हैं । यह एशिया का उप क्षेत्र है जिसमें सिंधु गंगा का मैदान और प्रायद्वीपीय भारत शामिल है। 'दक्षिण एशिया' शब्द का इस्तेमाल अक्सर 'भारतीय उप–महाद्वीप' के पर्याय के रूप में किया जाता है। दक्षिण एशिया, दुनिया की सबसे पुरानी ज्ञात सभ्यताओं में से एक सिंधु सभ्यता का घर है, और आज विश्व की एक तिहाई जनसंख्या को यह क्षेत्र धारण करता है। जातीय, भाषाई, धार्मिक और राजनीतिक विखंडन के इतिहास, के बावजूद दक्षिण एशिया के लोग एक समान सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टिकोण से एकजुट है।

12.3– शीत युद्ध के पश्चात भारत की दक्षिण एशिया नीति–

1990 के बाद शीत युद्ध समाप्त हो गया पूर्वी यूरोपीय कम्युनिस्ट व्यवस्थाओं के पतन से दुनिया में वैश्वीकरण पर जोर बढ़ा। 1991 में सोवियत संघ के भंग हो जाने से एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था ने जन्म लिया। इन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव भारतीय विदेश नीति पर देखा जा सकता है। भारत ने चीन के साथ विश्वास बहाली और शांति बहाली के प्रयास प्रारंभ कर दिए ताकि शांति के वातावरण में अंतरराष्ट्रीय सहयोग का लाभ उठाया जा सके। सार्क भावना के विकास पर जोर दिया गया। प्रधानमंत्री देवगौड के काल में गुजराल सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ, जिसमें बड़े भाई की नीति पर जोर दिया गया। इस नीति में गैर बराबरी के स्तर पर पड़ोसियों के साथ बेहतर संबंध बनाने की नीति अपनाई गई। इस नीति में दक्षिण एशिया में सहयोग बढ़ाने के साथ–साथ पाकिस्तान को दक्षिण एशिया से सहयोग न करने की दशा में अलग–थलग करने की नीति के रूप में देखा जाता है। प्रधानमंत्री अटल जी के नेतृत्व में एनडीए सरकार ने पड़ोसियों के साथ बेहतर संबंध बनाने पर विशेष जोर दिया गया। जिसमें चीन विशेषतः पाकिस्तान को विदेश नीति में काफी महत्त्व दिया गया लेकिन पाकिस्तान की आन्तरिक राजनीति, सेना, आईएसआई के चलते कारगिल में घुसपैठ व भारतीय संसद पर हमले जैसी घटनाएं घटी। फिर भी 21वीं शताब्दी कि एनडीए सरकार ने पाकिस्तान के साथ समग्र वार्ताओं का दौर प्रारंभ किया।

1990 के दशक में हिमतक्षेस, साप्टा, बिमस्टेक विकास चतुर्भुज आदि की प्रगति को अच्छे पड़ोस नीति का परिणाम माना जा सकता है। 21वीं सदी की एनडीए व यूपीए दोनों सरकारों ने पड़ोस के साथ–साथ वैश्वीकरण के अनुरूप बृहत्तर पड़ोस की नीति पर जोर दिया। वर्तमान सरकार अपने पहले कार्यकाल के अनुभव के कारण पाकिस्तान के साथ सहज नहीं हो सकते हैं। अतः अभी एक्ट ईस्ट और पड़ोसी प्रथम नीति के माध्यम से बिम्सटेक सदस्यों की ओर रुख कर सकते हैं। भारत 21वीं सदीं में दक्षिण अफ्रीका से लेकर हिंद महासागरीय देश के साथ आस्ट्रेलिया तक संबंध बिस्तार पर लगा है। ताकि एफ्रो एशियाई राजनीति का नेतृत्व किया जा सके तथा इस क्षेत्र में अपने आर्थिक सामरिक हितों को पूरा किया जा सके। हिंद महासागरीय क्षेत्र में दुनिया भर की ताकतों का जमावड़ा को देखते हुए भारत का दक्षिण एशियाई देशों के साथ संबंध विस्तार अनिवार्य हो गया है। भारतीय विदेश नीति में पड़ोसियों के साथ पंचशील व सार्क भावना की प्रधानता है। यदि सार्क के अंतर्गत सफ्ता को पूरी तरह लागू किया जा सका तो दक्षिण एशिया निःसन्देह भारतीय प्रभाव क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो जाएगा।

बोध प्रश्न –1

नोट –। अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए

ठ इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न.अ–दक्षिण एशिया से आप क्या समझते है?

....।

ब–शीत युद्ध के पश्चात भारत की दक्षिण एशिया नीति पर प्रकाश डालिए–

....।

12.4 दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका

भारत अपनी क्षमता से दक्षिण एशिया को लाभान्वित करने का प्रयास प्रारंभ से ही कर रहा है। भारत पंचशील, सार्क भावना के विकास, गुजराल डॉक्ट्रिन, अघोषित मृदु राज्य की नीति, ज्यादातर देशों के साथ सीमा पर शांति बनाए रखने की नीति(च्छड), विश्वास बहाली के उपाय(CBM), ट्रैक–1 $g^2 g$ ट्रैक–2 $p^2 p$ के माध्यम से अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहा है। भौगोलिक दृष्टि से पड़ोसी देश किसी भी देश की कूटनीति का पहला चरण और विकास की कुंजी होते हैं। भारत की अर्थव्यवस्था की समृद्धि, सामाजिक विकास और भू राजनीतिक मजबूती के लिए पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

12.4.1 सार्क भावना के विकास में

भारत सार्क भावना का विकास करके अपने सामरिक, आर्थिक, राजनीतिक व अन्य हितों की पूर्ति कर सकता है। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने सामरिक हितों की दृष्टि से सार्क को सुरक्षा संगठन के रूप में विकसित करना चाह रहे थे। उनका मानना था कि सार्क देश अपने हितों को आपस में इतना समाहित कर दें कि उनके मध्य कोई संघर्ष ही ना रह जाए। सार्क भावना के विकास में सबसे बड़ी बाधा पाकिस्तान है। उसने सार्क को आर्थिक सहयोग में विकास को बाधित करने का प्रयास प्रारंभ से ही किया है। इसके पीछे पाकिस्तान को भारत के प्रभुत्व का भय है। भारत अपने सामरिक समस्या जिसका संबंध दक्षिण एशियाई देशों से है अगर भारत अपने पड़ोसियों के मन से भय को निकाल दे तो हिंद महासागर में गैर क्षेत्रीय शक्तियों का हस्तक्षेप नहीं बढ़ेगा। स्वास्थ्य, पर्यावरण, पेयजल, खाद्यान्न के संकटों को आपसी सहयोग से निपटाया जा सकता है। उपरोक्त क्षेत्र में दक्षिण एशिया के देश भारत पर निर्भर हैं अतः भारत भी अपनी क्षमता से अधिक अग्रणी भूमिका का निर्वहन करता है।

12.4.2 बड़े भाई की भूमिका

भारत ने शीत युद्ध के बाद दक्षिण एशिया में सुरक्षा संबंधी दुविधा को प्रकृति संघर्ष के रूप में देखने के दृष्टिकोण का त्याग किया। भारत ने एक ऐसे सामाजिक संरचना बनाने का प्रयास किया जिसके

में बिना युद्ध लड़े देशों के मध्य विवादों को हल करने के लिए विश्वास सृजन पर बल दिया गया। गुजराल डॉक्ट्रिन के माध्यम से भारत ने एक तरफा रियायत प्रदान करने की नीति के द्वारा क्षेत्र को अपना समर्थन देने का आश्वासन दिया। गुजराल डॉक्ट्रिन के पांच प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे –

- भारत पड़ोसी देशों को सहायता देने के बदले उनसे कोई अपेक्षा नहीं रखेगा बल्कि सद्भावना और विश्वास के आधार पर वह सब कुछ करेगा जो वह कर सकता है।
- कोई भी दक्षिण एशियाई देश अपने संप्रभु राज्य क्षेत्र से इस क्षेत्र के किसी अन्य देश के हितों के खिलाफ गतिविधियां संचालित नहीं होने देगा।
- सभी दक्षिण एशियाई देश एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।
- सभी विवादों को शांतिपूर्ण और द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से सुलझाया जाएगा।

12.4.3 पड़ोसी प्रथम की नीति

2008 के बाद भारत के पड़ोसी देशों में चीन का प्रभाव बढ़ने लगा इसलिए भारत ने बड़े भाई के रूप में अपने पड़ोसियों के साथ गैर बराबरी के व्यवहार को कड़ाई से अनुपालन किया। पड़ोसी प्रथम की नीति की परिकल्पना 2008 में की गई थी। इसके तहत संपर्क के सिद्धांतों को 5 के रूप में रेखांकित किया गया है– सम्मान, संवाद, शान्ति, समृद्धि और संस्कृति। 2014 के बाद आर्थिक सहयोग, विकास सहायता तथा साझा चुनौतियों के समाधान के माध्यम से संबंधों को मजबूत करने के लिए एनएचपी को नया रूप दिया गया ।पड़ोसी प्रथम की नीति में पाकिस्तान को छोड़कर सभी पड़ोसियों का समर्थन मिला, भारत का मानना है कि पाकिस्तान के साथ सहयोग, पाकिस्तान द्वारा आतंक संतुलन और हिंसा को बढ़ावा देने की बजाय शांतिपूर्ण माहौल बनाने पर निर्भर करता है । सार्क और बिम्सटेक जैसे संगठनों के माध्यम से भारत क्षेत्रीय एवं उप क्षेत्रीय पहलों पर अधिक ध्यान केंद्रित कर रहा है।

बोध प्रश्न –2

नोट– A –अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

B –इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न –अ. गुजरात डॉक्ट्रिन के प्रमुख उद्देश्य क्या थे?

ब–पड़ोसी प्रथम की नीति को स्पष्ट कीजिए।

12.5 सारांश

दक्षिण एशिया के प्रति भारतीय विदेश नीति गतिशील नीति है। यह क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार सामंजस्य स्थापित करते हुए क्षेत्र में भारत के प्रासंगिक हितों को समायोजित करती रहती है। भारत भी अपने पड़ोसी देशों के प्रति प्रतिबद्धता, दक्षिण एशिया और अन्य क्षेत्र के भविष्य को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेगी। भारत अपने पड़ोसी देश का कठिन समय में सहयोग करने और उनके साथ मिलकर काम करने के लिए हमेशा से प्रतिबद्ध रहा है। ऐसे में स्थिर एवं समृद्ध पड़ोस सुनिश्चित करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो भारत के राष्ट्रीय हितों एवं विदेश नीति के उद्देश्यों के अनुरूप हो।

12.6 शब्दावली

प्रत्यायोजित आतंकवाद –राष्ट्रीय सरकारों के सक्रिय समर्थन से की जाने वाली आतंकवादी हिंसा जो हिंसक गैर राज्यकर्ताओं को प्रदान की जाती है।

सामरिक –सामरिक एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ है समर (युद्ध) संबंधित। इसके अलावा इसे रणनीतिक, नीतिगत आदि अर्थों के रूप में उपयोग किया जाता है।

G2G –Government to Government सरकार से सरकार एक शब्द है जिसका उपयोग सरकारों के बीच अंतरू क्रियाओं को वर्णित करने के लिए किया जाता है।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

अ. इस ईकाई का भाग 12.02 देखें।

ब. इस ईकाई का भाग 12.03 देखें।

बोध प्रश्न –2

अ. इस ईकाई का भाग 12.04.02 देखें।

ब. इस ईकाई का भाग 12.04.03 देखें।

12.7– उपयोगी पुस्तकें

भारत की विदेश नीति –बी एन खन्ना व लिपाक्षी अरोड़ा

भारतीय विदेश नीति दृ जे एन दीक्षित

भारत की विदेश नीति दृ पी सी जैन

भारत की विदेश नीति दृ आर एस यादव

भारतीय विदेश नीति दृ वी सिंह गहलोत

इकाई –13 हिम तक्षेस संगठन का उद्‌भव, भूमिका

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 हिमतक्षेस काउद्‌भव

13.3 हिमतक्षेस कीसंरचना

13.4 हिमतक्षेस का उद्देश्य

13.5 हिमतक्षेस की प्रगति

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 उपयोगी पुस्तकें

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हिमतक्षेसक्षेत्रीय संगठन के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। हिंद महासागर आज विश्व राजनीति, आर्थिक व सैनिक गतिविधियों का केंद्र बिंदु बनाहुआ है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात अध्ययनकर्ता को......

–दक्षेस संगठन की संरचना, स्थापना, उद्देश्य व सहयोग के क्षेत्र की समझ हो सकेगी।

–हिमतक्षेस की प्रगति को भी जानसकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हिंद महासागर विश्व के महासागरों में क्षेत्रफल की दृष्टि से तृतीय स्थान रखता है। इसका क्षेत्रफल एशिया तथा अफ्रीका दोनों महाद्वीपों के क्षेत्रफल के बराबर है। यह उत्तर में एशिया, पश्चिम में अफ्रीका, पूर्व में ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण में अंटार्कटिका तक फैला हुआ है। यह आदिकाल से समुद्री मार्ग एवं पारस्परिक समुद्री मार्गों का क्षेत्र रहा है। यह एक खादी युक्त समुद्र है जिसका अधिकांश भाग स्थल से घिरा हुआ है। इस महासागर का पश्चिमी द्वार अफ्रीका काकेप, होर्मुज का जल डमरू मध्य, स्वेज नहर तथा बॉब एल मण्डेवहै तथा पूर्वी द्वार मलक्का एवं सुंडा जलडमरूमध्य है। हिंद महासागर के महत्वपूर्ण द्वीप अंडमान निकोबार दीप समूह, मालदीव,लक्षद्वीप, सेशिलीज दीप, माल्टा द्वीप, मॉरीशस दीप समूहचेगासद्वीप समूह तथा सुकार्तोद्वीपसमूह।

भारत के दक्षिण में स्थित हिंद महासागर एक ऐसा क्षेत्र है जहां विश्व के दो तिहाई देशों के हितपरस्पर टकराते हैं। 35 देशों की अंतर्राष्ट्रीय सीमा इस महासागरीय क्षेत्र से लगती है, जिसमें 12 राष्ट्र अफ्रीका महाद्वीप से एवं 22 राष्ट्र एशिया महाद्वीप के हैं तथा एक ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप भी है। यह महासागर विश्व की गतिविधियों का सर्वाधिक व्यस्त क्षेत्र है। राजनीति में हिंद महासागर का अपना अलग स्ट्रैटेजिक एवं सामरिक महत्व है। सामरिक दृ ष्टि से हिंद महासागर के महत्व का अंदाजा अल्फ्रेड महान के शब्दों से लगाया जा सकता है कि 'हिंद महासागर सात समुद्रों की कुंजी है 21वीं शताब्दी में विश्व के भाग्य का निर्माण इसी जल से होगा'। हिंद महासागर आर्थिक, राजनीति और स्ट्रैटेजिक कारण से आज विश्व की बड़ी शक्तियों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है।

हिंद महासागर के देश राजनीतिक रूप से स्वतंत्र तो होगए मगर आर्थिक दृष्टि से अभी भी बड़ी शक्तियों के 0पर निर्भर है। हिंद महासागरीय देश आपस में कभी सीमा को लेकर तो कभी संसाधनों के बंटवारे को लेकर तो कभी अन्य समस्या को लेकर परस्पर लड़ते रहते हैं। क्षेत्रीय सहयोग संगठन की अवधारणा से प्रेरित होकर हिंद महासागर के तटवर्ती देशों ने संघर्षों के रास्ते को छोड़कर सहयोग विकसित करने का निर्णय लिया है। जब दो–दो महायुद्ध

लड़ने वाले यूरोपीय देश आंतरिक मतभेदों के बावजूद परस्पर सहयोग कर सकते हैं तो हिंद महासागर के तटवर्ती देश क्यों नहीं कर सकते हैं। अतः हिंद महासागर की प्रतिरक्षा एवं व्यापार हेतु हिंद महासागर तटवर्तीय राष्ट्र सहयोग संघ (हिमतक्षेस)का गठन किया गया है।

13.2 हिमतक्षेस संगठन काउद्‌भव

शीत युद्ध की समाप्ति के बादक्षेत्रीय आर्थिक सहयोग एवं एकीकरण के बढ़ते महत्व को देखते हुए हिंद महासागर के तटीय देश हिंद महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन (हिमतक्षेस) की स्थापना 5 मार्च 1997 को पोर्ट लुइस मॉरीशस में की। इस संगठन के भारत तथा 13 अन्य संस्थापक देश थे–भारत,ऑस्ट्रेलिया, मलेशिया, इंडोनेशिया, श्रीलंका, सिंगापुर, ओमान, अमन, तंजानिया, केन्या, मेडागास्कर, मुजाम्बीक, दक्षिण अफ्रीका और मॉरीशस। अप्रैल 1999 में हिमतक्षेस की मोपुलबैठक में हिमतक्षेस के पांच राष्ट्रों –ईरान, थाईलैंड, संयुक्त अरब अमीरात, सेशेल्स एवं बांग्लादेश की सदस्यता ग्रहण करने से सदस्य राष्ट्रों की संख्या 14 से बढ़कर 19 हो गई।हिमतक्षेस खुले क्षेत्रवाद के सिद्धांत पर आधारित हिंद महासागर के तटीय देशों का एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन है। खुले क्षेत्रवाद का आशयहै कि संगठन द्वारा गैर सदस्य देशों के व्यापार सुविधाओं में कोई भेदभाव नहीं करेगा। हिंद महासागर क्षेत्र के सभी सम्प्रभु देश संगठन की सदस्यता के लिए पात्र हैं। सदस्य बनने के लिए राज्यों को संगठन के चार्टर में निहित सिद्धांतों और उद्देश्यों का पालन करना होगा। वर्तमान में हिमतक्षेस में 23 सदस्य देश एवं 12 वार्ता भागीदार देश हैं।

13.3 हिमतक्षेस की संरचना

हिमतक्षेस संगठन की सर्वोच्च निर्णयकारी संस्था मंत्रिपरिषद् होती है। जिसे प्राथमिक निकाय भी कहा जाता है। इसमें सभी सदस्य देशों के विदेश मंत्री या समकक्ष शामिल होते है। मंत्री परिषद् के बैठकों का प्रबंधन अध्यक्षता करने वाले देश के विदेश मंत्रालय द्वारा हिमतक्षेस के सचिवालय से घनिष्ठ सहयोग से किया जाता है। मंत्रिपरिषद् का नेतृत्व अध्यक्ष द्वारा किया जाता है जिसका कार्यकाल 2 वर्ष का होता है। मंत्रिपरिषद् की बैठक हर साल अध्यक्ष देश में आयोजित होती है। मंत्री परिषद् का मुख्य कार्य नीतियों का निर्माण करना , सहयोग की प्रगति की समीक्षा, सहयोग के लिए नए क्षेत्रों का निर्धारण करना, कार्यात्मक निकायों की स्थापना, विशेष एजेंसियों की स्थापना, सामान्य हित के मामले पर कोई अन्य निर्णय लेना।

वरिष्ठ अधिकारियों की समिति(सीएसओ) हिंद महासागर रिम एसोसिएशन(आई ओ आर ए) की दूसरी सबसे बड़ी निर्णय लेने वाली संस्था है। यह सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियों से मिलकर विभिन्न एजेंडा मदों की समीक्षा, चर्चा और सिफारिश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।इसके अतिरिक्त समिति चार प्रमुख कार्यों का संपादन करती है–

- क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग पहलों के लिए प्राथमिकताएं स्थापित करना।
- विशिष्ट कार्यों और परियोजनाओं की रूपरेखा तैयार करने वाले कार्यक्रमों काविकास निगरानी व समन्वय करना।
- इन कार्यों के कार्यक्रमों की वित्तीय व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के लिए संसाधन जुटाना।
- मंत्रिपरिषद् को आवधिक रिपोर्ट और नीतिगत मामले प्रस्तुत करना तथा उन्हें प्रगति और प्रासंगिक विचारों से अवगत कराना।

वित्त संबंधी उपसमिति वह तंत्र है जो संगठन के सभी परिचालन और परियोजना व्यय की समीक्षा करता है। वित्त पर उपसमितिसंगठन के धन के प्रबन्धन में पारदर्शिता और जवाबदेही में योगदान देती है। ज्त्व्प्ञ। (तिकड़ी)एक संस्थागत तंत्र है जिसमें हिमतक्षेस के वर्तमान अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व भावी अध्यक्ष तथा भूतपूर्व अध्यक्ष शामिल है। इसका मुख्य कार्य संगठन को महत्वपूर्ण मामलों पर सलाह देना है जैसे मौजूदा तंत्र की समीक्षा या नए तंत्रोंका निर्माण, नीतिगत निर्णय तथा सदस्य देशों को रिपोर्ट करना आदि।

13.4 हिमतक्षेस का उद्देश्य

हिमतक्षेस के चार्टर के अनुसार उसके निम्नलिखित उद्देश्य है दृ

- हिंद महासागर क्षेत्र व इसकेदेशों का जीवंत व संतुलित विकास करना तथा क्षेत्रीय सहयोग के लिए एक साझा मंच तैयार करना।
- उन क्षेत्रों में सदस्य देशों के मध्य सहयोग को प्रोत्साहित करनाजिसमें सदस्य देशों का अधिकतम साझाहित निहित हो। इस दृष्टि सेहिमतक्षेस द्वारा व्यापार तथा निवेश तकनीकी हस्तांतरण पर्यटन ढांचा का सुविधाओं का विकास तथा मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में कई विकास कार्यक्रमों को तैयार कर लागू करना।
- आपसी लाभके लिए सहयोग के अन्य क्षेत्रों की पहचान करना।
- सदस्य देशों के मध्य व्यापार को बढ़ावा देने के लिए व्यापार उदारीकरण की नीतियों को अपनाना व उन्हें लागू करना।
- सदस्यदेशों के शैक्षणिक संस्थाओं तथा विद्वानों, व्यापारिक समूहों एवं जनता के मध्य अन्तरू क्रियाओं को प्रोत्साहित करना।
- सदस्य देशों कीसंस्थाओं के मध्य समर्थन वसहयोग मध्य से क्षेत्र के मानवसंसाधनों केविकास काप्रयास करना।

बोध प्रश्न –1

नोट : अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

इस इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

अ. हिमतक्षेस के उद्भव पर प्रकाश डालिए।

ब. हिमतक्षेसके संगठनात्मक संरचना का उल्लेख कीजिए।

स. हिमतक्षेस के उद्देश्यों कावर्णन कीजिए।

13.5 हिमतक्षेस की प्रगति

हिमतक्षेस ने अपनी पहली बैठक 1997 में 10 सूत्रीय कार्य योजना को स्वीकृति प्रदान कीजिसमें मानकों और प्रत्यापनों में सहयोग,हिन्दमहासागर तटीय वेबसाइट कीस्थापना, निवेश कासरलीकरण, व्यापार कार्यक्रमों की प्रोन्नति,1999 में हिन्दमहासागरीय तटीय मेले का आयोजन और क्षेत्र के तकनीकी स्तर में सुधार। मापुतो(मोजांबिक) में आयोजित मन्त्री परिषद् कीबैठक में व्यापार एवं निवेश कार्य योजना नीति को विकसित करने करने की स्वीकृति दी गई इसका प्रमुख उद्देश्य है –हिमतक्षेसदेशोंके बीच व्यापार उदारीकरण, व्यापार सरलीकरण और आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग। हिमतक्षेस के बंगलुरु वगुरुग्राम नगरों में आयोजित बैठक में 6 प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को चिन्हित किया गया था। ये क्षेत्र है समुद्री सुरक्षा, व्यापार तथा निवेश का उदारीकरण मत्स्य उत्पादन का प्रबन्धन, आपदा प्रबंधन, विज्ञान, तकनीकी व शैक्षणिक सहयोग। हिमतक्षेस ने 12वीं बैठक में 21बिन्दूओं पर पर घोषणा पत्र जारी किया इसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य योजना समुद्री डकैती कोसमाप्त करने केलिए आपसी सहयोग की आवश्यकता पर बल था।13वेंसम्मेलन आस्ट्रेलिया में सम्पन्न हुआ इसमें सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस क्षेत्र के टिकाऊ तथा सन्तुलित विकास को आगे बढ़ाने में सहयोग को मजबूत करने पर बल दिया गया। सम्मेलन में यह माना गया कि हिन्दमहासागर काक्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं कीदृष्टि से अधिक संवेदनशील है अतः आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में सदस्य देशों के मध्य अधिक सहयोग की आवश्यकता है।2019 बैठक में निर्णय लिया गया कि क्षेत्र और अन्य स्थानों पर आइओआरएकी रणनीतिक और आर्थिक सहयोग को मजबूत करने के लिए रणनीतिक योजना कार्यशाला आयोजित की जाएगी जिससे महत्वपूर्ण सुधारों के लिए आगे कामार्ग प्रशस्त होगा। आइओआरए और विकासशील देशों के लिए अनुसंधान एवं सुचना प्रणाली (आरआई एस) के बीच समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए। आइओआरए 2023 की बैठक की थीम क्षेत्रीय वास्तुकला को मजबूत करना और हिन्दमहासागर की पहचान मजबूत करना"। इसके अतिरिक्त आइओआरए ने अनेक क्षेत्रों में उपलब्धि प्राप्त भी है जैसे शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग विकसित करने केलिए शैक्षणिक समूह कीस्थापना, आइओआरए नवीकरणीय ऊर्जा और ऊर्जा दक्षता पहल का शुभारंभ। क्षेत्रीय सहयोग का मार्गदर्शन करने के लिए आइओआरए कार्य योजना को अपनाना। क्षेत्रीय परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए विशेष कोष का निर्माण।

बोध प्रश्न –2

नोट रू .अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

इ.इस इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

अ. हिमतक्षेस की प्रगति की समीक्षा कीजिए।

13.6 सारांश

हिमतक्षेस क्षेत्रीय सहयोग संगठन क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियों जैसे सदस्य देशों के विविध हितों और प्राथमिकताओं के बीच समन्वय बनाना, क्षेत्रीय पहलों और परियोजनाओं काप्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना, क्षेत्रीय चुनौतियों से निपटने के लिए सीमित संसाधनऔर क्षमता है, सदस्य देशों केबीच संभावित संघर्षों और विवादों काप्रबंधन करना एवं इस क्षेत्र में भू–राजनीतिक तनाव और प्रभावों से निपटनाआदि।फिर भी हिन्द महासागर रिम एसोसिएशन आर्थिक एकीकरण पर केंद्रित है। इसने नयेव्यापार मार्गऔर सांस्कृतिक आदान–प्रदान शामिल है। आइओआरए की स्थापना इस क्षेत्र के देशों की साझाकोशिशों से हुई, इसका मकसद क्षेत्रीय सहयोग बढ़ानाहै।हिन्दमहासागर के जोछोटे और विकासशील देश अपने हितों कीसुरक्षा केलिए बाहरी शक्तियों पर निर्भर है वो आइओआरए से फायदा उठा सकते हैं। इससे बातचीत में उनकी हिस्सेदारी बढ़ेगी। समुद्री सुरक्षा कीअवधारणा पर विस्तार से मंथन करने की जरूरत है और इसमें शामिल शक्तिशाली देशों को इस पर काम करना होगा। आइओआरए भारत और क्षेत्र के अन्यदेशों के लिए एक सुनिश्चित स्थान बना हुआ है जो बड़ी शक्ति प्रतिद्वंद्वीताकी निरन्तर चुनौती से दूर रहना चाहता है।

13.7 शब्दावली

- स्ट्रेटजिक –यहशब्द मूलतः सैन्य विज्ञान से आया है जिसकामतलब है –किसीलक्ष्य कीप्राप्ति के लिए बनायीगई कार्ययोजना।
- भू–राजनीति दृराजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भूगोल के प्रभावों का अध्ययन भू–राजनीति कहलाती है।
- 13.08 उपयोगी पुस्तकें
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एवं अंतर्राष्ट्रीय कानून बीएल फाडिया एवं कुलदीप फाडिया
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वीसी नरुला
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अंजलि दीक्षित व विजय प्रताप सिंह
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन डॉ रामानंद

13.9 बोधप्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

अ–इसइकाई काभाग 13.02देखें।

ब–इसइकाई काभाग 13.03देखें।

स–इसइकाई काभाग 13.04देखें।

बोध प्रश्न –2

अ–इसइकाई काभाग 13.05 देखें।

इकाई–14 परमाणु अप्रसार संधि, परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 परमाणु अप्रसार संधि

14.2.1 परमाणु अप्रसार संधि की आलोचना

14.3 व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी)

14.4 व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि एवं भारत और सीटीबीटी

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 उपयोगी पुस्तकें

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0. उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में परमाणु हथियारों की विनाशकता को देखते हुए उसके अप्रसार से संबंधित संधियों के बारे में विस्तार पूर्वक बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत अध्ययन करता को निम्नलिखित के बारे में सामान्य समझ हो सकेगी–

- परमाणु प्रसार संधि क्या है?
- परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि को जान सकेंगे.
- भारत का परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि के प्रति क्या दृष्टिकोण को जान सकेंगे.

14.1 प्रस्तावना

युद्ध और हिंसा मानव जाति के अटूट सहचर रहे हैं। परंतु जैसे–जैसे इनकी विभिषिका बढ़ती गई वैसे–वैसे इन्हें नियंत्रित करने की आवाज भी उठाई गई। परमाणु हथियारों की विनाशकता 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु हथियारों के इस्तेमाल के बाद पता चला और यह स्पष्ट हो गया कि राज्यों द्वारा परमाणु हथियारों का विकास उन्हें हथियारों के उद्देश्यों के लिए प्रौद्योगिकी और सामग्रियों को मोड़ने में सक्षम बना सकता है। इस प्रकार इस तरह के प्रयास को रोकने के लिए तथा परमाणु 0र्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए जिम्मेदार राष्ट्रों ने चर्चा प्रारंभ की। 1946 के शुरुआती प्रयास में परमाणु शक्ति आयोग का निर्णय लिया गया। जिसका उद्देश्य था कि देश परमाणु शक्ति के उत्पादन को अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण में रखने को तैयार हो जाएं ताकि इसके केवल शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए उपयोग की निश्चित व्यवस्था की जा सके तथा आण्विक व सामूहिक विनाश के अन्य सभी शास्त्रों का पूर्ण निषेध किया जा सके। दोनों महाशक्तियों में मतभेद की वजह से यह निष्प्रभावी हो गया। दिसम्बर 1953 में अमेरिकी राष्ट्रपति ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में 'शांति के लिए परमाणु' प्रस्ताव में आग्रह किया कि शांतिपूर्ण परमाणु प्रौद्योगिकी का प्रसार करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की जाए जबकि अतिरिक्त देशों में हथियार क्षमता के विकास के खिलाफ सुरक्षा की जाए। परिणामस्वरूप 1957 में अंतराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की स्थापना हुई जिसे परमाणु प्रौद्योगिकी के प्रसार और नियंत्रण की दो दोहरी जिम्मेदारी सौंपी गई।

1960 के दशक में अमेरिका और सोवियत संघ दोनों देशों ने एक दूसरे के विरुद्ध परमाणु क्षेत्र में द्वितीय प्रहार क्षमता अर्जित कर लेने के उपरांत सोवियत संघ की विशाल सी को पश्चिमी यूरोपीय देशों ने भय के रूप में देखा। नाटो के रणनीतिकारों ने नाटो की परंपरागत फौजों को सामरिक परमाणु हथियारों से लैस करके परम्परागत प्रतिरोधकता की भावना को जन्म दिया। सोवियत संघ द्वारा सामरिक परमाणु हथियार विकसित कर लेने के उपरांत

दोनों महाशक्तियां परमाणु हमले को निष्प्रभावी बनाने के लिए प्रयास करने लगे। परमाणु हथियारों के प्रकाश में आते ही परमाणु निरूशस्त्रीकरण के प्रयास शुरू हो गए परंतु इस क्षेत्र में वैश्विक प्रगति को असंतोषजनक पाकर निरूशस्त्रीकरण के बजाय परमाणु अप्रसार अथवा शस्त्र नियंत्रण पर जोर दिया जाने लगा ताकि हथियारों के उत्पादन व प्रसार को रोका जा सके।

14.2 परमाणु अप्रसार संधि (Nuclear Non&Proliferation Treaty&NPT)

परमाणु अप्रसार संधि अर्थात एनपीटी जिसे अमेरिका एवं सोवियत संघ ने मिलकर तैयार किया था, ताकि परमाणु शस्त्र विहिन राष्ट्रों की पहुंच से परमाणु शस्त्रों के प्रसार को रोका जा सके। 11 मार्च 1968 को इस संधि पर संयुक्त राष्ट्र की महासभा में पेश किया गया। महासभा ने 12 जून 1968 को इस संधि को उपस्थित सदस्यों में से 95 पक्ष में तथा चार विपक्ष में वोटो के साथ पारित किया। यह संधि मार्च 1970 से लागू हो गई। संधि को प्रारंभ में अगले 25 वर्ष के लिए लागू किया गया तथा निश्चित किया गया की संधि का पुनर्मूल्यांकन 25 वर्ष बाद किया जाएगा। 11 मार्च 1995 को अप्रसार संधि के पक्षकार राज्यों ने इस संधि को अनिश्चितकालीन विस्तारित करने का निर्णय लिया। संधि में अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अमिकरण (आइईए) को गैर परमाणु शक्ति राज्यों तक परमाणु शक्ति का विस्तार न हो इसका दायित्व सौंपा गया।

इस संधि के माध्यम से सदस्य राज्यों के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं–

- परमाणु शक्ति संपन्न राज्य परमाणु अस्त्र विहीन राज्यों को परमाणु बम के निर्माण की तकनीकी की जानकारी नहीं देंगे।
- परमाणु राज्य परमाणु अस्त्र विहीन राज्यों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने में सहायता नहीं देंगे।
- परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्र परमाणु बम बनाने का अधिकार त्याग देंगे।
- परमाणु अस्त्रों के परीक्षण और विस्फोटों पर रोक लगाने की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए।
- ऐसे देश जिनमें परमाणु अस्त्र निर्माण की तकनीकी क्षमता है वे परमाणु शक्ति का विकास असैनिक कार्यों के लिए करेंगे।

इसके अलावा संधि पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र आणविक शस्त्रों की होड़ समाप्त करने एवं आणविक निरूशस्त्रीकरण को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए बाध्य है। यदि युक्ति संधि के कारण किसी राष्ट्र के सर्वोच्च हितों का हनन होता हो एवं उसके कारण कोई असाधारण घटनाएं हो रही हो तो वे सन्धि से अलग हो सकने के लिए स्वतंत्र हैं।

14.2.1 परमाणु अप्रसार संधि की आलोचना

संधि के प्रारूप पर सबसे अधिक आपत्ति फ्रांस, इटली, जर्मनी और भारत को थ। इसके अलावा अन्य राज्यों द्वारा निम्नलिखित आधारों पर परमाणु अप्रसार संधि की आलोचना की जाती है–

- यह एक भेदभावपूर्ण संधि है जो परमाणु अस्त्र विहीन राज्यों की तुलना में परमाणु अस्त्र संपन्न राज्यों को उच्चतम स्थिति को बनाए रखने के उद्देश्य से बनी है।
- यह परमाणु संपन्न तथा परमाणु विहीन राष्ट्रों के बीच सत्य के अंतर को अनुचित रूप से न्याय उचित ठहराने का प्रयत्न करती है।
- यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में निःशस्त्रीकरण या शस्त्र नियंत्रण किसी की भी प्राप्ति के लिए सहायक नहीं है।
- यह संधि फ्रांस तथा चीन को जो मास्को आंशिक परीक्षण प्रतिबंध संधि नजरन्दाज करते हुए परमाणु परीक्षण जारी रखे हुए हैं तथा मुख्य परमाणु शक्ति के रूप में विकास कर रहे हैं को यह संधि किसी तरह से नहीं रोकती है।
- परमाणु अप्रसार संधि वास्तव में एक ऐसा राजनीतिक उपकरण है जो राष्ट्रों को परमाणु संपन्न तथा परमाणु विहिन राष्ट्रों में बाटता है।

भारत का भी मानना है कि यह संधि भेदभावपूर्ण है असमानता पर आधारित है और एक पक्षीय एवं अपूर्ण

है। भारत का मानना है कि आणविक आयुधों के प्रसार को रोकने और पूर्ण निःशस्त्रीकरण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्षेत्रीय नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए।

बोध प्रश्न –1

नोट :

I. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

अ. परमाणु अप्रसार संधि पर प्रकाश डालिए।

ब. भारत व अन्य देशों द्वारा परमाणु अप्रसार संधि की आलोचना के आधारों का उल्लेख कीजिए।

14.3 व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (**Comprehensive Test Ban Treaty**) **CTBT**

व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि अर्थात सीटीबीटी विश्व भर में किए जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के उद्देश्य से लाई गई संधि है। यह संधि 24 सितंबर 1996 को अस्तित्व में आयी। इस संधि में यह व्यवस्था की गई की कोई भी देश परमाणु परीक्षण नहीं करेगा लेकिन परमाणु शस्त्र धारक देश अपने–अपने परमाणु शस्त्र बनाए रखेंगे तथा वह प्रयोगशालाओं में परमाणु अनुसंधान हेतु निमित्त परीक्षण कर सकेंगे। परमाणु शस्त्र विहिन देश परमाणु शस्त्र न बनाएंगे और न ही इसके लिए कोई परीक्षण करेंगे। वे शांति परमाणु तकनीकी का विकास कर सकेंगे परंतु इस संबंध में वे अपने परमाणु संयंत्रों तथा केंद्रों को अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण के लिए खुला रखेंगे। सीटीबीटी के प्रस्ताव का अवलोकन करने के उपरांत तीन बातें स स्पष्ट होती है एक, इस संधि के लागू होने से सभी तरह के परमाणु परीक्षण स्थगित हो जाएंगे इस तरह नए परमाणु आयुधों का निर्माण नहीं होगा। दूसरा, संख्यात्मक और गुणात्मक विकास पर प्रतिबंध लग जाएगा एवं तीसरा महाशक्तियों को यह विशेषाधिकार प्राप्त होगा कि वह अपनी सुविधा अनुसार संघ से अलग हो सकती है।

नई तकनीकी की सहायता से अब परमाणु अस्त्रों का विकास और परीक्षण प्रयोगशालाओं और कंप्यूटर से बनाई गई परिस्थितियों में किया जा सकता है। इस स्थिति में व्यापक सीटीबीटी का उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो पाता। यदि वास्तव में इस संधि के प्रस्तावकों का इरादा नेक होता तो इसे निरूशस्त्रीकरण से जोड़ना चाहिए था जिससे परमाणु अस्त्रों को और अधिक विकसित एवं मारक बनाने की भी समूची प्रक्रिया पर रोक लग सकती।

14.4 व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी) और भारत

सीटीबीटी अपनी स्थापना से ही भारत की शंकाओं का सामना कर रहा है। भारत अपनी परमाणु मुक्त दुनिया की मांग पर कायम है। मगर सीबीटी के लिए उसके समर्थन में कई चिंताएं हैं जैसे– सैद्धांतिक, प्रक्रियात्मक, राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी है। भारत का सैद्धांतिक विरोध समयबदद्ध तरीके से सार्वभौमिक और पूर्ण परमाणु निरूशस्त्रीकरण पर उसके जोर से उपजा। भारत परंपरागत रूप से यह मानता रहा है कि यह अंतिम लक्ष्य है और परीक्षण प्रतिबंध केवल वहां पहुंचने का साधन है मगर सीटीबीटी में पूर्ण निरूशस्त्रीकरण पर जोर नहीं दिया गया। प्रक्रियात्मक रूप से सीटीबीटी में एनपीटी के p^5 द्वारा परमाणु निरूशस्त्रीकरण के लिए दृढ़ प्रतिबद्धता नहीं हुई, जैसा कि परमाणु विहीन राष्ट्रों द्वारा मांग की गई थी। एनपीटी के विस्तार के बाद भारत को लगा कि विखंडन कट ऑफ संधि (एफएमसीटी) के अलावा p^5 को परमाणु हथियारों के समयबद्ध उन्मूलन खंड पर रखने का एकमात्र तरीका सीटीबीटी के माध्यम से है। मगर सीटीबीटी में कुछ प्रावधानों को तो शामिल किया गया लेकिन समयबद्ध पहलू को शामिल नहीं किया गया। भारत का दृष्टिकोण है कि परीक्षण प्रतिबंध का प्रयास अपने आप में एक अंत बन गया है, जबकि दुनिया के संपन्न देशों और वंचित देशों के बीच प्रौद्योगिकी का अंतर बढ़ रहा है। भारत की एक और चिंता यह भी है कि जिन लोगों के पास पहले से ही परमाणु हथियार है वह सब क्रिटिकल और प्रयोगशाला नकली परीक्षण के माध्यम से अपने शस्त्रागार को उन्नत कर सकते हैं।

परमाणु शक्ति संपन्न शक्तियां भारत के उपर्युक्त तर्कों को स्वीकार नहीं करती है। कोई भी देश न तो अपने

परमाणु हथियारों को नष्ट करना चाहता है और न प्रयोगशाला स्तर के परीक्षणों को ही स्थगित करने के लिए तैयार है। परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र इस प्रयास में है कि दुनिया के अन्य देश उनकी समकक्षता में ना पहुंच सके, और अपनी सुरक्षा के लिए उनके 0पर निर्भर रहे। इस संधि के पीछे विकसित राष्ट्रों का अपना हित है जिसके लिए विश्व शांति और मानवता की रक्षा के नाम पर राष्ट्रों को छल रहे हैं।

बोध प्रश्न –2

नोट

I. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

अ. व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि पर प्रकाश डालिए .... ।

ब. सीटीबीटी पर भारतीय दृष्टिकोण का उल्लेख कीजिए .... ।

14.6. सारांश

परमाणु प्रसार नियंत्रण संधि के बाद से निरूशस्त्रीकरण के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हुई। परंतु शस्त्रास्त्रों की प्रतियोगिता को रोकने के लिए अमेरिका और सोवियत संघ ने परस्पर कुछ समझौते किए। मगर शीत युद्ध के कारण निरूशस्त्रीकरण संबंधी वार्ताओं में गतिरोध बना रहा। शीत युद्ध के अवसान पर 1985 में गोर्बाचोव और रोनाल्ड रीगन ने जिनेवा में घोषणा की कि नाभिकीय युद्ध में कोई विजेता नहीं होगा। नाभिकीय शस्त्रों पर आधारित युद्ध संपूर्ण मानव जाति के संहार का कारण बन सकता है। परमाणु निरू शस्त्रीकरण की विडंबना यह है कि इसके लिए सिर्फ अमेरिका व रूस ने ही सहमति दिखाई है। अन्य परमाणु शक्तियों का तर्क यह है कि पहले दोनों शक्तियां परमाणु कटौती के माध्यम से उनकी बराबरी पर आए तभी वह परमाणु निरूशस्त्रीकरण का हिस्सा बनेंगे। क्षेत्रीय निरूशस्त्रीकरण के तहत अभी तक ऑस्ट्रेलिया,अफ्रीका एवं लैट्रिन अमेरिकी महाद्वीप को परमाणु मुक्त बनाया जा सका है। अभी तक संपन्न सभी परमाणु निरूशस्त्रीकरण संधियों को यदि पूरी तरह लागू कर दिया जाए तो भी इतनी परमाणु क्षमता शेष रह जाएगी कि विश्व का अनेक बार विनाश सम्भव है।

14.6. शब्दावली

निरूशस्त्रीकरण –निरूशस्त्रीकरण हिंसा के उत्पादित संसाधनों की कटौती या समाप्ति को कहते हैं।

P–5 परमाणु अप्रसार संधि के तहत पांच परमाणु हथियार राज्यों –चीन, फ्रांस, रूस, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका को मान्यता प्राप्त है।

सामरिक परमाणु हथियार –ऐसे परमाणु हथियार जिनके इस्तेमाल युद्ध के मैदान में किसी विशिष्ट सामरिक लाभ के लिए किया जाए उसे सामरिक परमाणु हथियार कहा जाता है।

उपयोगी पुस्तकें –

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक सिद्धांत एवं व्यवहार– यूं.आर.घई

अंतरराष्ट्रीय संबंध – पी डी कौशिक

अंतरराष्ट्रीय राजनीति – बी एल फाड़िया

अंतरराष्ट्रीय संगठन– कुलदीप फाडिया

अंतरराष्ट्रीय संबंध–बी.एम जैन

अंतरराष्ट्रीय संगठन – डॉ एस सी सिंहल

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

अ. इस इकाई का भाग 14.2 देखें।

ब. इस इकाई का भाग 14.2.1 देखें।

बोध प्रश्न –2

अ. इस इकाई का भाग 14.3 देखें।

ब. इस इकाई का भाग 14.4 देखें।

खण्ड–7

ईकाई–15 क्षेत्रीय संगठन (आसियान)

ईकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 संगठन

(i) शीर्ष सभा

(ii) मंत्री स्तरीय सम्मेलन

(iii) आयोजन समिति

(iv) सचिवालय

(v) सलाहकार समितियाँ

15.3 आसियान का स्वरूप एवं उद्देश्य

15.4 आसियान का कार्य एवं भूमिका

15.5 भारत–आसियान सम्बन्ध

15.6 सारांश

15.7 उपयोगी पुस्तकें

15.8 बोध प्रश्न

15.0 उद्देश्य

- आसियान के संगठन के बारे में विवेचना कर सकेंगे।
- आसियान के स्वरूप एवं उद्देश्य के बारे में टिप्पणी कर सकेंगे।
- अन्तराष्ट्रीय राजनीति में आसियान के महत्व को जान सकेंगे।
- भारत और आसियान के सम्बन्ध/सहभागिता के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से दक्षिण–पूर्वी एशिया, संसार के सर्वाधिक विस्फोटक और महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत चीन के दक्षिण में तथा भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्व में स्थित देश वर्मा (म्यांमार), थाइलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्पूचिया, वियतनाम, फिलीपीन्स आदि सम्मिलित किये जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद ये क्षेत्र विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है तथा पश्चिमी एशिया के समान ही महाशक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात इस क्षेत्र में तीन आधारभूत परिवर्तन दृष्टिगत हुए है; प्रथम यूरोपीय प्रभुत्व का क्रमशः अवसान होता है; द्वितीय यहाँ के देशों का स्वतंत्र होना; तृतीय चीन के प्रभाव की इस क्षेत्र में वृद्धि होना।

अंतराष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण–पूर्वी एशिया का नया शब्द है जिसका प्रयोग द्वितीय महायुद्ध से पूर्व नहीं होता

था। इस शब्द के प्रचलन का तात्कालिक कारण अगस्त में क्यूबेक सम्मेलन के द्वारा एडमिरल माउण्ट बैंटन की अधीनता में दक्षिण–पूर्वी एशिया कमाण्ड की स्थापना था जिनकी संख्या छः थी लेकिन द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त नये सम्प्रभु राष्ट्रों के उदय से इस संस्था में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। आज अंतराष्ट्रीय महत्व के दस राष्ट्र म्यामार, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, मलेशिया, थाइलैण्ड, सिंगापुर, ब्रूनेई वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया इस क्षेत्र में स्थित है।

डॉ0 बी0 आर0 चटर्जी के अनुसार "दक्षिण–पूर्वी एशिया पूर्व से पश्चिम तथा फिलीपीन्स, वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया, थाइलैण्ड और म्यामार और दक्षिण की ओर मलाया एवं सुमात्रा से लेकर न्यूगिनी तक इण्डोनेशियन द्वीप समूह से मिलकर बना है।"

अंतराष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण–पूर्वी एशिया का कई कारणों से बड़ा महत्व रहा है : प्रथम यह क्षेत्र सामरिक और भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। यह हिन्द महासागर को प्रशांत महासागर से मिलाने वाले समुद्र मार्ग पर स्थित और एशिया व आस्ट्रेलिया के मध्य तक प्राकृतिक पुल का कार्य करता है। द्वितीय, आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत समृद्ध है। चावल, टिन, रबड़ और पैट्रोल यहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। म्यांमार, थाईलैण्ड और हिन्द चीन में अन्न का विशाल उपजा0 क्षेत्र है जिसे एशिया का चावल का कटोरा कहा जाता है। मलाया में इतना टिन और रबड़ है कि वह अकेले संसार की आवश्यकता पूरी कर सकता हैं। इण्डोनेशिया, सारावक और उत्तरी ब्रूनेई में तेल के विशाल भण्डार है। तृतीय, जनसंख्यिकीय दृष्टि से भी यह क्षेत्र अनूठा है। अमेरिका के लगभग आधे भू–क्षेत्र में यहाँ 20 करोड़ लोग रहते हैं जिनमें 1.5 करोड़ चीनी है।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय की सफलता से प्रभावित हो दक्षिण एशियाई देशों ने अपने आर्थिक विकास की गति के प्रति समझौता किया जिसकी परिणति आसियान (Assiociation of South-East nation ASEAN) संस्था के गठन में हुई यह समझौता 8 अगस्त 1967 में थाइलैण्ड राष्ट्र के बैंकाक शहर में सम्पन्न हुआ। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र हैं–ब्रूनेई, मलेशिया, सिंगापुर, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स और थाईलैण्ड। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह राष्ट्र एक दूसर के अत्यन्त निकट है। आर्थिक शक्ति, जनसंख्या, राजनीतिक व्यवस्था तथा औद्योगिक विकास के दृष्टिकोण से ये राष्ट्र एक दूसरे से काफी अलग हैं। इसका मुख्यालय इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता में है। यद्यपि इनमें आर्थिक रूप से कोई समानता थी तो वह थी इनका अल्पविकास, न्यून प्रति व्यक्ति आय तथा उपभोग का स्तर। इन देशों में आर्थिक विकास की अदम्य महत्वकांक्षा ने इन्हें भिन्न–भिन्न व्यवस्थाओं के बावजूद आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने की प्रेरणा दी और अन्ततः 1967 में इन्होंने एक अलग गुट बनाने की घोषणा कर सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। प्रारम्भ में हर राष्ट्र इस संगठन की सफलता के साथ आगे बढ़ रहा है। यही नहीं, इस राष्ट्रों की अलग–अलग व एक साथ दोनों ही दृष्टि से आर्थिक विकास दर अनरूप सभी दक्षिण एशिया का सर्वाधिक विकसित राष्ट्र–जापान भी इसके साथ सहयोग कर रहा है और इसकी सदस्यता प्राप्त करने का इच्छुक है।

15.2 संगठन

आसियान संगठन का संचालन कई उच्चस्तरीय बैंठकों, सभाओं और सचिवालयों के माध्यम से किया जाता है। महत्व के दृष्टि से हम उन्हें निम्न रूप से विभक्त कर सकते है।

(I) शीर्ष सभा :–

सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों की सभा को शीर्ष सभा कहा जाता है। किसी भी अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय के लिए ही यह बैठक फरवरी 1976 में इंडोनेशिया के बाली शहर में सम्पन्न हुई। दूसरी बैठक शीघ्र ही अगस्त 1977 में मलेशिया की राजधानी क्वालांमपुर में सम्पन्न हुई। तीसरी शीर्ष बैठक लगभग इस वर्ष पश्चात दिसम्बर 1987 में फिलीपीन्स की राजधानी मनीला में सम्पन्न हुई।

(ii) मंत्रीस्तरीय सम्मेलन :–

आसियान के सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों की एक बैठक प्रति वर्ष बुलाई जाती है। क्रमशः हर देश इस सभा का आयोजन करता है। विदेश मंत्रियों के अतिरिक्त वित्त मंत्रियों की बैठक भी प्रति वर्ष आयोजित की जाती है। विदेश मंत्रियों की बैठक सम्बन्धित निर्णय और सामान्य सद्भाव के कारण बुलाई जाती है। जबकि वित्त मंत्री आपस में मिलकर आसियान के दिशा–निर्देशों को तय करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अन्य मंत्रियों की बैठक भी आयोजित

की जाती है। वास्तव में मंत्रिस्तरीय बैठक उन निर्णयों की बैठक भी आयोजित की जाती है जो अन्य सहायक समितियाँ इनके सामने प्रस्तुत करती हैं। कोई मुद्दा न होने पर यह बैठक सद्भाव हेतु ही आयोजित की जाती है।

(III) आयोजन समिति :–

यह बैठक प्रायः दो महीने में एक बार आयोजित की जाती है। सामान्यतयाः इस बैठक में आयोजनकर्ता देश का विदेश मंत्री तथा अन्य देशों के राजदूत शामिल होते हैं। कभी–कभी विदेश मंत्री के स्थान पर वित्त मंत्री भी इसमें शामिल हो जाते हैं। साल में हर देश में एक ऐसी बैठक आयोजित होती है। यह बैठक किसी खास उद्देश्य के लिए नहीं बुलाई जाती है। सचिवालय से यदि कोई मुद्दा उठाया जाता है तो यह समिति उस पर विचार करती है।

(iv) सचिवालय :–

आसियान का मुख्य स्थायी सचिवालय इंडोनशिया की राजधानी जकार्ता में 1976 में स्थापित किया गया। इसका प्रमुख कार्य समन्वय व सहयोग का है। हर राष्ट्र की राजधानी में अलग–अलग सचिवालय हैं जो समय–समय पर अपनी रिपोर्ट मुख्य सचिवालय को प्रेषित करता है। इस सचिवालय का एक महासचिव भी होता है जिसका कार्यकाल तीन वर्ष का होता है। इस प्रमुख सचिवालय के चयन का तरीका अद्वितीय है। अंग्रेजी वर्णाक्षरों के आधार पर देशों के नामों को रखा जाता है, फिर हर देश क्रमशः अपने एक व्यक्ति का नाम प्रस्तुत करता है जो तीन वर्ष तक इस सचिवालय को देखता है।

(v) सलाहकार समितियाँ :–

आर्थिक सहकारिता के दृष्टिकोण से आसियान ने पाँच सलाहकार समितियों का निर्माण किया है–

1. कृषि, खाद्यान एवं वन्य सम्पत्ति समिति।
2. मुद्रा एवं बैंकिग समिति।
3. खनिज, धातु एवं 0र्जा समिति।
4. परिवहन एवं संचार समिति।
5. व्यापार एवं पर्यटन समिति।

इनके अतिरिक्त तीन उप–समितियाँ भी हैं–

(i) संस्कृति एवं सूचना समिति।

(ii) विज्ञान एवं तकनीकी समिति।

(iii) सामाजिक विकास समिति।

उक्त समितियों अपने क्षेत्रों में सहयोग एवं सहकारिता के विभिन्न उपायों पर विचार एवं शोध करती है। ये समितियाँ अपने लिए कई प्रकार की सहायक संस्थाओं, संगठनों और कार्य समूहों की मदद भी लेती है। जब ये समितियां किसी निर्णय पर पहुँच जाती है तो सचिवालय में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं। इसके बाद उन निर्णयों पर विचार कर आवश्यक कार्यवाही की जाती है।

आसियान समूह ने विदेशों से अपने सम्बन्धों में सद्भाव एवं व्यापार बढ़ाने के लिए हर एक विदेशी राजधानियों में अपने कार्यालय खोल रखा है। आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, जापान, न्यूजीलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका है। इन कार्यालयों में आसियान से नियुक्ति राजदूत होते हैं और इन्हें आसियान का प्रवक्ता कहा जाता है।

15.3 आसियान का स्वरूप एवं उद्देश्य

1. दक्षिण पूर्व एशिया में आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना, सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विरासत को कायम रखना। इसके लिए सदस्य राष्ट्र मिलजुलकर समानता और संप्रभुता अक्षुण्ण रखते हुए कार्य करेंगे।
2. क्षेत्रीय शांति, स्थिरता को कायम रखने को हर संभव प्रयत्न किया जायेगा, इसका आधार कानून का राज्य

होगा। सभी देश संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा–पत्र का समुचित आदर करते हुए न्यायपूर्ण सिद्धांतों का पालन करेंगे।

3. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सक्रिय सहयोग के अतिरिक्त तकनीकी, वैज्ञानिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में आपसी सहयोग कर विकास की ओर अग्रसर होंगे।
4. कृषि और उद्योग के क्षेत्र मे नयी तकनीकों का आदान–प्रदान करेंगे। यथासंभव व्यापार की मात्रा बढ़ाने के सक्रिय प्रयास किये जायेंगे। परिवहन तथा संचार साधनों में विकास के साथ–साथ आपसी सम्बन्ध बढ़ाये जायेंगे। यथासंभव आर्थिक हस्तान्तरणों तथा सहयोग को बढ़ाया जायेगा ताकि लोगों के जीवन स्तर व उपभोग स्तर में वृद्धि की जा सके।

15.4 आसियान के कार्य एवं भूमिका (**Funcation and Role of the ASEAN**)

आसियान के कार्यों का क्षेत्र काफी व्यापक है। यह आज समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तकनीकी तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में कार्यरत है। इसके सदस्य देश अपनी वैयक्तिक कार्य प्रणालियो को क्षेत्रीय संगठन द्वारा सुलझाने के लिए प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से सम्बन्धित स्थायी समिति ने अनेक परियोजनाएँ बनायी है जिनका उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन, दवाईयों के निर्माण पर नियंत्रण, शैक्षिणक, खेल को महत्व देना है। 1979 में संचार व्यवस्था एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए एक समझौता किया गया जिसके अंतर्गत आसियान के सदस्य देश रेडियों एवं दूरदर्शन के माध्यम से एक दूसरे के कार्यक्रमों का परस्पर अदान–प्रदान करते हैं। पर्यटन के क्षेत्र में आसियान ने अपना एक सामूहिक संगठन आसियान स्थापित किया है जो बिना 'वीजा' के सदस्य राष्ट्रों में पर्यटन की सुविधा प्रदान करता है। आसियान देशों ने 1971 में हवाई सेवाओं से व्यापारिक आधिकारों की रक्षा एवं 1972 में फंसे जहाजों की सहायता पहुंचाने से सम्बन्धित समझौते पर हस्ताक्षर किये। आसियान ने खाद्य सामग्री के उत्पादन में प्राथमिकता देने के लिए किसानों को अर्वाचीन तकनीकी शिक्षा देने के कुछ कदम उठाये है जो विशेषकर गन्ना, चावल तथा पशुपालन में सहायक होते हैं।

प्राथमिक के आधार पर सीमित वस्तुओं के स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र (साझा बाजार) स्थापित करने के लिए भी आसियान देश प्रयत्नशील है। आसियान देशों में आपसी निर्यात एवं आयात उनके सीमित बाजार का विस्तार तथा विदेशी मुद्रा की बचत करेगा। इसके अतिरिक्त, आसियान वाणिज्य व उद्योग संघों के महासंघ के एजेण्डा पर मुख्य निर्यातों में आसियान देशों के संयुक्त बाजार एवं व्यापर का लक्ष्य रखा जा चुका है। 1976 के बाली शिखर सम्मेलन मे आसियान के सदस्य राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग को बढ़ाने के संदर्भ में निम्नलिखित तीन सुझाव रखे गये।

1. बाहरी आयात कम करके सदस्य राष्ट्र पारस्परिक व्यापार को महत्व देंगे।
2. अधिशेष खाद्य एवं 0र्जा शक्ति वाले राष्ट्र इन क्षेत्रों में अभाव से पीड़ित आसियान देशों को मदद देंगे।
3. आसियान के देश व्यापार को अधिकाधिक क्षेत्रीय बनाने का प्रयास करेंगे।

बाली शिखर सम्मेलन में ही आसियान राष्ट्रों के प्रधानों ने क्षेत्रीय सहयोग में आसियान की भूमिका पर एक ठोस रूपरेखा प्रस्तुत की। एक घोषणा एवं समझौते में इण्डोनेशिया एवं फिलिपीन्स के राष्ट्रपति और सिंगापुर, मलेशिया एवं थाइलैण्ड के प्रधानमंत्रियों ने यह घोषणा की कि आसियान का कार्य सिर्फ आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मामलों तक ही सीमित रहेगा तथा उसमें सुरक्षा को सम्मिलित नहीं किया जायेगा। आसियान ने नई अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग की जिसमें विकासशील और विकसित देशों के बीच कोई मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने का प्रस्ताव भी रखा।

15.5 भारत–आसियान सम्बन्ध

आसियान की स्थापना दक्षिण–पूर्व एशिया में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को तेज करने के लिए की गयी थी। इसका घोषित उद्देश्य क्षेत्रीय शांति और स्थायित्व सुनिश्चित करना है। यह अनेक विशेषज्ञ तथा तदर्थ समितियों के माध्यम से कार्य करता है। भारत 1991 के अंत में आसियान को प्रभागीय वार्ता का भागीदार बना। प्रभागीय वार्ता भागीदारी का अर्थ था कि भारत को कुछ सीमित क्षेत्रों में सहयोग का अवसर दिया जा सकता है। ये क्षेत्र सांस्कृतिक पर्यटन तथा कुछ चीजों का व्यापार तक सीमित था, जिसमें 1994 में इन तीनों के

अतिरिक्त विज्ञान और प्रोद्यौगिकी को भी सीमित सहयोग के क्षेत्र में शामिल कर लिया गया।

आसियान के 1995 के पांचवे शिखर सम्मेलन में भारत को पूर्ण वार्ता भागीदार के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि अब भारत आसियान के साथ बहुआयामी तथा व्यापक सहयोग कर सकता है। भारत आसियान संबंधों में विकास के चलते नवम्बर 2002 में प्रथम भारत–आसियान शिखर वार्ता हुई। इस वार्ता में दोनों पक्षों ने निर्णय किया कि वे अपना विस्तार करेंगे तथा वर्तमान आसियान क्षेत्रीय मंच (1999 में सिंगापुर में स्थापित) आतंकवाद जैसे गैर परंपरागत सुरक्षा खतरों का मिलकर सामना करेंगे। यही निश्चय हुआ कि प्रतिवर्ष भारत–आसियान शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ करेंगे। वर्तमान समझौते में इसी कड़ी को अमलीजामा पहनाया गया है। द्विपक्षीय संबंधों के रूप में भारत पहले से मलेशिया में रेलवे व्यवस्था के साथ सहयोग कर रहा था बदले में मलेशिया भारत मे राजमार्गों के विकास में सहयोग दे रहा है। सिंगापुर के प्रधानमंत्री भारत–आसियान सहयोग के प्रबल समर्थक रहे हैं। राजनीतिक स्तर पर एक नई साझेदारी की शुरूआत की। इसके तरह भारत ने आसियान देशों के साथ सीधी विमान सेवाएं चलाने की घोषणा की। इसके अतिरिक्त अंतराष्ट्रीय आतंकवादी समझौते में सभी आसियान देशो ने आतंकवाद से लड़ने की दिशा में पूरी गंभीरता के साथ काम करने की प्रतिबद्धता जतायी है। इसके साथ ही इसमें धन की हेराफेरी, मादक पदार्थों के तस्करी संबंधी अपराधों से निपटने की व्यवस्था भी बन गई है। 14 फरवरी 2007 को सेबू में आयोजित पांचवे भारत–आसियान शिखर सम्मेलन में दोनों पक्ष मुक्त व्यापार समझौते पर बातचीत के दौरान नकारात्मक सूची तथा हटकर रियायतों के मुद्दों पर महत्वपूर्ण प्रगति करने में सफल रहे। सिंगापुर में 21 नवम्बर, 2007 को आसियान का छठवाँ शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया।

इस सम्मेलन में भारत ने द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सम्बद्ध क्षेत्र के उद्यमियों की सुविधा के लिए वीजा प्रक्रिया को सरल करने तथा मुक्त व्यापार समझौता को मार्च, 2008 तक लागू करने हेतु रूकावटों को दूर करने का वचन दिया था।

भारत व दस सदस्यीय आसियान के साथ बहुप्रतिक्षित स्वतंत्र व्यापार समझौता पर हस्ताक्षर 13 अगस्त, 2005 को किये गये थे अगले वर्ष से प्रभावी होने वाले इस समझौते से दोनों पक्षों के बीच वर्ष 2016 तक लगभग 4000 उत्पादों का शुल्क मुक्त आयात–निर्यात किया जा सकेगा, अति संवेदनशील उत्पादों को शुल्क मुक्ति के दायरे से बाहर रखा गया है। इस समझौते के परिणामस्वरूप दोनों पक्षों के बीच सालाना व्यापार 40 अरब डालर से बढ़कर 60 अरब डालर का यह लक्ष्य कब तक प्राप्त किया जा सकेगा, यह अभी निश्चित नहीं किया गया है।

वर्ष 2012 को भारत तथा आसियान संवाद संबंधों के बीस वर्ष तथा सम्मेलन भागीदारी के दस वर्ष के रूप में चिन्हित किया जा रहा है। दिसम्बर, 2012 में नई दिल्ली में 'भारत तथा आसियान पाटनर्स इन प्रोग्रेस एवं प्रासपेक्टिव विषय पर भारत सम्मेलन का आयोजन किया। अपने पहली प्रारम्भिक आयोजन के रूप में इण्डियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स; द फेडरेशन ऑफ साउथ ईस्ट एशिया स्टडीज सिंगापुर; इकोनामिक रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ आसियान एवं ईस्ट एशिया, इण्डोनेशिया तथा एसएईए रिसर्च ग्रुप सिंगापुर की भागीदारी में विदेश मंत्रालय ने 13–14 फरवरी 2012 को नई दिल्ली में 'भारत–एसियान पार्टनर्स फार पीस प्रोग्रेस एंड स्टेबिलिटी'' विषय पर दिल्ली डॉयलपाग–4 का आयोजन किया।

15.6 सारांश

अंतराष्ट्रीय राजनीति के कतिपय विद्वानों का मत है कि मोटे तौर पर आसियान का कार्य एवं भूमिका मंद एवं निराशाजनक रही है। आसियान की तुलना यूरोपीय साझा बाजार से करते हुए उनका विचार है कि यह संगठन सदस्य राष्ट्रों में वह आर्थिक एवं अन्य प्रकार का सहयोग तीव्र गति से नहीं बढ़ पाया है। आर्थिक सहयोग में आसियान की गति मंद होने के कारण सदस्य राष्ट्रों के साथ आवश्यक पूंजी एवं क्रय शक्ति का कम होना है। सदस्य राष्ट्रों के हितों में टकराव के कारण उनके बीच कई अंतराष्ट्रीय विवाद उठे है।

यह भी आरोप लगाया जाता है कि आसियान देशों का झुकाव पश्चिम देशों की तरफ अधिक रहा है। यह सही है कि इण्डोनेशिया के अतिरिक्त आसियान के अन्य सदस्य राष्ट्र मलेशिया, सिगापुर फिलिपीन्स एवं थाईलैण्ड पश्चिमी देशों के साथ सुरक्षात्मक समझौते से जुड़े हुए हैं तथा उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक मुद्धों पर ही नहीं, बल्कि चीन पर भी पश्चिमी शक्तियों का साथ दिया है। आसीयान ने भी पश्चिमी शक्तियों का साथ दिया है। आसीयान के सदस्य राष्ट्रों में विदेशी सैनिक अड्डे भी मौजूद हैं।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद आसियान एक असैनिक स्वरुप का संगठन है। आसियान सदस्यता के दक्षिण–पूर्वो एशिया के उन सभी राष्ट्रों के लिए खुले हुए हैं जो इसके उद्देश्य, सिद्धान्त तथा प्रयोजनों में विश्वास रखते हैं। आसियान के सदस्य राष्ट्रों में विदेशी सैनिक अड्डे अस्थायी हैं। चीन से आसियान देशों का व्यापार बढ़ता जा रहा है। आज आसियान के सदस्य राष्ट्रों की जनता उसको एक ऐसी मशीनरी के रुप में जनता से जोड़ती है जो एक देश की जनता को दूसरे देश की जनता से जोड़ती है। 'आसियान' क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयत्न क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में महत्वपूर्ण चरण हैं।

15.7 उपयोगी पुस्तकें

1. अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध–बी0 एल0 फाड़िया
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध–तपन बिस्वाल
3. 21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध–पुष्पेश पंत
4. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र– एम0 सी0 वैश्य, सुदामा सिंह
5. भारतीय सुरक्षा एवं विदेश नीति– हर्षवर्धन पंत

15.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरी प्रश्न–

1. आसियान के सलाहाकर समितियों के बारे में स्पष्ट करे।
2. आसियान के कार्यों एवं महत्वों को विवेचना करे।
3. आसियान के महत्व को स्पष्ट करें।

दीर्घउत्तरी प्रश्न–

1. आसियान के क्या उद्देश्य है? स्पष्ट करें।
2. आसियान और भारत के सम्बन्धों को विवेचना करे।
3. आसियान को आलोचनात्मक व्याख्या करे।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान) की स्थापना किस वर्ष में की गई थी?

   (क) 1930 (ख) 1970 (ग) 1967 (घ) 1980
2. आसियान का मुख्यालय निम्नलिखित में किस स्थान पर स्थित है?

   (क) अस्ट्रेलिया (ख) जापान (ग) चीन (घ) जकार्ता
3. दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संगठन के कितने सदस्य है?

   (क) 10 (ख) 15 (ग) 13 (घ) 20
4. आसियान में कौन सा देश सदस्य नहीं है?

   (क) भारत (ख) थाइलैण्ड (ग) सिंगापुर (घ) वियतनाम
5. आसियान में कौन सा देश सदस्य है?

   (क) रूस (ख) चीन (ग) श्रीलंका (घ) वर्मा

प्रश्नों के उत्तर– (1) ग (2) घ (3) क (4) क (5) घ

ईकाई–16 तीसरी दुनिया का उद्भव

ईकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 तीसरी दुनिया की अवधारणा

16.4 तीसरी दुनिया की विषेशताएं

16.5 तीसरी दुनिया के अल्पविकास की कसौटी

16.6 तीसरी दुनिया के विकास की रणनीतियाँ

16.7 विकसित विकासशील देश में अन्तर

16.8 सारांश

16.9 उपयोगी पुस्तकें

16.10 बोध प्रश्न

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

1. तीसरी दुनिया के उद्भव के पीछे विकसित राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीतियों का परीक्षण कर सकेंगे।
2. अल्पविकसित राष्ट्रो के पिछड़ेपन के कारणों का उल्लेख कर सकेंगे।
3. अल्पविकसित राष्ट्रों के विकास के लिए बनायी गयी रणनीतियों का उदाहरण दे सकेंगे।
4. विकसित व विकासशील राष्ट्रों के बीच विभाजन के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.2 प्रस्तावना

तीसरी दुनिया शब्द एक ऐसी स्थिति की ओर संकेत करती है। जिसमें आर्थिक एवं सामाजिक विकास का स्तर अंतर्राष्ट्रीय रूप में मान्यता प्राप्त सीमा से नीचे हो। सामान्यतः वे देश जिनकी वास्तविकता प्रति व्यक्ति आय संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति व्यक्ति आय की एक–चौथाई से कम हैं, तीसरी दुनिया के वर्ग में रखे जाते हैं। इस सम्बन्ध में इस बात को स्पष्ट किये जाने की आवश्यकता है कि तीसरी दुनिया की अवधारणा का उपयोग आदिम समाजों के लिए नहीं किया जाता है बल्कि विश्व के उन समाजों के लिए किया जाता हैं जिनमें परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया चल रही है। लेकिन इनमें विकास का स्तर अभी संतोषजनक नहीं है। जिसके कारण यहाँ सामान्यतः निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षरता, अज्ञानता, दरिद्रता, आलस्य और बीमारी जैसी समस्याएं व्यापक और गम्भीर रूप से मौजूद है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग इनसे प्रभावित तथा पीड़ित है। इस दृष्टिकोण से तीसरी दुनिया के देशों को निर्धन देश भी कहा जा सकता है।

16.3 तीसरी दुनियाँ की अवधारणा

तीसरी दुनिया का उद्भव विश्व समाज की किन परिस्थितियों में हुआ इस पर दृष्टि डालते है तो हम देखते है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले कुछ पाश्चात्य देशों ने वैज्ञानिक, तकनीकी और विकसित औद्योगीकरण के आधार पर दुनिया के बाकी देशों पर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सत्ता कायम कर ली थीं। और इन देशों के लिए ये "पिछड़े" शब्द का प्रयोग करते थे। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त जब उपनिवेशवाद का अन्त होना शुरू हुआ और विश्व संस्था और विश्व मानवीय दृष्टि का विकास हुआ तो "पिछड़े" के बदले अविकसित देश की संज्ञा का प्रयोग आरम्भ हुआ। लेकिन इस नामकरण में भी भेदमूलक मूल्य की ध्वनि थी, अतः इसके अधीन तटस्थ शब्द

'विकासशील देश' का प्रयोग प्रचलित हुआ किन्तु विकसित और विकासशील देशों के बीच अन्तर को प्रदर्शित करने के लिए तीसरी दुनिया के देश की अवधारणा का प्रयोग वैज्ञानिक, अर्थशास्त्रियों, सरकार के नीति नियोजन, प्रविधियों के विवेचनों, परिचर्चाओं, शोध ग्रंथों में बहुलता के साथ प्रयुक्त होना आरम्भ हुआ।

विकास के आधार पर सभी देशों को आर्थिक विकास के निम्न सूचक तत्वों के आधार पर तीन कोटियों में बांटा गया जिन्हें क्रमशः पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया के नाम से जाना जाता है। पहली दुनिया है विकसित समाजों का, दुसरी पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों का तथा तीसरी दुनिया है विकासशील देश जिनमें जापान, कोरिया को छोड़कर एशिया, अफ्रीका और लातीनी दक्षिणी अमेरिका के अधिकांश देश आते हैं। विकास के सूचक शब्द है, प्रति व्यक्ति आय, कुल राष्ट्रीय आय एवं सामाजिक सुरक्षा।

विकास के इन तीन सूचक तत्वों के आधार पर तुलनात्मक दृष्टि से एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका, लातिनी अमेरिका के देश आते हैं जहाँ औसत राष्ट्रीय, उत्पादन प्रति व्यक्ति 45 से 500 डालर तक आंका जाता है। इन देशों में साक्षरता की दर भी बहुत कम है, लगभग 15 से 35 प्रतिशत तक, औसत–50–60 हजार से भी अधिक आबादी पर एक डाक्टर उपलब्ध है। इन आंकड़ो के आधार पर पहली और तीसरी दुनिया के बीच विकास के आधार पर असमानता दिखलाई जाती है। इस असमानता की जानकारी ने आज तीसरी दुनिया को विकास की उचित मात्रा शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त किया है।

रेगनर नर्क्स ने लिखा है कि "विकासशील समाज वे हैं जिनमें जनसंख्या और प्राकृतिक साधनों की तुलना में पूंजी कम होती है।"

पाल सेम्युलसन के अनुसार "विकासशील देश वह है, जिसकी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप की वर्तमान प्रति व्यक्ति आय से कम हो।"

16.4 तीसरी दुनिया की विशेषताएं

तीसरी दुनिया की निम्न विषेशताएं हैः–

1. आर्थिक विषेषताएं :–

इसके अन्तर्गत जनसंख्या की अधिकता कृषि कार्य में संलग्न, अति जनसंख्या, कृषि के अतिरिक्त साधनों की कमी, निर्वाह स्तर की आय, नगण्य बचत, बाजार की खराब व्यवस्था, मकान की अपर्याप्तता, कृषि संबंधी उपकरणों का पुराना होना और ऋण ग्रस्तता आदि।

2. जननांकीय विषेषताएं :–

इसके अन्तर्गत उच्च जन्मदर, उच्च मृत्यु दर, उच्च औसत आयु, अपर्याप्त पोषक तत्व और ग्रामीण अति जनसंख्या आते है।

3. सांस्कृतिक और राजनीतिक विषेषताएं :–

अपर्याप्त शिक्षण व्यवस्था तथा निरक्षरता, बाल श्रमिक, स्त्रियों की निम्न परिस्थिति, परम्परागत व्यवहार नियंत्रण।

4. प्रौद्योगिकी विषेषताएं :–

इसके अन्तर्गत प्रति एकड़ कम पैदावार, इंजिनियरों तथा कारिगरों के प्रशिक्षण का अभाव, यातायात तथा साधनों की अपर्याप्तता, विशेषकर ग्रामीण समाज और अपरिपक्व प्रोद्यौगिकी आते हैं।

5. आर्थिक विषेषताएं :–

वास्तविक आय का कम होना, कृषि सम्बन्धी नीति का त्रुटिपूर्ण होना, औद्योगिकरण की कमी, निर्यात पर निर्भरता, बैंकिंग सुविधाओं का अभाव, धन का असमान वितरण।

16.5 तीसरी दुनिया के अल्पविकास की कसौटी

तीसरी दुनिया के अल्पविकास की कसौटी यह है कि उपज या धन का अतिरिक्त भाग कौन ले जाता है। और उसका क्या उपयोग करता है? यूरोप के पूंजीवाद देश के उपनिवेश थे– एशिया, अफ्रीका, और लैटिन अमेरिका,

के देशों के अतिरिक्त धन इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, ऐसे साम्राज्यवादी देश ले गये। अतः उनका विकास अधीन देशों के अल्पविकास का कारण बना। पिछले तीन चार दशको में ये देश स्वाधीन हो गये और तृतीय विश्व कहलाएं। परन्तु साम्राज्यवादी देशों पर से इनकी निर्भरता नहीं गयी और जाती भी कैसे जब ये देश स्वाधीन हुए तो इनके पास न धन था न टेक्नालाजी थी, न ज्ञान था, न कोई ऐसा सशक्त वर्ग था जो विकास की बागडोर संभालता। तीसरी दुनिया के देशों के अविकास या पिछड़ेपन के पीछे एक नहीं, कई कारणें का योग था, लेकिन इन सब में साम्राज्यवादी रणनीति और अर्थनीति सर्वप्रथम थी।

तीसरी दुनिया के देश आज भी विकसित देशों पर निर्भर हैं, इसलिए अभी तक अल्पविकसित है विकास के कारण ही अल्पविकास उत्पन्न होता है। उनकी अमीरों की कहानी में, इन देशों की निर्धनता का रहस्य छुपा है।

16.6 तीसरी दुनियाँ के विकास की रणनीतियाँ

तीसरी दुनियाँ के देश आज विकास की दौड़ में तेजी से दौड़ते आ रहे है जिसके कारण ये देश अर्थव्यवस्था, वाणिज्य, व्यापार उद्योग और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में उनकी सहभागिता स्थापित हुई है। इन देशों के पाश्चात्य सम्पर्क के बाद से ही पाश्चात्य संस्कृति के विभिन्न तत्वों का प्रसार हो रहा है। आज स्थिति यह है कि इन देशों के अभिजात्य वर्गो के पाश्चात्य दृष्टिकोण, जीवनशैली, तथा उपर्युक्त संस्कृति का इतना अधिक प्रसार हो गया है कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर तीसरी दुनिया के बहुसंख्यक आबादी उस उपभोक्ता संस्कृति पर निर्भर होती जा रही है, यह एक प्रकार का सांस्कृतिक आक्रमरण है। लेकिन इनमें से कुछ सांस्कृतिक तत्व जैसे बुद्धि विवेक सम्मत वैज्ञानिक दृष्टि, धर्मनिर्पेक्ष मूल्य, लोकतांत्रिक जीवनशैली आदि तो विकास के लिए प्रगतिशील तत्व सिद्ध हुए हैं, इनसे विकास को प्रोत्साहन मिला है। जिससे उनके विकास के लिए निम्नलिखित अनुकूल उत्पन्न हुई–

1. राजनीतिक स्तर पर राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ और वे इतना संघटित हुए की विकास की राष्ट्रीय नीतियों को समुचित रूप से लागू कर सके।
2. सांस्कृतिक स्तर पर विविध संस्कृति का प्रसार हुआ जहाँ विचारों और मानव समूहों का स्वतंत्र रूप से प्रसार हुआ। तथा वहाँ सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता भी बढ़ी
3. सबसे बड़ी बात यह हुई की विज्ञान की वृद्धि और वैज्ञानिक ज्ञान का विस्तार हुआ जिसके आधार पर अभूतपूर्व तकनीकी विकास हुआ।
4. राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति आदि के अतिरिक्त अन्य विशेषताओं ने औद्योगिक क्रांति और सामाजिक विकास का मार्ग पूर्णतः प्रशस्त कर दिया।

फिर भी इन देशों में अविकास सूचक विषेशताएं, जैसे निर्धनता, गैर बराबरी, बेकारी आदि, अब भी विद्यमान है। सबसे बड़ी कमी है विज्ञान और आधुनिक तकनकी के क्षेत्र में जिसके विकास के लिए उपयुक्त वैज्ञानिक चिन्तन, तकनीकी संसाधन और बुद्धि विवेक सम्मत सम्यक दृष्टि का समाज में पूरा प्रभाव नहीं पड़ता है। इस तरह की सांस्कृतिक और वैज्ञानिक दृष्टि एक छोटे अभिजात्य समूह में विकसित हुई है और यही समूह आज विकास का पुरोधा बना हुआ है। उसके लिए अपेक्षित होता है कि विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक साथ ही राजनीतिक, सांस्कृकि, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक स्तर पर विकास के कार्यक्रम चलाते जायें। लेकिन एक देश के अन्दर इनके प्रयास पूर्णतः तभी फलीभूत होंगे, जब विकसित देशों में भी विश्व दृष्टि, विश्व समाज को ध्यान में रखकर अनुकूल परिवर्तन हो, उनकी उपभोक्तावादी संस्कृति का तीसरी दुनिया पर आक्रमण रूके।

16.7 विकसित और विकासशील देशों में अन्तर

विकसित देश :–

1. जनसंख्या का 95% भाग विभिन्न उद्योगों में कार्यरत हैं। जनसंख्या
2. का घनत्व आवश्यकता से अधिक नहीं है।
3. जनसंख्या के घनत्व और आर्थिक साधनों में सामंजस्य होता है।
4. सामाजिक जीवन में संघर्ष जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए होता है।

5. कृषि कार्य में नए–नए उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं तथा बाजार की उचित व्यवस्था होती है।

6. जन्मदर–मृत्युदर औसत पोषक तत्व (3200–3500 Calori) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध।

7. शिक्षा की उचित व्यवस्था, साक्षरता दर अधिक।

8. स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक।

9. सामाजिक नियंत्रण के साधन औपचारिक कानून की महत्ता।

10. प्रौद्योगिक विकास के साधन अधिक सुलभ होते है तथा यातायात व संचार के साधन विकसित और पर्याप्त मात्रा में है।

11. अर्जित परिस्थिति का महत्व होता है।

12. विशेषीकरण जीवन के प्रत्येक पहलू में पाया जाता है।

13. विकसित नौकरशाही होती है।

14. अपने द्वारा निर्मित माल का निर्यात होता है।

15. इसके अन्तर्गत अधिक उत्पादन, अधिक प्रति व्यक्ति आय, अधिक बचत और अधिक मांगे होती है।

विकासशील देश :–

1. जनसंख्या का 50–65% भाग ही उद्योगों में कार्यरत है।

2. जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

3. इसके अन्तर्गत जनसंख्या का घनत्व और आर्थिक साधन एक दूसरे से भिन्न होते है।

4. सामाजिक जीवन में संघर्ष अस्तित्व को कायम करने के लिए होता है।

5. कृषि कार्य में परम्परागत साधनों का प्रयोग करते है और बाजार की व्यवस्था नहीं होती है।

6. जन्मदर–मृत्युदर अधिक, अपर्याप्त पोषक तत्व (2000–25000 Calori) औसत आयु कम।

7. शिक्षा की उचित व्यवस्था न होना, निरक्षरता।

8. स्त्रियों की दयनीय स्थिति।

9. सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधन, धर्म, और परम्परा की महत्ता।

10. प्रौद्योगिक विकास के साधन कम उपलब्ध है तथा यातायात के साधन अपर्याप्त है। प्रदत्त

11. परिस्थिति महत्वपूर्ण मानी जाती है।

12. विशेषीकरण के लिए साधन अपर्याप्त है।

13. प्रारम्भिक नौकरशाही होती है।

14. कच्चे माल का निर्यात होता है।

15. इसके अन्तर्गत कम उत्पादन कम प्रति व्यक्ति आय कम मांगे और कम बचत होती है।

16.8 सारांश

तीसरी दुनिया वह दुनिया है जहाँ आर्थिक विकास की प्रक्रिया अधिक नवीन है। इन समाजों में औद्योगिकरण की प्रक्रिया धीमी होती है। यही कारण है कि भौतिक संस्कृति का विकास इन समाज में या तो धीमा रहा है या नहीं के बराबर रहा है। परन्तु आर्थिक विकास को विविध संसाधनों का सम्प्रेषण और कार्यान्वयन जहाँ तृतीय विश्व के देशों में विशेषकर जिनमें अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के देश संलग्न हैं, उनमें अफ्रीका में बसे युगाण्डा, तन्जानिया, नाइजिरिया, जिम्बाम्बे, दक्षिण अफ्रीका इसी प्रकार मध्य पूर्व एशिया में ईरान, इराक, कुवैत, सउदी अरब फिलीस्टीन,

इजराइल और भारतीय उपमहाद्वीप में भारत, श्रीलंका पाकिस्तान और इसी प्रकार दक्षिण पूर्ण एशिया के देश और लैटिन अमेरिका के देश– अर्जेटाइना, ब्राजील, वेनेजुएला, चीली, पेरू, इक्वेडर, मैक्सिको आदि देश आर्थिक और सामाजिक समृद्धि स्त्रोतो से युक्त होकर आगे बढ़ने की क्षमता प्रदर्शित बाजारों में उनकी सहभागिता स्थापित हुई है। फिर भी तीसरी दुनिया के यही देश दुर्दम्य समस्याओं के भी शिकार हुए है। ये समस्याएं निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण से लेकर सामाजिक जीवन में संघर्ष, साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक उन्माद, प्रजातीय भेदभाव आदि से सम्बन्धित है। इन देशों में पाश्चात्य विकसित प्रभुत्व पूर्ण देशों जैसे अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस जैसी नियोजित परिवर्तन की विविध योजनाएं और परियोजनाएं भी कायम है फिर भी इनमें आत्मनिर्भरता का अभाव, पिछड़ापन, परावलम्ब शक्ति संरचना एवं राजनीतिक स्थायित्व के अभाव की सामाजिक व्याधिया इन देशों को सामाजिक नैराश्य और मानसिक कुण्ठा का शिकार बनायें है।

16.9 उपयोगी पुस्तकें

1. पॉल बेरांग : **दी पालिटीकल इकोनामी ऑफ ग्रोथ, पेनगुइन, 1957**
2. डैनियल लर्नर : **दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोशायिटी (न्यूयार्क) : दी फ्री प्रेस, 1959**
3. एस. पी. सिंह : **आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि. रामनगर, नई दिल्ली, 1998**
4. मुहबुब उल हक : **दी वावटी सर्टेन : च्वाइस फार दी थर्ड वर्ल्ड, न्यूयार्क, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1976**
5. एल्वीन टाफ्लर : **दी थर्ड वेव, न्यूयार्क, बेन्थम बुक्स 1980**
6. गोपी कृष्ण प्रसाद : **विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2005**

16.10 बोध प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. **तीसरी दुनिया की अवधारण को स्पष्ट कीजिए।**
2. **आर्थिक विकास एवं पिछड़े देशों में सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।**
3. **तीसरी दुनिया के पिछड़ेपन के कारणों की विवेचना कीजिए।**
4. **तीसरी दुनिया के विकास की प्रक्रिया को समझाइए।**

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. **आर्थिक विकास के आधार पर सम्पूर्ण विश्व को कितने कोटियों में विभाजित किया गया स्पष्ट कीजिए।**
2. **तीसरी दुनिया की प्रमुख विषेशताएं बताइए।**
3. **विकसित और विकासशील देशों में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।**
4. **विकासशील देशों की कौन–सी प्रमुख समस्याएं है?**

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. **पहली दुनिया है :–**

(क) विकसित समाजों का

(ख) पूर्वी यूरोप के साम्यवादी समाजों का

(ग) विकासशील समाजों का

(घ) इनमें से कोई नहीं

2. विकास के सूचक शब्द है:

(क) प्रति व्यक्ति आय

(ख) कुल राष्ट्रीय आय

(ग) सामाजिक सुरक्षा

(घ) उपरोक्त सभी

3. विकासशील देशों में साक्षरता की दर है:

(क) 10 से 25 प्रतिशत

(ख) 15 से 35 प्रतिशत

(ग) 35 से 55 प्रतिशत

(घ) 50 से 85 प्रतिशत

4. पाश्चात्य सम्पर्क का तीसरी दुनिया के किस वर्ग को अधिक प्रभावित किया:

(क) अभिजात वर्ग

(ख) सर्वहारा वर्ग

(ग) निम्न वर्ग

(घ) अतिनिम्न वर्ग

उत्तर :— 1.(क) 2.(घ) 3.(ख) 4.(क)

इकाई–17 टेक्नोलॉजी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 तकनीकी द्वारा परिवर्तन

17.2.1 तकनीकी द्वारा राष्ट्र के स्वरूप में परिवर्तन

17.2.2 तकनीकी द्वारा राष्ट्रों की शक्ति में परिवर्तन

17.2.3 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की सामाजिक–आर्थिक अवस्था में परिवर्तन

17.3 तकनीकी द्वारा राष्ट्रों की आक्रमकारी शक्ति में वृद्धि

17.4 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्रता को अर्थपूर्ण बनाना

17.5 तकनीकी द्वारा विश्व सरकार के प्रयासों को प्रभावित करना

17.6 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की गोपनीयता की समाप्ति

17.7 तकनीकी द्वारा शीत युद्ध को प्रोत्साहन

17.8 पैडलफोर्ड एवं लिंकन के अनुसार तकनीकी प्रभाव

17.9 तकनीकी विकास का आधार

17.10 सारांश

17.11 उपयोगी पुस्तकें

17.12 बोध प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तकनीकी में हुई प्रगति ने राष्ट्रीय शांति को किस तरह प्रभावित किया तथा प्राविधिक ज्ञान ने परिवर्तन की मुख्य भूमिका निभाई का उल्लेख कर सकेंगे।
- "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में तकनीकी का एक विशिष्ट महत्व है" पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- तकनीकी ज्ञान द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

प्रसिद्ध विद्वान क्विंसी राईट के अनुसार "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रशिक्षण के रूप में प्राविधिक ज्ञान वह विज्ञान है जो अविष्कार और भौतिक संस्कृति की प्रगति को विश्व–राजनीति से जोड़ता है। यह यांत्रिक पद्धतियों के विकास तथा युद्ध–कूटनीति, अन्तराष्ट्रीय व्यापार यात्रा एवं संसार में उनके प्रयोग की कला है।" औद्योगिक तकनीकी, आर्थिक समृद्धि को सम्भव बनाकर राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि करती है। आर्थिक समृद्धि को सम्भव बनाने के साथ तकनीकी विकास राज्य की आर्थिक व सामाजिक प्रगति में सहायक होता है। तकनीकी विकास द्वारा ही राष्ट्रीय संसाधनों तथा जनशक्ति का उत्पादन के सृजनात्मक कार्यों हेतु सकारात्मक लाभ प्रदान करना सम्भव हो पाता है इस दृष्टि से तकनीकी ज्ञान महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शक्ति के तत्व के रूप में तकनीकी का मूल्यांकन राष्ट्र की अर्थव्यवस्था, सुरक्षा और शक्ति के अन्य तत्वों के संदर्भ में किया जाता है। तकनीकों या प्रौद्योगीकी के अन्तर्गत अविष्कार तथा वे साधन आते है जिनसे

राष्ट्र की भौतिक समृद्धि मे सहायता मिलती है। तकनीकी उन्नति से अभिप्राय है नूतन पद्धतियों का प्रयोग तथा उत्पादनों की स्वीकृति। यह बाजार तथा बाजार के परिक्षण मे नवीन की पुरातन पर विजय है। तकनीकी परिवर्तन एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें विज्ञान, शिक्षा, वैयक्तिक एवं सार्वजनिक क्षेत्रों मे अनुसंधान एवं विकास प्रबन्ध प्रविधि उत्पादन सुविधायें श्रमिक एवं श्रम संगठन सम्मिलित है। तकनीकी एक व्यापक शब्द है। यह मात्र लोहे, स्पात व यंत्रों तक ही जीवित नही है वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का संगठित ज्ञान है, भले ही वह कृषि हो, लेखांकन हो, रसायन हो या कोई अन्य। पारस्परिक शक्ति स्पर्धा में राष्ट्र विपक्ष की तकनीकी क्षमता के आधिक्य के परिणामस्वरूप ही उससे बिछड़ जाते हैं। यही कारण है कि मोल्टोव ने 1955 में अमेरिकी पत्रकारों से कहा था कि सोवियत संघ अमेरिका से केवल उसका तकनीकी ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

तकनीकी ज्ञान के आधार पर राष्ट्रीय स्वरूप में परिवर्तन, राष्ट्रों की शक्ति, स्थिति में परिवर्तन, राष्ट्रों की आक्रमणकारी शक्ति में वृद्धि व आर्थिक, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन उत्पन्न होते है। अनेल्डि टायनबी की मान्यता है कि समुदाय का आकार संचार साधनों की प्रवृत्ति के अनुपात में विकसित होता है। प्रारम्भ में आवागमन के साधन स्थानीय होते थे। उस समय लोग कुछ ही मिलों के दायरे में सामूहिक रूप से रहते थे। 15वीं शताब्दी में समुद्रों पर विजय पा ली गई तथा विशालकाय जहाजों के निर्माण के परिणामस्वरूप अन्तर्महाद्वीपीय साम्राज्य स्थापित हुए व ध्वनी की गति से भी तीव्रगामी वायुयानों ने विश्व को नवीन आविष्कार प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पर प्रभाव डालने वाले प्राविधिक ज्ञान तथा तकनीकी के रूप में सैनिक तकनीकी, औद्योगिक तकनीकी, संचार तकनीकी आदि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या के विस्तार व नियंत्रण जीवनस्तर, खाद्यान आपूर्ति आदि को लेकर स्वास्थ्य विज्ञान, कृषि, तकनीकी आदि विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण हो जाते है जिन पर शायद कभी मतैक्य नहीं हो सकता परन्तु यह निश्चित रूप से मानना पड़ेगा कि तकनीकी का राष्ट्रीय शक्ति, अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह माना जाता है कि तकनीक अथवा प्राविधिक ज्ञान की दृष्टि से एक राष्ट्र जितना आगे बढ़ जाता है शक्ति की दृष्टि से भी उतना ही आगे आ जाता है।

17.2 तकनीकी द्वारा परिवर्तन

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि आज का युग प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का युग है। तकनीकी विकास का प्रभाव विश्वव्यापी है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इसकी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। तकनीकी विकास में उत्पन्न अन्तराल दो देशों के मध्य भयावह स्थिति ला सकता है। इस तकनीकी विकास ने विश्व के सम्मुख एक नवीन स्थिति एक चुनौति के रूप में पैदा कर दी है। जिसका सामना उचित समाधान के द्वारा ही हो सकता है। यह समस्या इस कारण से सम्मुख आई है क्योंकि आधुनिक तकनीकी व्यवस्था जो उपग्रहों और कम्प्यूटरों पर आधारित है के संचालन के लिये उच्च वैज्ञानिक विकास एवं प्रशिक्षण भी आवश्यक है। स्वाभाविक है, बहुत उन्नत समृद्ध देशो का इस पर एकाधिकार है। एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों की निर्भरता इन विकसित देशों पर और अधिक बढ़ गई है। यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संस्तरण में एक नया आयाम जुड़ गया है। विकसित देशो के हाथों में आधुनिकतम इलेक्ट्रानिक मीडिया एक नवीन हथियार बन गया है जिसके द्वारा वे विकासशील देशों का शोषण कर सकते है। विज्ञान ने आज मानवीय समता को उस जगह पहुंचा दिया है जहां वह एक ओर आकाश व ग्रहो में बस्तियां बना सकता है तो दूसरी ओर किसी भी राजनीतिक नेता का अहम् या पागलपन मानव सभ्यता का सचमुच ही प्रलय कर सकता है।

17.2.1 तकनीकी द्वारा राष्ट्र के स्वरूप में परिवर्तन :–

तकनीक राज्य के स्वरूप में परिवर्तन लाने में सक्षम है। अर्नोल्ड टायनबी की मान्यता है कि राजनीतिक समुदाय का आकार संचार साधनों की प्रगति के अनुपात में विकसित होता है। 15वीं शताब्दी में जब समुद्रों पर विजय पा ली गई तथा विशालकाय जहाजों का निर्माण हुआ तो अन्तर्महाद्वीपीय साम्राज्य स्थापित हुए और आज ध्वनि की गति से भी तीव्रगामी वायु सेना ने दुनिया को एक परिवार का रूप दे दिया है। इसी प्रकार जो समुद्र पहले दो राष्ट्रों के मध्य सर्पक बढ़ाने में बाधक थे वे आज सम्पर्क को घनिष्ठ बनाने के साधन बन गये है। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी की दृष्टि का भौगोलिक तत्व आज बहुत कुछ अंशो में अपना परम्परागत अर्थ खो चुका है। आधुनिक संचार साधनों के बल पर किसी भी समाचार को विश्व के कोने–कोने में कुछ ही क्षणों में प्रसारित किया जा सकता है। संचार साधनों और सैनिक संसाधनों के क्षेत्र में तकनीकी खोजों ने शक्ति के नये श्रोत खोल दिया है। तकनीकी विकास ने राज्यों के केन्द्रीयकरण एवं एकांत में अभिवृद्धि की हैं द्रुतगामी संचार साधनों के माध्यम से कूटनीतिज्ञ अपने विदेश कार्यालयों से सीधा संपर्क बनाए रख सकते है। आज उन्हें नये–नये उत्तरदायित्व सौंपे जा रहे

हैं इस प्रकार विदेश नीति–निर्माण का कार्य सरकार में अधिकाधिक केन्द्रित हो गया है और विश्व के प्रत्येक भाग में सरकारी नीति को दूसरे भागों से सम्बन्धित किया जा सकता है। एक उपयुक्त रणनीति अपनाने के लिये विश्वभर के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्वों को संयुक्त कर देखा जा सका है। इस तरह से अपनाई गई नीति को साकार करने के लिये सैनिक, आर्थिक, प्रचारात्मक एवं कुटनीतिक साधनों का सहारा लिया जा सकता है। संचार साधनों का सहारा लिया जा सकता है। संचार साधनों तथा आवागमन के क्षेत्र में तकनीकी प्रसार और सैनिक तकनीक के विकास ने घरेलू क्रांति की सम्भावनावों को कम कर दिया है।

17.2.2 तकनीकी द्वारा राष्ट्रों की शक्ति में परिवर्तन :–

तकनीक अथवा प्राविधिक विकास राज्य की शक्ति स्थिति में परिवर्तन लाने के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं इतिहास साक्षी है कि प्रारम्भ में शक्ति उन देशों के हाथों में थी जो पर्याप्त अश्वबल के स्वामी थे और कृषि कार्य में उन्नत थे। मध्य युग में शक्ति का केन्द्र उत्तरी यूरोप–पश्चिमी एशिया, भारत और चीन के कृषि क्षेत्र थे। पुनर्जागरण के बाद शक्ति अधिकांशतः उन देशों के हाथों में केन्द्रित होती गई जो विशाल जहाजी बड़े के स्वामी थे। बाद में जिन देशों ने बन्दूक बनाने की कला पहले सीख ली वे उन राष्ट्रों पर हावी हो गये जो परम्परागत हथियारों से लड़ते थे। समुद्री संचार व्यवस्था का विकास करके इंग्लैण्ड अनेक दशाब्दियों तक विश्व पर छाया रहा और वायु शक्ति की दौड़ में पिछड़ जाने पर महायुद्ध के बाद ब्रिटेन आदि देशों के स्थान पर अमेरिका एंव पूर्व सोवियत संघ प्रभावशाली शक्ति के रूप में उभर आये। आज के अणु युग में तकनीकी ज्ञान राष्ट्र की शक्ति को कितना गरिमामय और प्रभावशाली बनाता है, यह संयुक्त राज्य अमेरीका की प्रगति से स्पष्ट है। तकनीकी अविष्कारों ने आ छोटे व बड़े राज्यों के बीच शक्ति के अंतर को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। तो दूसरी और सभी राज्यों की सुरक्षा ने राष्ट्र की शक्ति को भी घटा दिया है। तकनीकी विकास की सामान्य प्रवृत्ति देश की सुरक्षात्मक वृद्धि की अपेक्षा आक्रमणकारी शक्ति को बढ़ाने की अधिक रही है। आज सैनिक शक्ति का जैसा विकास हो चुका हे वैसा विश्व इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। आज का आक्रांत यह नहीं दिखता कि शत्रु की किलेबन्दी कैसी है या उसके सुरक्षात्मक हथियार कितने प्रभावशाली है, बल्कि खासतौर पर यह देखता है कि शत्रु के विरोध की क्षमता कितनी है अर्थात वह विध्वंस की कितनी क्षमता रखता है।

17.2.3 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की सामाजिक–आर्थिक अवस्था में परिवर्तन :–

तकनीकी ज्ञान राज्य की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में भी सहायक होता है। यह राष्ट्रीय उत्पादन को सामर्थ्य प्रदान करता है, नागरिकों के जीवन स्तर को ỏचा उठाता है, स्वास्थ्य के क्षेत्र में महामारियों और संघातिक बीमारियों से नागरिकों की रक्षा करकें राज्य को समर्थ बनाता है। राष्ट्र की आर्थिक शक्ति और आशाओं की वृद्धि करता है। वास्तव में तकनीकी विकास राज्य के छोटे से लेकर बड़े से बड़े काम मे सहायता पहुँचाता है। जनसंख्या और भोजन के अनुपात को तकनीकी प्रगति के बल पर विनियमित किया जा सकता है। तकनीकी ज्ञान, 0र्जा, को उत्पन्न करने वाला मुख्य तत्व है। तकनीकी के बल पर ही यह उर्जा के साधन के रूप में अधिकाधिक प्रभावी बनती जा रही हैं इस बात की पुरी सम्भावना है कि अणुशक्ति का इस रूप में समुचित विकास हो जाने पर भविष्य में राष्ट्रों की स्थिति, उनकी सम्पन्नता और उनकी शक्ति के स्तर में व्यापक परिवर्तन आ जायेंगे और यह भी सम्भव है कि आज के बहुत से विपन्न तथा अविकसित राष्ट्र कल के शक्तिशाली और सम्पन्न राष्ट्र बन जाए। तकनीकी विकास ने ही विश्वव्यापी आर्थिक, सामाजिक सहयोग को इतना बढ़ा दिया है कि हम विश्व की एक आर्थिक इकाई की संज्ञा देने लगे है।

17.3 तकनीकी द्वारा राष्ट्रों की आक्रमणकारी शक्ति में वृद्धि

तकनीक अथवा प्राविधिक विज्ञान से राज्यों की आक्रमणकारी शक्ति में वृद्धि हुई है। प्रौद्योगिक हथियारों को अपनाने में पहल करने वाले राष्ट्र उन देशों की अपेक्षा प्रायः लाभ में रहते है जो इन शस्त्रों का प्रयोग अथवा सुरक्षात्मक उपयोग बाद में सिखते है। युद्ध की तकनीक पर विचार करते हुए हंस जे0 मार्गेन्थो ने 20वीं शताब्दी की चार महान नई पद्धतियों की ओर संकेत किया है–पहला, प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश जहाजों के विरूद्ध विशेष रूप में प्रयोग की गई जर्मनी की पनडुब्बी थी जिनसे यह भय पैदा हो गया की शायद युद्ध का निर्णय जर्मनी क पक्ष में होगा। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने उसके जवाब में सशस्त्र रक्षक जहाजी बेड़े का आविष्कार करके पासा पलट दिया। दूसरे जर्मनी के मुकाबले ब्रिटेन ने प्रथम महायुद्ध के अन्तिम दिनों में टैंको का भारी संख्या में और मुख्य रूप में प्रयोग किया जिससे मित्र राष्टों की विजय का मार्ग महत्वपूर्ण रूप से प्रशस्त हुआ। तीसरे, जल, थल और वायु सेना के युद्ध संचालन और

चार्तुयपूर्ण व्यूह रचना के बल पर द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ में जर्मनी और जापान ने तहलका मचा दिया। चौथे, जिन राष्ट्रों के पास अणु शस्त्र और उन्हें द्रुत गति से लक्ष्य पर छोड़ने के साधन है वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से बहुत ही लाभपूर्ण स्थिति में है।

वास्तव में न केवल तकनीकी आविष्कार बल्कि युद्ध तकनीकी की लड़ाई का नक्शा बदल देती है। सन् 1991 में खाड़ी युद्ध में संयुक्त राज्य अमेरीका के नेतृत्व वाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं की असफलता का सबसे बड़ा कारण इराक की तुलना में उनकी तकनीकी सैनिक श्रेष्ठता ही थी। आज तो अनेक ऐसे जैविक और रासायनिक हथियार तैयार कर दिये गये है जिसे सम्पूर्ण मानव जाति को कुछ ही घण्टों में नष्ट किया जा सकता हैं। हैराल्ड तथा आर्गेन्थोस्प्राउट ने लिखा है कि बातुलिनस नामक विशैले पदार्थ की केवल साढ़े आठ औंस की मात्र इस धरती पर बसने वाले सम्पूण मानव जाति को नष्ट कर सकती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की तकनीकी प्रगति और सुधारक शक्ति के स्वामी राष्ट्रों की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि हम उसका सही अनुमान भी नहीं लगा सकते है।

17.4 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्रता को अर्थपूण बनाना

तकनीकी विकास राजनीतिक स्वतंत्रता को अर्थपूर्ण बनाता है। स्प्राउट के मतानुसार कोई भी राष्ट्र तकनीकी विज्ञान की दृष्टि से आत्मनिर्भर बन कर ही अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को अधिक सार्थक और प्रभावशाली बना सकता है तथा स्वतंत्र निर्णयशक्ति का विकास कर सकता है। विश्व राजनीतिक का इतिहास यही सिद्ध करता है कि अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में वही राष्ट्र स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय ले पाते है जो तकनीकी विकास के लिए दूसरों की राह नहीं ताकते। तकनीकी विकास के बल पर राष्ट्र अपनी शक्ति के दूसरे तत्वों को भी प्रभावशाली बला लेते है। उदाहरण के लिए, उन्नत और विकसित तकनीकी के बल पर कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में क्रांति लाई जा सकती है, सैनिक शक्ति के संख्या में अधिक न होते हुवे भी प्रभावकारी रूप से सबल बनाया जा सकता है और इस प्रकार राजनीतिक स्वंत्रता को सही रूप दिया जा सकता है। तकनीकी दृष्टि से पिछड़े हुवे अफ्रो–एशियााई देशों की राजनीतिक स्वतंत्रता भी विकसित देशों के दबाव से प्रभावित होती है। वे तकनीकी सहायता की आड़ में उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध आरोपित कर देते है।

17.5 तकनीकी द्वारा विश्व सरकार के प्रयासों को प्रभावित करना

तकनीकी विकास ने विश्व को दोराहे पर खड़ा कर दिया है। युद्ध तकनीकी के विस्तार से विश्व के विनाश की ओर ले जाया जाए या प्राविधिक ज्ञान के अधिकाधिक रचनात्मक उपयोग से मानवता को दुःख और दरिद्रता से छुटकारा दिलाया जाय। यह एक जटील प्रश्न है। तकनीकी विज्ञान ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि या तो सारा विश्व सहयोग के सूत्र में बंध जाए अथवा संघर्ष का मार्ग अपना कर महायुद्ध का विस्फोट करके समाप्त हो जाए। समय की मांग है कि विश्व के राज्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व अन्तराष्ट्रीय संगठन में अपना विश्वास प्रदर्शित करते हुये 'विश्व सरकार' के बारे में गंभीरता से चिन्तन करे।

17.6 तकनीकी द्वारा राष्ट्र की गोपनीयता की समाप्ति

तकनीक अथवा प्राविधिक ज्ञान के विकास ने आज राज्यों के बीच गोपनीयता को बहुत हद तक समाप्त कर दिया है। सैनिक तकनीकी को गुप्त रखने की प्रयास आज पहले की भांति प्रभावित नहीं रहे है। आज इस प्रकार की नीति विशेष महत्व रखती है कि अपने देश की तकनीकी मशीनों तथा अन्य प्राविधिक विधियों के निर्यात पर रोक लगा दी जाए। वर्तमान शताब्दी का इतिहास बताता है कि तकनीक की कोई राष्ट्रीय सीमा नहीं होती। ज्योंही कोई राज्य वैज्ञानिक सफलता को प्राप्त करता है त्यों ही कुछ अर्से में दूसरे राज्य की तत्परता से उस वैज्ञानिक सफलता को प्राप्त कर लेते है। अमेरिका ने अणु बम के रहस्य को गुप्त रखा, लेकिन ब्रिटिश और रूस वैज्ञानिकों ने रहस्य का पता लगा लिया और आज चीन, भारत, जापान और इजरायल आदि अनेक देश इस रहस्य को जान चुके है।

17.7 तकनीकी द्वारा शीत–युद्ध को प्रोत्साहन

तकनीकी विकास ने शीत–युद्ध को प्रोत्साहन देकर अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों को और राष्ट्रीय शक्ति के विकास क दांव पेचों को प्रभावित किया है। अणु शक्ति तकनीकी के विकास ने ही मुख्य रूप से अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ के बीच भारी संदेह उत्पन्न करके शीतयुद्ध का विस्तार किया था। सैनिक तकनीकी से गुटबन्दीयों को प्रेरणा

मिली और राष्ट्रों में अशांति, असुरक्षा की भावना तथा शास्त्र–प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई। तकनीकी का यह प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में सदैव किसी न किसी रूप में कायम रहेगा।

17.8 पैडलफोर्ड एवं लिंकन के अनुसार तकनीकी प्रभाव

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के ख्याति प्राप्त विद्वान पैडलफोर्ड एवं लिंकन ने किसी राष्ट्र के शेष विश्व के साथ सम्बन्धों पर पड़ने वाले मुख्य तकनीकी प्रभाव को पांच श्रेणियों में विभाजित किया है–

1. तकनीकी के कारण एक देश अपनी मान्यताओं और लक्ष्यों में परिवर्तन कर लेता है। आज का विश्व इस अर्थ में एक है कि संचार संसाधनों का विकास हो चुका है, देशों की परस्पर निर्भरता बढ़ चुकी है, अतः विश्व के किसी भी भाग में होने वाला छोटा सा संघर्ष भी सब देशों की रूची का विषय बन जाता है और उन्हें प्रभावित करता है। तकनीकी प्रभाव के फलस्वरूप स्थिति यह हो गई है कि कोई भी राष्ट्र अपनी इच्छाओं को केवल शक्ति के माध्यम से क्रियान्वीत नही कर सकता और न ही यह सोच सकता है कि पर्याप्त दूरी की समस्याओं का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

2. तकनीक द्वारा अन्य तत्वों जैसे आर्थिक तत्व जनसंख्या आदि को भी प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए तेल का उत्पादन करने वाले क्षेत्रों को परम्परागत रणकौशल की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा जाता है। किन्तु अणु–शक्ति का प्रसार हो जाने के बाद इन क्षेत्रों को दी जाने वाली प्राथमिकता घट सकती है। दूरी का भौगोलिक तत्व अपने परम्परागत अर्थ को बहुत कुछ खो चुका है। जनसंख्ख्या का प्रभाव तभी बढ़ सकता है जब वह तकनीकी पर अधिकतर रखती हो, तकनीकी से सम्पन्न जनसंख्या वाला देश ही महाशक्ति बनने की आकांक्षा रख सकता है।

3. तकनीक विदेश नीति की विषयवस्तु को प्रभावित करती है और इसके द्वारा समर्थित कार्यक्रमों पर प्रभाव डालती है। तकनीकी विषयो में अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय किया जाता है, तकनीकी सहायता कार्यक्रम चलाये जाते है, शस्त्रों के नियंत्रण पर अधिक बल दिया जाता है, वाह्य अंतरिक्ष तथा संचार स्थलो को नियमित करने के लिये अन्तराष्ट्रीय कानून का विकास किया जाता है, तकनीक के आदान–प्रदान द्वारा विदेशी मुद्रा कमाई जाती है, आदि।

4. तकनीकी राष्ट्र निर्माण का प्रमुख साधन है। यह औद्योगिक देशों को वह सामर्थ्य भी देती है, जिसके आधार पर वे सम्पत्ति का प्रचुर निर्माण कर उसका निर्यात कर सकें। यह अर्थ विकसित राष्ट्रों को पूंजी के उपयोग की सामर्थ्य प्रदान करती है। जिससे राष्ट्र निर्माण के कार्य को गति मिलती है।

5. तकनीक का विदेश नीति के संचालन के तरीकों पर क्रांतिकारी रूप से प्रभाव पड़ा है। पहले के कूटनीतिक तरीके आज असामाजिक हो गये है। संचार साधनो पर किया गया प्रचार, तकनीकी सहायता तथा वैज्ञानिक आदान–प्रदान अंतरिक्ष एवं अन्य प्रकार के कार्यक्रम आदि विदेश नीति के कार्यान्वयन को प्रभावित करते रहते है।

यद्यपि तकनीकी ज्ञान का पर्याप्त भौतिक प्रभाव होता है तथापि विश्व राजनीति की घटनाओं के विकास के पिछे इसका कोई मान्य बौद्धिक औचित्य नहीं है। तकनीक एक साधन है साध्य नही। इसकी स्वयं की कोई अन्तर्राष्ट्रीय सार्थकता नहीं है और इसका मुल्यांकन अंतिम रूप से एक राजनीतिक निर्णय होता है। यह सम्भव है कि राजनीतिज्ञ निर्णय करते समय पर्याप्त तकनीकी जनकारी से सम्पन्न हो, लेकिन तकनीकी विशेषज्ञ होने का अर्थ कुशल राजनीतिज्ञ नही होता। आधुनिक तकनीकी बड़ी जटिल और व्यय साध्य है। जो देश इस बोझ और व्यय को वहन करने के लिये तैयार है वही तकनीकी क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। पाश्चात्य देश विकासशील और अविकसित देशों को घिसीपिटी या उनकी बहुत पुरानी पड़ी तकनीक का निर्यात करते है।

17.9 तकनीकी विकास का आधार

राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण तत्व होने के कारण तकनीकी विकास के प्रति सभी देशों का आज जबर्दस्त आकर्षण है। सभी राष्ट्र प्रयास करते है कि विभिन्न क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग कर राष्ट्रीय शक्ति को तेजी से गतिमान बनाया जाय और उच्चता के शिखर पर पहुँचा जाए, लेकिन सभी राज्य आशानुरूप परिणाम नहीं प्राप्त कर पाते। इस असफलता का महत्वपूर्ण कारण देश, विदेश में स्थित सामाजिक परम्पराएँ, सोचने के तरीके,

विकास के प्रति लोगों का दृष्टिकोण आदि है। हम देखते है कि एक ओर जापान ने अपनी राजनीतिक व्यवस्था में बिना कोई भारी परिवर्तन किए ही औद्योगिक एवं सैनिक संगठनों की पश्चिमी तकनीकों को द्रुतगति से अपना लिया है। दूसरी और भारत, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, चीन आदि की स्थिति को देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि यहाँ तकनीकी ज्ञान का प्रसार इतनी तेजी के साथ हुआ है। विभिन्न राष्ट्रों के उदाहरणों को देखने के उपरान्त तकनीकी विकास के आधार के रूप में हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते है–

1. किसी भी राष्ट्र में होने वाले तकनीकी विकास पर उसकी सरकार के स्वरूप का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् तकनीकी ज्ञान लोकतंत्रात्मक देशों में भी सम्भव है और अपेक्षाकृत अधिक तेजी से सम्भव है।
2. तकनीकी विकास साम्यवादी व्यवस्था में अधिक तेजी से होगा, ऐसा आवश्यक नहीं है।
3. तकनीकी विकास पर सरकार के स्वरूप की अपेक्षा सामाजिक शक्तियों क भारी प्रभाव पड़ता है। यदि समाज परिवर्तनशील और विकासशील दृष्टिकोण सरल और सुगम बन जाता है। इसके विपरीत परम्परावादी और रूढ़िवादी विचारों से ग्रस्त समाज में तकनीकी प्रगति को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में जिस समाज का ढांचा वैज्ञानिक आधार से मेल नही रखता वह समाज पिछड़ जाता है।

17.10 सारांश

वर्तमान समय में प्रायः सभी राष्ट्र तकनीकि विकास के लिये प्रयासरत है। तकनीकी विकास के लिये तकनीकि ज्ञान का होना आवश्यक है। तकनीकी ज्ञान के आधार पर राष्ट्रीय स्वरूप में परिवर्तन, राष्ट्रों की शक्ति स्थिति में परिवर्तन, राष्ट्रों की आक्रमणकारी शक्ति में वृद्धि व आर्थिक व सामाजिक स्थिति में परिवर्तन उत्पन्न होते है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव डालने वाले प्राविधिक ज्ञान तथा तकनीकी आदि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। तकनीकी विकास का प्रभाव विश्वव्यापी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इसकी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। तकनीकी विकास में उत्पन्न अन्तराल दो देशों के मध्य भयावह स्थिति ला सकता है। आधुनिक तकनीकी व्यवस्था जो उपग्रहों और कम्प्यूटरों पर आधारित है कि संचालन के लिये उच्च वैज्ञानिक विकास एवं प्रशिक्षण भी आवश्यक है। विज्ञान ने आज मानवीय समता को आज उस जगह पहुँचा दिया है जहाँ वह एक ओर आकाश व ग्रहों में बस्तियाँ बना सकता है तो दूसरी ओर किसी राजनीतिक नेता का अहम् या पागलपन मानव सभ्यता का समूल नाश कर सकता है।

17.11 उपयोगी पुस्तकें

1. अर्चना उपाध्याय : भारत की विकास नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
2. वी0 एन0 खन्ना : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
3. एस0 एल0 नागोरी, कान्ता नागोरी : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का सर्वेक्षण
4. डी0 एस0 गुप्ता, कल्पना संजीव अग्रहरी : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : सैद्धान्तिक पहलू
5. डी0 एस0 यादव : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सम्बन्ध
6. तपन विश्वाल : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

17.12 बोध प्रश्न

लघु उत्तरी प्रश्न–

1. "तकनीकी विकास का प्रभाव विश्वव्यापी है" स्पष्ट करें।
2. "तकनीकी राज्य के स्वरूप में परिवर्तन लाने में सक्षम है" विवेचना करें।
3. तकनीकी विकास द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. तकनीकी विकास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या किजिए।

2. जनसंख्या और भोजन के अनुपात को तकनीकी प्रगति के बल पर किस प्रकार विनियमित किया जा सकता है?

3. "तकनीकी प्रावधिक विज्ञान से राज्यों की आक्रमणकारी शक्ति में वृद्धि हुई" स्पष्ट किजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. पुनर्जागरण के बाद शक्ति अधिकांशतः उन देशों के हाथों में केन्द्रित होती गई जो–

   (A) विशाल सैन्य शक्ति के स्वामी थे (B) विशाल जहाजी बड़े के स्वामी थे

   (C) पूंजिवादी थे (D) इनमें से कोई नहीं

2. "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रशिक्षण के रूप में प्राविधिक ज्ञान वह विज्ञान है जो आविष्कार और भौतिक संस्कृति की प्रगति को विश्व राजनीतिक से जोड़ता है।" यह कथन किसका है–

   (A) हैराल्ड (B) पैडलफोर्ड (C) क्विंसी राईट (D) आर्गेन्थोस्प्राउट

उत्तर– 1–B 2–C

इकाई–18 नई विश्व अर्थव्यवस्था की खोज

ईकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 नई विश्व अर्थव्यवस्था की विशेषताऐं

(i) अन्तर्राष्ट्रीय विकास में वैश्विक प्रबन्धन

(ii) प्राकृतिक संसाधनों पर अधिपत्य

(iii) आय स्थिरीकरण

(iv) 0र्जा एवं प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग

(v) खाद्य सुरक्षा एवं व्यापार

18.3 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के उद्देश्य

(i) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

(ii) प्रोद्योगिकी स्थानान्तरण

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों की गतिविधियों का नियमन तथा नियंत्रण

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली तथा विशेष सहायता प्रोग्राम सुधारना

(v) परस्पर निर्भरता तथा सहयोग

18.4 विश्व आर्थिक मंच

18.5 विश्व आर्थिक मंच का एजेण्डा

18.6 सारांश

18.7 उपयोगी पुस्तकें

18.8 बोध प्रश्न

18.0 उद्देश्य

(i) नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था के विषय में विवेचना कर सकेंगे।

(ii) नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था के उद्देश्य के विषय में टिप्पणी कर सकेंगे।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विभिन्न देशों के मध्य सम्बन्धों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

विकास एक अपरिमित रूप से जटिल प्रक्रिया है। पिछले पाँच दशकों में नियोजित परिवर्तन और विकास के माध्यम से आधुनिकीकरण विश्वव्यापी संवाद के केन्द्र में रहा है। विकासशील देशों द्वारा नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की 1964 में संयुक्त राष्ट्र के व्यापार तथा विकास सम्मेलन (UNCTAD) के प्रथम अधिवेशन में हुई। अंकटाड के बाद के अधिवेशनों में अपनाएं गये विभिन्न प्रस्ताव NIEO के विभिन्न घटकों का क्रमबद्ध लेखा रखते हैं। NIEO के लिये आह्वाहन के मूल में विकसित देशों के प्रति व्यापार, वित्तीय, तकनीकी तथा दूसरी नीतियों के पालन से सम्बन्धित असंतोष झलकता है। विकसित देशों ने अल्पविकसित देशों को उत्पीड़ित किया है, उनके विरूद्ध भेद किया है, उनकी

आय का निष्कासन किया है तथा उन्हें उन्नत तकनीकों से वंचित किया है।

24.2 नई विश्व अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

(i) अन्तर्राष्ट्रीय विकास में वैश्विक प्रबन्धन (**Global Management for International development**)–

नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का संचालन इस प्रकार होना चाहिए कि व्यापारजनित लाभों का उचित वितरण हो और अर्द्धविकसित देशों को उचित मात्रा में विकास के साधन मिल सकें। इसके लिए आवश्यक उचित प्रबन्धन की आवश्यकता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय विकास में सभी देशों की सामूहिक भागीदारी सुनिश्चित हो तथा सबका समावेशी विकास हो सके।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों पर स्थायी आधिपत्य (**Permanent Sovereignty over national resurces**)–

विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है आर्थिक विषमता। विश्व की 10% जनसंख्या जो धनी देशों में निवास करती है विश्व के साधनों का 20% से अधिक उपयोग कर लेती है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा चीन जो मिलकर विश्व की कुल आबादी का 44% है। विश्व के कुल संसाधनों का 10% से कम का उपयोग करते हैं। इसमें यदि अफ्रिका (विश्व की आबादी का 25%) को जोड़ दिया जाय तो कुल 65% कुल संसाधनों का 17% हिस्सा प्राप्त होता है। गम्भीर बात यह है कि यह विषमता निरन्तर बढ़ती जा रही है। अर्द्धविकसित देशों के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि उनका आर्थिक विकास तीव्र गति से हो इसके लिए आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधनों पर उनका स्थायी अधिपत्य हो।

(iii) आय स्थिरीकरण (**Income stablization**)–

इस कार्य का सम्बन्ध सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्र में साधनों का आवंटन नहीं है वरन् साधनों के उपभोग को उचें स्तर पर बनायें रखना, पूर्ण रोजगार प्राप्त करना तथा मुद्रा के मूल्य को स्थिर रखना है। आय–व्यय की गतिविधियों का इस प्रकार समायोजन करना होता है कि अर्थव्यवस्था निर्धारित समृद्धि पथ पर बिना बाधा के एक निश्चित गति से चलती रहे।

(iv) ऊर्जा एवं प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग (**Energy and national use of natural resorces**)–

प्राकृतिक सम्पदा का औद्योगिक संस्कृति ने ऐसा खुलकर अपव्यय किया है कि उसकी भरपाई सम्भव नहीं। हमनें तात्कालिक लाभ के लिए दुरगामी दुष्प्रभावों को ताक पर रख दिया है और प्रकृति को मनमाने ढंग से छिन्न–भिन्न कर दिया है क्योंकि प्रौद्योगिक विकास के जरिये हम आधुनिक विकास की दौड़ में संलग्न हैं। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में असमान बटवारा सारे पर्यावरणीय संकट की जड़ है। वातावरण में ये समृद्ध राष्ट्र सबसे अधिक दूषण करते हैं जो गरीब मुल्कों के मथ्थे चढ़ जाता है।

(v) खाद्य सुरक्षा व व्यापार (**Food security and trad**)–

विश्व के गरीब देशों में भूख का फैलाव तेजी से हो रहा है। नवीनतम आकड़ों से पता चलता है कि विश्व में भूख से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। जनवरी 2009 में यह संख्या 96.3 करोड़ थी। विकासशील विश्व में हर तरफ गरीब मौसमी वंचन के इस वार्षिक चक्र का शिकार बनें रहते हैं। खाद्य पदार्थों की बढ़ती किमतों का सामना वैश्विक तौर पर गरीब परिवार पहले तो भोजन की गुणवत्ता को कमतर करके और बाद में उसकी मात्रा घटा कर करते हैं।

18.3 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के उद्देश्य (**Objective of NIEO**)

संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों पर आधारित नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था विश्व के समग्र हालात में सुधार के प्रति कटिबद्ध है। NIEO के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है–

(i) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (**International Trade**)–

NIEO अल्पविकसित देशों की व्यापार शर्तों में सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अधिकाधिक सहभागिता हेतु निम्न उपायों पर बल देता है–

(**a**) प्राकृतिक तथा विशेषतः खनिज साधनों में निर्यात पर विकासशील देशों की प्रभुसत्ता की स्थापना को प्रोत्साहन।

(**b**) कच्चे माल के संसाधनों के निर्यात को प्रोत्साहित करना।

(**c**) वस्तुओं के लिये एकीकृत कार्यक्रम क्षतिपूरक वित्त प्रबंधन, अन्तर्राष्ट्रीय बफर स्टॉक की स्थापना तथा संग्रहों (Stocks) के वित्त प्रबंधन के लिये सामान्य कोष की स्थापना और उत्पादकों की संस्थाओं की स्थापना द्वारा अल्पविकसित देशों के निर्यातों की सापेक्ष कीमतों में वृद्धि करना।

(**d**) कच्चे मालों तथा प्राथमिक वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता लाने के लिये उचित ढांचा प्रदान करना ताकि निर्यात से अर्जन में स्थिरता आए।

(**e**) विकसित देशों द्वारा निर्मित वस्तुओं की ऊँची आयात कीमतों का सूचकांकित (Indexation) करना ताकि वे उनके बराबर हो सकें।

(**f**) विनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करना।

(**g**) प्रशुल्कों तथा गैर–प्रशुल्कों रूकावटों अथवा अवरोधों और प्रतिबंधित व्यापार पद्धतियों को धीरे–धीरे हटाकार विकसित देशों के बाजारों में प्रवेश को सुधारना।

(ii) प्रौद्योगिकी स्थानांतरण (**Technology Transfer**) :–

NIEO के प्रस्ताव अल्पविकसित देशों को उनकी आवश्यकताओं तथा उनमें प्रचलित स्थितियों–परिस्थितियों पर आधारित प्रौद्योगिकी स्थानान्तरण की क्रियाविधि की स्थापना पर बल देते हैं। इस संदर्भ में विशेष बल दिया गया है।

(**a**) प्रौद्योगिकी स्थानान्तरणों की व्यवस्थित करने के लिए एक कानूनी बाध्य अन्तर्राष्ट्रीय नियमावली का निर्माण,

(**b**) प्रौद्योगिकी के विक्रय तथा लाइसेंस प्राप्त करने के लिये उचित शर्तों तथा कीमतों की स्थापना।

(**c**) अल्पविकसित देशों को प्रौद्योगिकी के अनुसंधान और विकास तथा देशी प्रौद्योगिकियों के अनुसंधान और विकास तथा देशी प्रौद्योगिकी की स्थापना में सहायता और प्रसार।

(**d**) अल्पविकसित देशों की आवश्यकतानुसार प्रौद्योगिकी स्थानान्तरण का संचालन करने वाली व्यापारिक प्रक्रियाओं को अपनाना।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों की गतिविधियों का नियमन तथा नियंत्रण (**Regulation and Control of the Activities of MNC's**)–

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय आचरण नियमावली बनाने, अपनाने तथा कार्यान्वयन के लिये भी NIEO घोषणपत्र में निम्न आधारों पर बल दिया गया है–

(**a**) अल्पविकसित देशों में प्रतिबंधक व्यापार प्रक्रियाओं को समाप्त करने के लिये मेजबान देशों में उनकी गतिविधियों को नियंत्रण करना।

(**b**) न्यायसंगत ओर अनुकूल शर्तों पर अल्पविकसित देशों में सहायता, प्रौद्योगिकी स्थानान्तरण तथा प्रबंधकीय कौशल लाना,

(c) उनके लाभों को लौटाने का नियमन करना

(d) उनके लाभों को अल्पविकसित देशों में पुनर्निवेश करने को प्रोत्साहित करना।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली तथा विशेष सहायता प्रोग्राम सुधारना (**Reforming the International Monetary System and Special Aid Programme**):–

NIEO घोषणा पत्र अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली में निम्न रूपरेखाओं द्वारा सुधार लाने का प्रस्ताव करता है :

(a) विनिमय दरो में अनिश्चितता के कारण अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली में अस्थिरता को समाप्त करना।

(b) स्फीति तथा विनियम दर मूल्य ह्रास के परिणामस्वरूप अल्पविकसित देशों के करेंसी रिजर्वों के वास्तविक मूल्य को कायम रखनना।

(c) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के निर्णयों में अल्पविकसित देशों का पूर्ण तथा प्रभावी सहयोग देना।

(d) विकास सहायता का अतिरिक्त SDRS के निर्माण के साथ संबंध स्थापित करना।

(e) अल्पविकसित देशों GNP के 0.7 प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त करना।

(f) ऋण रद्द करने, ऋण स्थगित करने तथा ऋण पुनः निर्धारित करने पर समझौतों के लिये प्रत्येक मामले के आधार पर ऋणों के बारें में पुनः वार्ता करना

(g) अनिवार्य वस्तुओं के सभी अथवा कुछ अंशों का विलम्बित भुगतान करना।

(h) अल्पविकसित देशों के निर्यात को कुप्रभावित किये बिना अनुदान के आधार पर वस्तु सहायता देना, जिसमें खाद्य सहायता शामिल है।

(i) आसान शर्तों पर दीर्घावधि के संभरक (Suppliers) ऋण देना।

(j) रियायती दरों पर लम्बी अवधि की वित्तीय सहायता देना।

(k) अल्पविकसित देशों के औद्योगिक में तीव्रता लाने के लिये अधिकारिक अनुकूल शर्तों पर पूंजी वस्तुओं तथा तकनीकी सहायता का प्रबंधन करना, और

(l) औद्योगिक तथा विकास परियोजनाओं के लिये अनुकूल शर्तों पर निवेश करना।

(v) परस्पर निर्भरता तथा सहयोग (**Interdependence and Co-operation**):–

सबसे 0पर NIEO का घोषण–पत्र विश्व अर्थव्यवस्था की परस्पर निर्भरता के अधिक कुशल तथा न्यायसंगत प्रबंधन पर बल देता है। जो इस वास्तविकता को स्पष्ट करता है कि विकसित देशों की समृद्धि तथा अल्पविकसित देशों की वृद्धि तथा विकस के मध्य घनिष्ठ रूप से आपसी सम्बन्ध व पारस्परिक निर्भरता है। साथ ही अल्पविकसित देशों को एक वाह्य आर्थिक वातावरण की आवश्यकता है जिससे वे तीव्र सामाजिक तथा आर्थिक करें। इसके अतिरिक्त अल्पविकसित देशों में मुख्यतः अधिमान के आधार पर परस्पर आर्थिक, व्यापारिक, वित्तीय तथा तकनीकी सहयोग को मजबूत करने की आवश्यकता है।

18.4 विश्व आर्थिक मंच

यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जिसमें विश्व भर के शीर्ष व्यापार नेताओं अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक नेताओं, चुने गये बौद्धिक और पत्रकार, विश्व के समक्ष वर्तमान चुनौतियों पर विचार करते हैं। इन समस्याओं में प्रमुख है– स्वास्थ्य, पर्यावरण जैसे मुद्दे जिन पर गहन मंत्रणा की जाती है और उनका समाधान तलाशने की कोशिश की जाती है। इस मंच की स्थापना 1971 में क्लॉस एम0 श्वाब ने की थी। पहले इस संगठन का योरोपियन मैनेजमेंट फोरम था, लेकिन 1987 में इसका नाम वर्ल्ड इकोनामिक फोरम रखा दिया गया। यह एक स्वायत्त और गैर लाभ संस्था है और किसी राष्ट्र–विशेष के हितों से जुड़ी नहीं है। इस फोरम का मिशन विश्व के हालात में सुधार के प्रति कटिबद्धता है।

18.5 विश्व आर्थिक मंच का एजेण्डा

1. वैश्विक अर्थव्यवस्था में उच्च बेरोजगारों को कैसे कम किया जाये एवं विकास की स्थिरता को कैसे गतिमान किया जाय?
2. कैसे वैश्विक राष्ट्रीय और औद्योगिक लचीलापन बढ़ाने के लिये प्रमुख प्रणालीगत एवं वैश्विक जोखिम को बढ़ाया जाये?
3. जी–20 देशों के सदस्यों के मध्य नेतृत्व बदलाव तथा अपने भू–राजनीतिक और भू–आर्थिक निहितार्थ को किस प्रकार समझा जाये?
4. यूरोप, मध्य एशिया एवं उत्तर अफ्रीका के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक रूपान्तरणों की किस प्रकार अपनाया जाये?
5. यह सुनिश्चित करना कि किस प्रकार संरक्षणवाद और राष्ट्रवाद एशिया, अफ्रीका एवं अमेरिका में क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण और बहुपक्षीय आर्थिक सहयोग मे रूकावट नहीं डाल सकता है?
6. वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा को प्रतिभा एवं नवाचार द्वारा किस प्रकार संचालित किया जाय?
7. महत्वपूर्ण स्थिर टिका0 और सस्ते प्राकृतिक संसाधनों की आपूर्ति किस प्रकार सुनिश्चित किया जाय?
8. नये विकास अवसरों तथा विनियाक वातावरण को किस प्रकार अपनाया जाये?
9. व्यापार के संदर्भ मे सामाजिक प्रौद्योगिकी के भविष्य के विकास के किस प्रकार अपनाया जाये?
10. विज्ञान, प्रौद्योगिकी एंव औषधि में दूरगामी लाभ किस प्रकार उठाया जायें?

18.6 सारांश

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आज विचारकों, अर्थशास्त्रियों, सरकार और व्यापारी संगठन को मिलकर आर्थिक नीतियों की पुनर्समीक्षा करने के आवश्यकता है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मुदय समस्या यह है कि वह कूटनीति राजनीति पर निर्भर है। अतः आज सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में सुधार किये जाने की जरूरत है जिससे वे दूसरे बाहरी प्रभावों से मुक्त हो सकेंगे। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय निर्णय–निर्धारण प्रक्रिया में विकसित देशों के साथ–साथ विकासशील व अल्पविकसित देशों की पूर्ण एवं प्रभावी सहभागिता भी अनिवार्य है।

18.7 उपयोगी पुस्तकें

1. एम. एम. झिंगन : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था।
2. वी0 पी0 सिन्हा : सार्वजनिक अर्थशास्त्र।
3. अमित भदौरी और दीपक नायर : उदारिकरण का सच
4. राम बहादुर राय : मंजिल से ज्यादा सफर
5. टी0 आर0 जैन, वी0 के0 ओहरी : भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास
6. टी0 आर0 जैन, वी0 के0 ओहरी : आर्थिक सांख्यिकी एवं भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास
7. सं0 राजकिशोर : विनाश को निमन्त्रण
8. सं0 अभय कुमार दूबे : भारत का भूमण्डलीकरण
9. टी0 आर0 जैन, मुकेश त्रेहन, मंजू त्रेहन : व्यावसायिक वातावरण
10. एस0 गुरूमूर्ति : समय भारत के सूर्योदय का
11. विमल जालान : 21 वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था

12. Towards the New International Economic order, United nations, New York 1982: K.K.S. Dadzie.

18.8 बोध प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न :–

1. अन्तर्राष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था के विषय में आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के गतिविधियों का नियमन तथा नियंत्रण किस प्रकार किया जा सकता है?
3. आय स्थिरीकरण क्या है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था के उद्देश्य के विषय में टिप्पणी करें।
2. "विकास एक अपरिमित रूप से जटिल प्रक्रिया है" स्पष्ट करें।
3. अन्तर्राष्ट्रीय विकास में वैश्विक प्रबन्धन की भूमिका स्पष्ट करें।

बहुविकल्पिय प्रश्न :–

1. विश्व आर्थिक मंच की स्थापना किस सन् में हुई थी?

   (i) 1968 (ii) 1975 (iii) 1988 (iv) 1971

2. जनवरी 2009 में विश्व में भूख से पीड़ित व्यक्तियों की जनसंख्या कितनी थी?

   (i) 70.0 करोड़ (ii) 65.80 करोड़ (iii) 96.3 करोड़ (iv) 69.8 करोड़

प्रश्नोत्तर :– 1 (iv) 2. (iii)